प्रथम संस्करण १६६६

●

प्रकाशक
जीत मल्होत्रा
रचना प्रकाशन
इलाहाबाद-१

मूल्य
अठारह रुपये

●

मुद्रक
इलाहाबाद प्रेस
३७० रानी मंडी
इलाहाबाद-३

विषय-सूची

भूमिका

प्रथम अध्याय

द्वितीय अध्याय

षष्ठ अध्याय

उपसंहार

प्रस्तावना

आधुनिक जीवन मे हास्य के मनोविज्ञान की सम्भावनाएँ कम होती जा रही है क्योकि सामाजिक जीवन निरन्तर अस्त व्यस्त होता जा रहा है। समस्याएँ इन्द्रजाल की भांति परस्पर गुथती चली जा रही है। सुख और शान्ति का छोर खोजने से भी नही मिलता। स्वतन्त्रता के पश्चात जिस उल्लासमय जीवन की अभिव्यक्ति होनी चाहिये, वह भी स्वप्न की भाँति तिरोहित हो रही है। साहित्य के क्रोड मे हास्य एक अभिनन्दनीय विषय रहा है जिसमे समाज का कलुष बिना प्रयास के विकार-रहित हो गया है और नाटक के क्षेत्र मे तो इसके लिए एक विशिष्ट पात्र 'विदूषक' की परिकल्पना की गई, जिससे गम्भीर से गम्भीर परिस्थिति मे हास्य की अनुभूति सम्भव हो सके। इस प्रकार हास्य अमृत की भाँति जीवन को सजीविनी प्रदान करता रहा है।

कुमारी शान्तारानी प्रयाग विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग की एक मेधावी छात्रा रही है, उन्होंने अत्यन्त परिश्रम तथा अध्यवसाय से हास्य के विविध संदर्भों पर अत्यन्त गम्भीरतापूर्वक अध्ययन किया है। उनके विषय निरूपण की शैली मौलिक तथा तथ्यपूर्ण है। हिन्दी साहित्य म हास्यरस की विवेचनाएँ स्वतन्त्र रूप से बहुत कम लिखी गई है। यद्यपि किसी पुष्प की भाँति हास्य प्रस्फुटित होता है तथापि उसके मूल को कितने अन्धकार का सामना करना पडता है और कितने काँटो से घिरे रहने के बाद उस पुष्प को जीवन की सुगन्धि प्राप्त होती है। यही एक बडी समस्या है। इस प्रकार हास्य की विवेचना जो अनुभूति से सम्बद्ध है उसे सिद्धान्तो के पाश से मिला कर भी स्वच्छन्द रखना वास्तव मे अत्यन्त मनोयोग और अनुभूतिमय कार्य है।

इस कठिन कार्य को करने मे कुमारी शान्ता रानी ने सफलता प्राप्त की है। अपने अध्ययन को एक शोध ग्रन्थ के रूप में प्रस्तुत कर उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय मे डी० फिल की उपाधि प्राप्त की है। मुझे विश्वास है कि इस विषय के अन्य ग्रन्थो मे यह ग्रन्थ आदर के साथ ग्रहण किया जाएगा, और विद्वान एव विद्यार्थी समान रूप से उससे लाभ उठा सकेंगे, उनके भविष्य के कार्य निर्वाह के लिए मेरी शुभ कामनाएं है।

साकेत
प्रयाग
२०-९-६६

रामकुमार वर्मा

प्राक्कथन

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध मे हिन्दी-नाटकों में हास्य तत्त्व का विवेचन रसात्मक और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से किया गया है। मेरे शोध की परिधि भारतेन्दु युग से लेकर प्रसाद युग तक रही है, क्योंकि उसी अवधि में हास्य के शास्त्रीय रूपो की परिणति व्यावहारिक रूप से नाट्य-साहित्य के अन्तर्गत परिलक्षित हुई है।

साहित्य मे रसों का विशेष महत्व रहा है। रस को काव्य की आत्मा के रूप में स्वीकार कर रस के आचार्यों ने उसे साहित्य की प्रत्येक विधाओं के अन्तर्गत अंगीकृत किया है। साहित्यशास्त्र में इसका प्रयोग काव्यास्वाद अथवा काव्यानन्द के लिए हुआ है। अतः रस को 'ब्रह्मानन्द सहोदर' माना गया है। नाटक में 'रसराज' शृङ्गार के साथ ही साथ हास्य को भी महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। हास्यरस का स्थायी भाव हास है। 'वागादिवैकृतैश्चेतो विकासो हास इष्यते' लिख कर साहित्य दर्पणकार ने वाणी के रूप-आदि विकारों को देख कर चित्त के विकसित होने को 'हास' की संज्ञा दी है। साहित्य जीवन की अभिव्यक्ति है और हास्य जीवन का एक विशिष्ट अंग है। इसलिए हास्य का साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान होना निश्चित है, फिर नाट्यदर्शन मे तो हास्य का होना स्पृहणीय है।

इस विशिष्टता के होते हुए भी साहित्य में इस पक्ष पर मनोवैज्ञानिक दृष्टि से पर्याप्त रूप मे प्रकाश नही डाला गया है। अपने शोध को निश्चित करते समय मुझे इस प्रसग पर कार्य करने की विशेष प्रेरणा मेरे आचार्य डॉ० रामकुमार वर्मा ने प्रदान की। बाल्यकाल से ही मेरी रुचि प्रहसनो और जननाटकों में रही है। इसलिए यह विषय मुझे खोज के लिए आकर्षक ज्ञात हुआ। परिणामस्वरूप मैने हास्य तत्त्व के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की दृष्टि में रखते हुए अपना शोधकार्य प्रारम्भ किया।

शोध-प्रबन्ध सात अध्यायों मे लिखा गया है। हिन्दी नाटकों मे हास्य के विविध तत्त्वों का विश्लेषण करते हुए उनकी विशेषताओं का स्पष्ट उल्लेख करना मेरा अभीष्ट रहा है। जहाँ मैने हास्य रस का विवेचन रसात्मक दृष्टि से किया है वहाँ मानव स्वभाव और मानव मनोविज्ञान के साथ भी उसका सम्बन्ध निरूपित किया है।

प्रथम अध्याय मे आरम्भ से लेकर प्रसाद युग तक मैने हिन्दी-नाटकों के उद्भव और विकास की सम्यक् रूपरेखा अन्य भाषाओं के प्रभाव सहित निरूपित की है।

द्वितीय अध्याय मे हास्य के विविध भेदों का विश्लेषण करते हुए भारतीय एवं पाश्चात्य दृष्टिकोणो का तुलनात्मक अध्ययन किया है। नाट्य-विधान की दृष्टि से इसमे मैंने अनेक मौलिक तत्त्वों का समावेश करने का प्रयत्न किया है।

तृतीय अध्याय विदूषक से सम्बन्धित है। भारतीय और पाश्चात्य नाटको में विदूषक की महत्ता हास्य रस के दृष्टिकोण से प्रतिपादित हुई है। यहाँ विदूषक के व्यक्तित्व एवं उसके कार्यकलाप के सम्बन्ध में कुछ नवीन विचार भी उपस्थित किये गये है।

चतुर्थ अध्याय मे लोकनाट्य की विशिष्ट उपलब्धियाँ प्रस्तुत की गयी है। वस्तुत: लोकनाट्य शताब्दियो से जनता के मनोरंजन का साधन रहा है और हास्य के विविध रूप उसी के द्वारा बीज रूप में प्रस्तुत हुए है। लोकनाट्य के इस जनव्यापी प्रभाव को हास्य के परिप्रेक्ष्य मे उपस्थित कर मैंने उसकी उपादेयता पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है। वास्तव मे यह अध्याय इस शोध प्रबन्ध का एक महत्वपूर्ण अध्याय है।

पंचम अध्याय हास्य रस के महत्वपूर्ण नाटकीय रूप-प्रहसन से सम्बन्धित है। नाट्य साहित्य मे प्रहसन के भी अनेक रूप परिलक्षित हुए है। जिस प्रकार तृतीय अध्याय मे विदूषक का महत्व प्रतिपादित करने का प्रयत्न किया गया है उसी प्रकार पंचम अध्याय में प्रहसन की विस्तृत समीक्षा करते हुए हास्य की दृष्टि से भी उसका विवेचन किया है।

षष्ठ अध्याय मे हास्य परिष्कार के साधन के रूप में प्रस्तुत किया गया है। राजनीतिक उत्कर्ष और राष्ट्रीय प्रेम के जागरण के लिए हास्य नाटक मे किस प्रकार सहायक हो सकता है इस सम्बन्ध मे विचार किया गया है, साथ ही साथ चारित्रिक दुर्बलताओं के सुधार के लिए हास्य की उपयोगिता सिद्ध की गई है।

शोध प्रबन्ध का सप्तम अध्याय एक मौलिक सुझाव के रूप मे प्रस्तुत किया गया है। उपलब्धियाँ और निष्कर्ष के साथ हास्य की जो सम्भावनाएँ राष्ट्रीय जीवन मे हो सकती है वे नाटक के रूप में किस प्रकार साकार की जा सकती है इसके सम्बन्ध में कुछ नये विचार उपस्थित किये गये है। इस प्रकार यद्यपि हास्य शताब्दियो से नाटक का एक महत्वपूर्ण अंग रहा है और उस पर समय-समय पर शास्त्रीय और व्यावहारिक दृष्टिकोण से विचार भी किया गया है तथापि मैंने इस विषय पर हास्य के मनोवैज्ञानिक तथा स्वभावगत संदर्भ में विचार किया है।

लगभग तीन वर्षों के अनवरत परिश्रम से मैंने यह कार्य सम्पन्न किया। यद्यपि शोध-प्रबन्ध लिखने मे मुझे विशेष कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, तथापि मै अपने कार्य में संलग्न रही। मेरा उद्देश्य नाट्य साहित्य के क्षेत्र मे रस और मनोविज्ञान के

पारस्परिक सम्बन्ध को उद्घाटित कर हास्य के सांगोपांग विवेचन में है। कहाँ तक इस कार्य में सफल हो सकी हूँ, इसका निर्णय साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान ही कर सकते हैं।

यह शोध-प्रबन्ध अपने आचार्य डॉ० रामकुमार वर्मा पद्मभूषण, अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, इलाहाबाद-विश्वविद्यालय के निर्देशन में प्रस्तुत किया गया है। उनके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करना शब्दों द्वारा सम्भव नहीं है। शोध-प्रबन्ध को अन्तिम रूप देने में पद्मभूषण आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी तथा डॉ० गोपीनाथ तिवारी जी से जो नवीन परिप्रेक्ष्य प्राप्त हुए हैं, उनके लिए भी मैं हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करती हूँ। शोध-कार्य के सन्दर्भ में जिन विद्वानों तथा गुरुजनों एवं मित्रों के सुझाव प्राप्त हुए और जिन विद्वानों के ग्रन्थों से मैंने यथास्थान सामग्री ग्रहण की है, उनके प्रति भी अपना आभार प्रकट करती हूँ।

शान्तारानी

विषय का महत्त्व

विषय का महत्व :—

भारतीय संस्कृति में जीवन का विकास और उसका सन्तुलन अभीष्ट रहा है। मानव के स्वभाव तथा उसके जीवन की परिस्थितियों में निरन्तर संघर्ष होता रहा है। उस संघर्ष के फलस्वरूप ऐसी प्रवृत्तियों का उदय हुआ है जिनसे जीवन-क्रम में परिवर्तन की सम्भावना होती है। अतः जब यह जीवन साहित्य का विषय बनता है तब साहित्यकार ऐसी प्रवृत्तियों का संचयन करता है जिनमें जीवन का उदात्त रूप दृष्टिगत हो सके।

१. हास्य की विशेषता—

हास्य-प्रिय लेखकों की महत्ता पर अपने विचार प्रकट करते हुए प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान् 'थैकरे' ने लिखा है, 'हास्यप्रिय लेखक आप में प्रीति, अनुकम्पा एवं कृपा के भावों को जाग्रत कर उनको नियन्त्रित करता है। असत्य और दम्भ तथा कृत्रिमता के प्रति घृणा और कमजोरी, दरिद्रों, दलितों और दुखी पुरुषों के प्रति कोमल भावों को उदय करने में सहायक होता है। हास्यप्रिय साहित्यकार निश्चित रूप से ही उदारशील होते है। वे तुरन्त ही दुःख-सुख से प्रभावित हो जाते हैं। वे अपने निकटवर्ती लोगों के स्वभाव को भली भाँति समझने लगते है, एवं उनके हास्य-प्रेम, विनोद और अश्रुओं से सहानुभूति प्रकट कर सकते है। सबसे उत्तम हास्य वही है जो कोमलता और कृपा के भावों से भरा हो[1]।'

---

१. The Humorous writer professes to awaken and direct your love, your pity, your kindness, your scorn for untruth, pretension, imposture for linderness for the weak, the poor, the oppressed, the unhappy, A literary man of the humorous turn is prety sure to be of philanthropic nature, to have a great sensibility to be easily moved to pain or pleasure, keenly to appreciate the varieties of temper of people round

मानव-जीवन सतत हास्य प्रेमी रहा है अर्थात् हँसना मनुष्य का एक स्वाभाविक गुण है। मनोवैज्ञानिकों ने चौदह प्रकार की मूल प्रवृत्तियाँ विज्ञान मे बतलाई है, उनमें हास्य की प्रवृत्ति भी सम्मिलित है। जैसे मानव की एक मूल प्रवृत्ति भूख है वैसे ही हास्य भी एक प्रवृत्ति है जिससे मनुष्य को आनन्द की प्राप्ति होती है। डा० गुलाबराय ने एक स्थान पर लिखा है,' जो मनुष्य अपने जीवन मे कभी नही हँसा, उसके लिए रभाभुक सवाद की शब्दावली मे कहना पडेगा—'वृथागत तस्य नरस्य जीवनम्'। वह मनुष्य नहीं पुच्छ विषाणहीन द्विपद पशु है, क्योंकि हँसने की क्रिया पर मनुष्य का अधिकार है।' जैसे भोजन मे अनेक प्रकार के व्यजनो का समावेश होने से यदि उसमे लवण का अभाव हो जाए तो सम्पूर्ण भोजन नीरस तथा स्वादहीन बन जाता है, वैसे ही जीवन में समस्त वैभवों के होते पर भी यदि हँसी का अभाव हो तो जीवन भारस्वरूप और रसहीन हो जाता है। इसी कारण जीवन के आस्वाद के लिए हँसी अत्यन्त आवश्यक है और हँसी के द्वारा ही मधुरिमा का सचार होता है।

वास्तव में हँसी प्रकृति की सबसे बडी विभूति है। स्वास्थ्य की समृद्धि के लिए मनुष्य अनेक प्रकार की पौष्टिक वस्तुओं का प्रयोग करता है, विटामिन-सम्पन्न खाद्य पदार्थों का सेवन करता है। उसी प्रकार हँसी भी एक विटामिन है जिसके बिना जीवन की परिपुष्टि नही हो सकती। हास्य के कारण ही मनुष्य के जीवन मे अनेक उपयोगी गुणो का विकास होता है। यदि शरीर-विज्ञान की दृष्टि से विचार किया जाए तो हास्य ही स्वास्थ्य की सजीवनी है। श्री केलकर के अनुसार—

'जिस समय मनुष्य नहीं हँसता, उस समय श्वासोच्छ्वास की क्रिया सीधी और शान्त रीति से होती है और हँसने के समय उसमे एकदम व्यत्यय हो जाता है। परन्तु उस व्यत्यय का परिणाम श्वासोच्छ्वास की इन्द्रियों और शरीर के रक्त-प्रवाह पर अच्छा ही होता है[१]।' डा० बरसाने लाल चतुर्वेदी ने इसे स्पष्ट रीति से कहा है कि, 'यदि संसार के लोगों को यह अच्छी प्रकार से ज्ञात हो जाए कि हास्य द्वारा हमारे स्वास्थ्य पर कितना अच्छा प्रभाव पडता है तो फिर आधे से अधिक डाक्टरो, वैद्यो और हकीमो आदि के लिए मक्खियाँ मारने के अतिरिक्त और कोई कार्य ही न रह जाए। हास्य से बढ़कर बलवर्द्धक और उत्साहवर्द्धक कोई वस्तु हो ही नहीं सकती। हास्य से हमारे शरीर

---

about him and sympathise in their laughter, love, amusement and tears. The best humour is that which is flavoured throughout with liveliness and kindness.

Humour and Humourists—By *Thackerey* P. 30.

१—हास्य रस मूल—श्री केलकर—अनुवाद श्री रामचन्द्र वर्मा, पृ० १४७

मे नवीन जीवन का तथा नवीन शक्ति का सचार होता है और हमारे आरोग्य की वृद्धि होती है[1]। मै यह कह सकती हूँ कि दिन मे तीन बार हँसने वाले व्यक्ति के लिए डाक्टर की आवश्यकता नही पडती।

२. हास्य और मानव स्वभाव

हास्यप्रिय मनुष्यो के स्वभाव मे सरलता और कोमलता के भाव निहित रहते हैं और उनमे कष्ट सहन करने की क्षमता होती है। कारलाइल महोदय का कथन है कि 'जिस व्यक्ति ने एक बार सच्चे हृदय से खुलकर हँस लिया है वह कदापि बुरा नही हो सकता। प्रसन्नचित्त व्यक्तियो के हृदय मे कोई बुराई नही रह सकती[2]। हास्यप्रिय मनुष्यो के लिए आपत्तियो के पर्वत भी राई-से नगण्य हो जाते है। उनको घोर कालिमा के भीतर भी रजत रश्मियो की झलक दिखलाई पडती है। महान् क्रान्तियो के बीच भी हँसमुख व्यक्ति का स्वास्थ्य तथा आशाप्रद दृष्टिकोण सदैव ही सहायक रहा है। हास्यप्रिय व्यक्ति के संभाषण में फूल झड़ते है, वह जिधर जाता है उधर ही ज्योति की लहर-सी दौड़ जाती है।

हास्य रस मे ऐसा मानसिक आधार होता है जो कि सार-रूप आनद से ही व्याप्त रहता है। भावो पर आधारित अनुभव दुखद तथा सुखद होते है। किन्तु हास्य रस का साहित्यिक एव लौकिक अनुभव आनन्द ही होता है। हास्य द्वारा शृगार मे सफलता आती है और उसकी वृद्धि होती है। वह शृगार का भी शृगार है। हास्य प्रसिद्ध लेखक श्री जी० पी० श्रीवास्तव ने हास्य की उपयोगिता के विषय मे लिखा है, 'बुराई रूपी पापो के लिए इससे बढकर कोई दूसरा गगा-जल नही है। यह वह हथियार है जो बडे बड़ो के मिजाज चुटकियो मे ठीक कर देता है। यह वह कोडा है जो मनुष्य को सीधी राह से बहकने नही देता। मनुष्य ही नही, धर्म और समाज का भी सुधारने वाला है तो यही है। स्पेन के सरवैंटीज ने डानक्यूजोट की रचना करके यूरोप भर के बुढाई फौजदारों की हस्ती मिटा दी। इगलैड के शेक्सपियर ने अपने शाइलाक द्वारा सूदखोरो की हुलिया बिगाड दी। फ्रास के मोलियर ने अपने पैके और मरफूरिए नामक चरित्रो से तत्वज्ञानियो की खिल्ली उडवाकर अरिस्टाटिल मे मतभेद करने वालो को फाँसी के तख्ते पर से उतार

१—हिन्दी साहित्य में हास्य रस—डा० बरसाने लाल चतुर्वेदी, पृ० १३

२—No man who has once wholly and heartily laughed, can be altogether irreclaimably bad. In Cheerful souls, there is no evil. (Corlyle). Page 16.

लिया।[1] वस्तुत हास्य किसी भी प्रकार के अन्याय, अत्याचार तथा सामाजिक एव बौद्धिक असगतियो पर विजय प्राप्त करने का सर्वश्रेष्ठ माध्यम है। अत हास्य वह मनोभाव है जिससे न केवल परिस्थितिजन्य अवसाद दूर हो सकते है बल्कि जीवन में अग्रसर होने की प्रेरणा तथा शक्ति भी मिलती है।

३. हास्य और नाट्य साहित्य :—

भारतीय नाट्य-साहित्य म इसी कारण हास्य को एक आवश्यक स्थान दिया गया है। नाटककारो ने नायक के जीवन की जटिल परिस्थितियो से उत्पन्न कर्कशता एव कठोरता म रस घोलने के लिए ही कदाचित् विदूषक की सृष्टि की है। विदूषक ही अपनी वेशभूषा, पेटूपन तथा वाक्पटुता के द्वारा दर्शको को अपनी ओर आकर्षित करता है। रगमच पर अनेक प्रकार की कलाओ को प्रदर्शित कर वह दर्शको को हँसाने म सहायक होता है जिसमे कि जीवन की क्रान्तिकारी परिस्थितिया में भी मन स्वस्थ और सतुलित रह सके। नाटका में हास्य तत्व की मीमासा इसी दृष्टिकोण से की गयी है कि इसके द्वारा जीवन का सम्पूर्ण चित्र ऐसे परिवेश में उपस्थित किया जाए जिससे समस्त जीवन की मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया म आशा के सन्देश प्रतिपादित किये जा सकें।

सामाजिक तथा व्यक्तिगत त्रुटियो के निराकरण मे हास्य अत्यन्त उपयोगी तत्व सिद्ध होता है। समाज की प्रचलित रूढियाँ, कुरीतियाँ और अनेक प्रकार की विकृतियाँ सदा से ही हास्य रस की सामग्री बनती चली आई है। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रहसन तथा हास्यरस प्रधान नाटका की रचना हमारे साहित्य मे हुई है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ने वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, अन्धेर नगरी, विषस्य विषमौषधम् आदि प्रहसनो की रचना की जो हास्य तथा व्यग्य से परिपूर्ण है। इन प्रहसनो मे समाज में फैली कुरीतिया पर तीव्र व्यग्य किया गया है। स्वर्गीय बद्रीनाथ भट्ट ने 'विवाह विज्ञापन' नामक प्रहसन मे विवाह के दीवाना पर खूब व्यग्य के बाण छोडे है और उनकी हँसी उडाई है। इनके दूसरे नाटक 'चुगी की उम्मीदवारी' मे वोट की भिक्षा का मजाक उड़ाया गया है। श्री अन्नपूर्णानन्द जी की 'मेरी हजामत' में ब्राह्मणो के पेटूपन पर अच्छा उपहास किया गया है—

> 'दावा बहुत हैं इलमे रियाजी मे आपको।
> ब्राह्मण के पेट आके जरा नाप लीजिए॥'[2]

अत यह स्पष्ट है कि साहित्य में हास्य रस का प्रमुख स्थान है। फ्रेंच दार्शनिक

---

१ हास्य रस—श्री जी० पी० श्रीवास्तव—पृ० १२

२ मेरी हजामत—श्री अन्नपूर्णानंद, पृ० ७०

वर्गीसा ने हास्य के विषय मे लिखा है कि, 'हास्य कुछ इस प्रकार का होना चाहिए जिसमें सामाजिकता की झलक हो। यान्त्रिकता से उत्पन्न सामाजिक सनक पर रोक लगाने मे हास्य और व्यग्य ही सफल साधन है। भौतिकता की चपेट में गौण बनते हुए मानवीय सम्बन्धो के प्रति भी हास्य कोमलता एव सजगता का कारण होता है।'[1] धार्मिक क्षेत्र में भी पुरोहितो एव पण्डितो ने हास्य का आधार तथा उसके सहयोग द्वारा अपने श्रोताओ को तीव्र रूप से प्रभावित किया है और हास्य रस की मर्यादा को बनाए रखा है।

हास्य रस की उपयोगिता का वर्णन करते हुए यह पूर्ण रूप से ज्ञात हो जाता है कि यह हमारे साहित्य का एक विशिष्ट अग है। हास्य कभी-कभी जटिलताओं के समाधान का साधन बनता है और कभी प्रेरणा एव सान्त्वना का। हास्य रस ही हमारी मानसिक शक्ति तथा भावना जगत् के सन्तुलन को बनाए रखता है। हास्य के द्वारा ईर्ष्या का दमन किया जाता है और सामाजिक जीवन में क्रोध का शमन होता है। साथ ही हमारी अमानुषिक प्रवृत्तियो का भी नियमन होता है। पाश्चात्य विद्वानो ने भी अपने साहित्य में हास्य का प्रयोग किया है और उसे विशेष रूप से महत्व दिया है। कुछ श्रेष्ठ दार्शनिको ने तो इसकी सूक्ष्म आत्मा को परख कर अनेक सिद्धान्तो का निर्माण भी किया है। वस्तुत हास्य रस मनुष्य के जीवन में, समाज मे आनन्द का सचार करने के साथ ही उसमें स्वस्थ नैतिक एव उपयोगी भावनाओ को विकसित करता है। इस प्रकार हास्य का हमारे साहित्य के प्रत्येक क्षेत्र मे महत्व है। नाटक, निबन्ध, कहानी, पत्र, पत्रिकाओ आदि मे हास्य रस का प्रयोग होता चला आ रहा है क्योंकि हास्य रस के द्वारा ही साहित्यकार अपनी रचना को रोचक तथा सर्वोत्कृष्ट बनाने में सहायक होता है।

४. हास्य और साहित्य के अन्य रूप :—

कहानियों में हास्य रस :—कहानियो मे हास्य व्यग्य का पर्याप्त प्रयोग हुआ है। अन्नपूर्णानन्द वर्मा, बेढब बनारसी, कान्तानाथ पाण्डेय 'चोच', 'निराला', जयनाथ *नलिन, यशपाल, अमृतलाल-नागर, बरसाने लाल चतुर्वेदी, शरदचन्द्र जोशी, शारदा प्रसाद*

१- Laughter must be some of this kind a sort of social gesture. By the fear which it inspires, it restrains-ceechtricity, keeps constantly awaken and in mutual contact certain activities of a secondary order which might retire into their shell and to go to sleep, and in short, softens down whatever the surface of the social body way retain of-mechanical inclasticty.

Laughter by. Henri Bergson page 20.

वर्मा, मिलिन्द, राधाकृष्ण आदि लेखकों ने अपनी कहानियों में हास्य रस की सृष्टि की है। इन लेखकों की रचनाओं में हास्य व्यंग्य शैली के उदाहरण द्रष्टव्य हैं। अन्नपूर्णानन्द द्वारा रचित 'मेरी हजामत' का यह सुन्दर उदाहरण देखिए—

'एक बार मेरे मित्र रेल में सफ़र कर रहे थे। उनके बगल में एक मुसलमान सज्जन बैठे हुए थे जो लखनऊ के रहने वाले थे और इसीलिए अवश्य ही कोई नवाब रहे होंगे। लखनऊ स्टेशन पर दोनों आदमियों ने ककड़ियाँ खरीदीं। मुसलमान सज्जन ने बड़ी नफ़ासत के साथ ककड़ियों को छील कर छोटे छोटे टुकड़े किए और फिर एक एक टुकड़े को सूँघ कर बाहर फेंकने लगे। मेरे मित्र से न देखा गया। उन्होंने पूछा कि आप इन्हें खाते क्यों नहीं ? उन्होंने उत्तर दिया कि ककड़ियाँ खाने में कोई मज़ा नहीं, उनकी खुशबू ही असल चीज है।'[1]

चोंच जी की हास्य रस की कुछ कहानियों का संग्रह 'छड़ी बनाम सोटा' नामक पुस्तक में हुआ है। संग्रह की प्रथम कहानी के नाम से ही इसका नामकरण हुआ है। इन कहानियों के अन्तर्गत लेखक स्वप्न की देखी बातों का उल्लेख करता है और यह अनुमान लगाता है कि वह समय भी दूर नहीं है कि जब श्रीमती जी पूछेंगी 'डियर खाना तैयार है ?' और श्रीमान जी उत्तर देंगे 'हाँ श्रीमती जी, आज्ञा हो तो परोसूँ।'[2]

प्रेमचन्द जी की दो-चार कहानियाँ हास्ययुक्त हैं। उन्होंने मोटेराम शास्त्री को अपनी कहानियों का नायक बनाकर मनोरंजक कहानियों की रचना की है जिनमें उच्च-कोटि के हास्य का प्रयोग हुआ है। भगवतीचरण वर्मा जी ने भी हास्ययुक्त कहानियों की रचना की। इनकी कहानियों का संग्रह 'दो बाँके' के नाम से प्रकाशित हुआ है। निराला जी गम्भीर साहित्य के रचयिता थे फिर भी उनकी कहानियों में हास्य यत्र तत्र मिलता है। 'सुकुल की बीबी' कहानी में हास्यपूर्ण अनेक स्थल मिलते हैं। परीक्षा के समीप विद्यार्थी की क्या स्थिति होती थी, हास्य के दृष्टिकोण से पठनीय है—

'किताब उठाने पर और भय होता था, रख देने पर दूने दबाव से फेल हो जाने वाली चिन्ता। अन्त में निश्चय किया, प्रवेशिका के द्वार तक जाऊँगा, धक्का न मारूँगा, सभ्य लड़के की भाँति लौट जाऊँगा, परीक्षा के पश्चात् फिर' मेरे अविचल कण्ठ से यह सुनकर कि सूबे में पहला स्थान मेरा होगा, अगर ईमानदारी से पर्चे देखे गए...। पर ज्यों-ज्यों फल के दिन निकट होते आते, मेरी आत्मा-वल्लरी सूखती गयी[3]।'

बेढब बनारसी जी के हास्यपूर्ण कहानियों के दो संग्रह 'मसूरी वाली' तथा

---

१. मेरी हजामत—श्री अन्नपूर्णानन्द—पृ० ४८

२. घड़ी बनाम सोटा—'चोंच' पृ० ७

३. सुकुल की बीबी-निराला, पृ० १६

'बनारसी एक्का' प्रसिद्ध है। बनारसी एक्का का परिचय लेखक ने विनती हास्यात्मक शैली में प्रस्तुत किया है—

'कुछ चीजें परमात्मा बनाता है और कुछ जब काम की अधिकता हो जाती है तब ठेके पर भी बनवा लेता है।' बनारसी घोड़े के दुर्बल पतले शरीर का वर्णन भी पठनीय है,' 'मोटाई इन वीर तुरगों की ऐसी होती है कि आश्चर्य होता है कि उनकी कमर से कवि और शायर अपनी नायिकाओं की कमर की उपमा न दे कर इधर-उधर भटकते क्यो रहे है ? इनका सारा शरीर ऐसा लगता है जैसे अंग्रेजी कानून।'

'साधारण एक्के के घोड़े भारतीय दरिद्रता के अवलम्ब हैं, या यों कहिए कि आजकल के स्कूलो और कालिजों के अधिकाश विद्यार्थियों की चलती-फिरती दौड़ती तस्वीरें है...यह मजनू की तस्वीर है। पसली हड्डियाँ ऐसी दृष्टिगोचर होती है जैसे एक्सरे का चित्र। हांकों की गति हिन्दी कहानी लेखको की पैदाइश की सख्या से कम न होगी[१]।' इस भाँति यह स्पष्ट है कि हिन्दी साहित्य की कहानी शैली मे हास्यपूर्ण रचनाएँ पर्याप्त मात्रा मे प्राप्त होती है।

उपन्यास साहित्य में हास्य रस—उपन्यासो का आरम्भ भारतेन्दु युग से ही हुआ। जैसी उन्नति भारतेन्दु काल मे नाटको तथा निबन्धो में हुई ऐसी कथा साहित्य मे नही हुई। हास्य रस पर बहुत कम उपन्यासो की रचना हुई। बालकृष्ण भट्ट द्वारा रचित 'सौ अजान, एक सुजान' नामक उपन्यास में हास्य की अवतारणा हुई है। उपन्यास मे एक स्थान पर लडने वाली औरतो के विषय मे कहा है, 'हवा के साथ लडने वाली कोई कर्कशा न लड़ेगी तो खाया हुआ अन्न कैसे पचेगा, यह सोच अपने पडोसियो पर बाण से तीखे और रूखे बचनों की वर्षा कर रही है।' श्री जी० पी० श्रीवास्तव, निराला, केशवचन्द्र वर्मा, विन्ध्याचल प्रसाद गुप्त, सरयू पण्डा गौड, वरुण, द्वारकाप्रसाद, बेढब बनारसी, अमृतलाल नागर, यशपाल आदि लेखको ने भी अपने उपन्यासो मे हास्य रस की सृष्टि करके उपन्यासों को रोचक बनाने का प्रयत्न किया है।

निबन्ध-साहित्य में हास्य-रस—भारतेन्दु युग के प्राय. सभी प्रमुख लेखकों ने अपनी रचनाओ मे हास्य-व्यग्य का पुट दिया है। भारतेन्दु जी के निबन्धो में कंकड स्तोत्र, पाँचवें पैगम्बर, स्वर्ग मे विचार-सभा का अधिवेशन आदि व्यग्य से ओतप्रोत हैं। बालकृष्ण भट्ट ने भी कई हास्यपूर्ण निबन्धों की रचना की। जैसे—पुरुष अहेरी की स्त्रियाँ अहेर हैं, ईश्वर क्या ही ठठोल है, नाक निगोड़ी भी बुरी बला है आदि। प्रतापनारायण मिश्र, राधाचरण गोस्वामी तथा बालमुकुन्द गुप्त ने भी इस क्षेत्र में अच्छी सफलता प्राप्त की है। गुप्त जी के शिव शम्भू के चिट्ठे तथा गोस्वामी जी की 'यमलोक

१—बनारसी एक्का—बेढब बनारसी—१, ३ पृ०

यात्रा' अद्भुत अपूर्व रचनाएँ हैं ।

द्विवेदी युग के निबन्ध लेखकों में बाबू गुलाबराय, जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, शिवपूजन आदि प्रमुख हैं । आगे चल कर रुद्रदत्त शर्मा, अन्नपूर्णानन्द वर्मा, हरिशंकर शर्मा, गोपाल प्रसाद व्यास, प्रभाकर माचवे आदि ने व्यंग्यात्मक एवं हास्यात्मक निबन्धों की रचना की । इनके अतिरिक्त गम्भीर लेखकों में हजारी प्रसाद द्विवेदी, रामविलास शर्मा तथा रामचन्द्र शुक्ल के आलोचनात्मक निबन्धों मे भी हमें कहीं कहीं हास्य तथा चुटीले व्यंग्य के उदाहरण मिलते है । निबन्ध-लेखकों की व्यंग्यपूर्ण शैली के दो एक उदाहरण प्रस्तुत है—

'आप भाई लार्ड ! जब से भारतवर्ष में पधारे है, बुलबुलों का स्वप्न ही देखा है या सचमुच कोई करने के योग्य कोई काम भी किया है ? खाली अपना ख्याल ही पूरा किया है[1] ।

'सच पूछिए तो शुरू-शुरू मे मनुष्य कुछ साम्यवादी ही था । हँसना-हँसाना तब शुरू हुआ होगा, जब उसने कुछ पूंजी इकट्ठी कर ली होगी और संचय के साधन जुटा लिए होगे[2] ।'

वर्तमान काल मे निबन्ध साहित्य में हास्य का प्रयोग करने वाले लेखकों में डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, डा० केसरीनारायण शुक्ल, निराला, श्री विश्वम्भर नाथ शर्मा 'कौशिक', श्री शम्भुप्रसाद बहुगुना विशेष रूप से उल्लेखनीय है ।

श्री पीताम्बरदत्त जी समाज तथा व्यक्ति के बीच व्यवधान उपस्थित करने वाली मनोवृत्ति को व्यंग्य द्वारा दूर करने में सिद्धहस्त है । साधारण रूप से सौगन्ध खाने की बात ही लीजिए । इसे अनेक दृष्टिकोणों से विचार कर डा० पीताम्बर जी ने अपने 'सौगन्ध' शीर्षक लेख में बड़ी ही सुन्दरता से प्रस्तुत किया है । निम्नलिखित पंक्तियाँ देखिए—

'यदि लोग मेरा विश्वास करते तो मुझे सौगन्ध खाने की, ईश्वर की दुहाई देने की, रामजी का नाम लेने की, क्या जरूरत थी ? लेकिन क्या करूँ मामला यहाँ तक पहुँच गया है कि यदि मै अपने किसी मित्र को नमस्कार करूँ और सौगन्ध खाऊँ कि नमस्कार करने वाला सेन्ट परसेन्ट मै ही हूँ, तो मेरे मित्र को विश्वास ही न आवे कि मैं उनके आगे अपना शरीर लिए खड़ा हूँ—ईश्वर कसम, ससुर कसम, बाप कसम, तुम्हारी कसम, बाइगाड, वगैरा कसमे खाना मामूली बात है[3] ।'

१—बालमुकुन्द गुप्त—निबन्धावली, पृ० १७९

२—हजारीप्रसाद द्विवेदी—अशोक के फूल—पृ० ४८

३—श्री पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल—'सौगन्ध' लेख, पृ० १

कविता में हास्य-रस—साहित्य के अन्य रूपो मे कविता सर्वप्रमुख है। संस्कृत के आचार्यो ने काव्य मे रस की नवधा निष्पत्ति मे हास्य को भी महत्वपूर्ण स्थान दिया है। हास्य का स्थायीभाव हास है, कुरूपता और अनुचित कथन इसका उद्दीपन है और इसके पात्र आलम्बन है। मध्योच्च स्वर, अट्टहास आदि इसके अनुभाव हैं तथा हर्ष, चपलता आदि सचारी भाव है। प्राचीनकाल मे इसका प्रयोग अधिकाधिक नाटक के क्षेत्र मे हुआ है। काव्य मे स्वतन्त्र रूप से भी विनोद और परिहासरूप के लिए उसका प्रयोग किया गया है। उदाहरण के लिए विजया का वर्णन देखिए—

पान ते ज्ञान की खान खुले विन पान खुशी नहिं होत है वानी।
चाहत है सब जागी जती अरु देवन गे महादेवहु ज्ञानी॥
याकी समान न आन कछू मुहि दीखत है जग मुक्ति नसानी।
गग ते ऊँची तरग उठे जब अग मे आवति भग भवानी॥[1]

प्रतापनारायण मिश्र ने दो प्रकार के हास्य की रचना की है एक तो व्यग्यात्मक हास्य जो उद्देश्य मिश्रित होता था और दूसरा शुद्ध हास्य। उनके शुद्ध हास्य का उदाहरण 'बुढापा' कविता मे प्रस्तुत है—

'हाय बुढापा तोरे मारे अब तो हम नकन्याय गयन,
करत धरत कछु वनते नाही कहाँ जान औ कैस करन,
छिन भरि चटकि छिन्ने माँ मद्धिम जस बुझात खन होय दिया
तैसे निखवस देखि परत है हमरी अविकल के लच्छन।'

'अस कछु उतरि जाति है जीते बाजी ब्यरिया बाजी बात।
कैस्यो सुधि ही नाही आवति मूडुई काह न दे मारेन॥
कहा चहो कछु, निकरत कछु है जीमि राड का है यह हालु
कोऊ याकी वात न समुझै चाहे बीसन दाँय कहन[2]।'

इसी प्रकार आधुनिक काल मे भी विशेष रूप से व्यग्य और परिहास के लिए हास्य का प्रयोग काव्य के अन्तर्गत हुआ है। अन्नपूर्णानन्द ने 'महाकवि चच्चा' नामक ग्रन्थ मे लिखा है—

'नीच हौं निकाम हौं नाराधम हौं नारकी हौं
जैसो तैसो तेरो हौं अनत अब कहाँ जायँ
ठाकुर हो आप हम चाकर तिहारे सदा
आपका विहाय और मौका कहो कौन ठाँव

१—जगन्नाथ प्रसाद भानु कवि—काव्यप्रभाकर, पृ० ४४३
२—प्रतापनारायण मिश्र—प्रताप पीयूष—पृ० २००

गज की गुहारि सुनि धाय निज लाव छाँड़ि
चचा की गुहारि सुनि कहा भयो पीर पाँव
गनिका अजमील के औगुन गनै न नाथ,
लाखन उबारि अब माखन हमारे दाँव[1]

इस भाँति प्राचीन और आधुनिक काल में हास्य का प्रयोग कवियों के द्वारा निरन्तर ही होता रहा है और यह कहा जा सकता है कि जिस अनुपात में कविता में हास्य का प्रयोग होगा उसी अनुपात में जीवनगत स्वास्थ्य और आशावादी दृष्टिकोण की प्रतिष्ठा साहित्य में होगी।

पत्र पत्रिकाएं —भारतेन्दुकाल में हास्य रस की पत्रिकाओं का अभाव तो न था परन्तु द्विवेदी युग में पत्रिकाओं की विशेष वृद्धि हुई। पत्रकार साहित्य में भी हास्य को विशिष्ट स्थान प्राप्त हुआ। भारतेन्दु युग में हिन्दी गद्य के विकास के लिए तथा उसके प्रति जनता का आकर्षण उत्पन्न करने के लिए प्रत्येक पत्र सम्पादक हास्य के विविध स्तम्भ अपने पत्र में रखता था। द्विवेदी युग में हास्य का विस्तार तो हुआ किन्तु ज्ञान क्षेत्र की विविध दिशाओं के उद्‌घाटित होने पर हास्य को वैसी प्रधानता प्राप्त नहीं हुई क्योंकि विविध विषयों का निरूपण ही जनता के हृदय में कौतूहल उत्पन्न करने के लिए पर्याप्त था। हास्य का जो रूप उस युग में प्राप्त हुआ वह अधिकतर व्यंग्य एवं विद्रूप के रूप में हुआ।

२०वीं शताब्दी के प्रारम्भ में मिर्जापुर से निकलने वाला साप्ताहिक पत्र 'मतवाला' इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए विशेष प्रयत्नशील रहा। घटनाचक्र का 'चलती चक्की देख के दिया कबीरा राय, दो पाटन के बीच में साबत बचा न काय।' के रूप में इस शीर्षक से प्रस्तुत किया जाता था। उसी प्रकार 'मदारी' 'मनमुजी' आदि अनेक साप्ताहिक पत्र तत्कालीन परिस्थितियों का विश्लेषण करते हुए हास्य की अभिवृद्धि में सहायक हुए। आगरे से निकलने वाला मासिक पत्र नोकझोंक भी इस दिशा में एक सफल प्रयत्न कहा जा सकता है।

इन पत्रिकाओं में अधिकांश पत्रिकाएँ यद्यपि उच्च कोटि के हास्य की नहीं हैं तथापि हमारे पत्रकार हास्य रस की ओर विशेष ध्यान दे रहे हैं। इन पत्रिकाओं में व्यंग्यचित्रों का भी हास्य की दृष्टि से अधिक महत्व है। सामाजिक एवं राजनीतिक विषयों को लेकर विविध व्यंग्य चित्र पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं। इन व्यंग्य चित्रों का भी हास्य के सृजन में अधिकाधिक योग आंका जा रहा है। इस विवेचन से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि सामान्यतः हिन्दी साहित्य के प्रत्येक अंग नाटक, कहानी,

---

१—महाकवि चच्चा—चन्द्रपूर्णानन्द, पृ० १८

उपन्यास, निबन्ध, पत्र-पत्रिकाओ आदि मे हास्य-व्यग्य का विकास हुआ। यद्यपि नाटक और कविता के क्षेत्र में जितना हास्य रस का विकास हुआ है उतना अन्य किसी क्षेत्र मे नही हुआ। यह कहा जा सकता है कि अन्य रसो की अपेक्षा हिन्दी का हास्य-रसात्मक साहित्य अल्प मात्रा मे है, तथापि जो कुछ भी हमे प्राप्त है उसमे जीवन की प्रेरणा और प्रगति है। पत्र-पत्रिकाएँ अपने हास्य विशेषाको द्वारा इस रस के रचयिताओ को अधिक प्रोत्साहन दे रही है। परिणामस्वरूप हास्य रस सम्बन्धी अनूदित तथा मौलिक ग्रन्थो का सृजन हिन्दी में विशेष रूप से हो रहा है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि साहित्य की सभी प्रमुख विधाओं में हास्य का प्रयोग न्यूनाधिक मात्रा में हुआ है। किन्तु नाटक में हास्य के प्रयोग की विशिष्ट महत्ता है। सामान्य वर्णन की अपेक्षा कथोपकथन या सवाद मे हास्य अधिक स्वाभाविक एव प्रभावपूर्ण हो जाता है। मनोविज्ञान की क्रिया एव प्रतिक्रिया से जो वाक्य पात्रो द्वारा कहे जाते है उनमे व्यग्य परिहास और विनोद की मात्रा अधिक रहती है। दृश्य काव्य होने के कारण नाटक मे हास्य का प्रभाव अधिक स्थायी एव कुतूहलपूर्ण हो जाता है। अन्नपूर्णानन्द ने एक परिस्थिति का चित्रण करते हुए लिखा कि 'चूल्हा तो ठडा था किन्तु पत्नी एक कोने मे सुलग रही थी।' यदि यह परिस्थिति नाटक मे होती तो स्त्री कह सकती थी कि 'मै तो सुलग रही हूँ किन्तु तुम जो पेट्रोल बन कर मुझ पर बरस रहे हो।' इस प्रकार सवादो के विनिमय मे हास्य अधिक मुखर और परिस्थिति-व्यजक हो जाता है। अत. साहित्य की अन्य विधाओ की अपेक्षा नाटक हास्यरस का एक शक्तिशाली माध्यम कहा जा सकता है।

५. हास्य सम्बन्धी आलोचना—

यह देखा जा चुका है कि आधुनिक साहित्य के आरम्भ से ही लेखक हास्य रस की ओर उन्मुख रहे है। हिन्दी साहित्य मे हास्य रस पर रचित अनेक आलोचनात्मक ग्रन्थ मिलते है परन्तु इस क्षेत्र मे शोध कार्य अत्यन्त अल्प मात्रा में हुआ है। डा० बरसाने लाल चतुर्वेदी द्वारा लिखित शोध प्रबन्ध 'हिन्दी साहित्य मे हास्य रस' अभी प्रकाशित हुआ है। श्री बरसाने लाल जी ने हास्य रस पर यह ग्रन्थ लिख कर यह स्पष्ट किया है कि साहित्य मे हास्य रस का भी अपना स्थान है तथा उसकी अपनी मान्यता है।

डा० बरसाने लाल जी अपनी मौलिक रचनाओ मे भी हास्य के स्रष्टा है। इस ग्रन्थ द्वारा उन्होंने हास्य की सैद्धान्तिक विवेचना कर अपनी आलोचनात्मक प्रतिभा का परिचय दिया है। शोध की दृष्टि मे इनका ग्रन्थ उच्चकोटि का है क्योकि उन्होंने हास्य रस के सिद्धान्तार्णव में अवगाहन करने के कठिन परिश्रम का परिचय दिया है तथा बहु-मूल्य रत्न निकाल कर हमारे समक्ष उपस्थित किये है। भारतीय साहित्य-शास्त्र के अनुसार

हास्य रस के जितने भेदोपभेद हो सकते है, उनका उल्लेख उन्होंने अपने इस ग्रन्थ में किया है। कहीं-कही योरोपीय साहित्य शास्त्र के प्रचलित भेदो से उनका साम्य भी दिखलाया है। उन्होने पैरोडी एवं कामेडी के भिन्न रूपों की परिभाषा देकर ही सन्तोष नही किया वरन् इनके भेदों, उपभेदो का भी वर्णन कर विषय को अधिक पल्लवित तथा पुष्पित किया है। उन्होंने अपने ग्रन्थ मे भारतेन्दु काल से लेकर आधुनिक काल तक की हास्य-प्रवृत्तियो का वर्णन किया है। अपने ग्रन्थ मे उदाहरण दे कर हास्य का प्रत्येक तत्व स्पष्ट किया है और उसे साहित्य की कसौटी पर कसा है। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में बिखरे हुए हास्य-साहित्य का सकलन एवं विश्लेषण प्रस्तुत कर शोधकर्ता ने हास्य सम्बन्धी सामग्री को एक स्थान पर लाने का प्रयत्न किया है। साराश मे यह प्रबन्ध हास्य-साहित्य में एक महत्पूर्ण योग है।

आलोचनात्मक ग्रन्थो मे श्री जी० पी० श्रीवास्तव की 'हास्य रस' नामक पुस्तक मिलती है। इस पुस्तक मे उनके सिद्धान्त विषयक लेखों का तथा भाषणों का सग्रह है। उनकी आलोचना जितनी व्यापक है, मूल रचना उतनी ही सामान्य कोटि की है। वे परिस्थिति तथा पात्रो के नामो से ही हास्य की सृष्टि करते हैं। अपने नाटको में उन्होंने पात्रों के नामकरण ही मे हास्य की उद्भावना समझी है। उदाहरण के लिए बरबाद अली, वाही तबाही, मुसीबत मल, बाबू बम्बूसिंह तथा मौलाना हुदहुद आदि। इनके हास्य मे कहीं कहीं शिष्टता का अभाव है। 'अकल की मरम्मत' मे उन्होंने अपने पिता को अपनी प्रियतमा समझ कर 'प्यारी' शब्द से सम्बोधित किया है। यद्यपि श्रीवास्तव जी के हास्य को स्थायी तथा उत्कृष्ट कोटि का नहीं कहा जा सकता फिर भी इस दिशा में उनका प्रयास सराहनीय है। उन्होंने फ्रान्सीसी हास्य लेखक मौलियर के नाटकों का हिन्दी में अनुवाद किया है। हास्य रस के पश्चिमी तथा पूर्वी अनेक विद्वानो की कृतियो का उन्होने अध्ययन अवश्य किया है जैसा कि उनके अनुवादो से स्पष्ट होता है। उन्होने हास्य नाटको के अनुवादो के साथ साथ हास्य के सैद्धान्तिक पक्ष पर भी प्रकाश डाला है।

पाश्चात्य विचारको के आदर्शो पर आधारित डा० एस० पी० खत्री का ग्रन्थ 'हास्य की रूप रेखा' भी उच्च कोटि का ग्रथ है। खत्री जी ने अपने ग्रन्थ मे हास्य का विश्लेषण पाण्डित्यपूर्ण ढग से किया है। उन्होंने मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से हास्य के सिद्धान्तो का विश्लेषण भी किया है। साथ ही साथ उसके आलम्बनो का तथा भेदो का शास्त्रीय ढंग से विवेचन किया है।

श्री प्रेमनारायण दीक्षित तथा त्रिलोकी नारायण दीक्षित द्वारा लिखी हुईपुस्तक 'हास्य के सिद्धान्त तथा आधुनिक हिन्दी साहित्य' भी इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण है। इस पुस्तक मे दीक्षित जी ने साहित्य मे प्रमुख रस की तथा उसके सिद्धान्तों की सम्यक्

विवेचना की है तथा साथ ही हास्य के भेदो एवं आलम्बनों का भी शास्त्रीय ढंग से वर्णन किया है। सिद्धान्तों के प्रतिपादन तथा विवेचन के साथ-साथ भारतीय और पाश्चात्य सिद्धान्तो मे सामंजस्य स्थापित करना भी लेखक का महत्वपूर्ण उद्देश्य रहा है।

मराठी के विद्वान् केलकर ने 'हास्य अणि विनोद' नामक पुस्तक की रचना की है। उसका हिन्दी रूपान्तर प्रसिद्ध विद्वान् श्री रामचन्द्र वर्मा ने 'हास्य रस' के नाम से किया है। यह पुस्तक हास्य रस के विश्लेषण के दृष्टिकोण से सर्वोत्कृष्ट है। इस पुस्तक में हास्य का विवेचन स्पष्टता और गहराई के साथ हुआ है।

प्रोफेसर जगदीश पाण्डे का ग्रन्थ 'हास्य के सिद्धान्त तथा मानव में हास्य' भी एक सफल ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ मे हास्य रस का वर्णन मनोवैज्ञानिक तथा शास्त्रीय ढंग से हुआ है।

हास्य के सम्बन्ध मे डा० रामकुमार वर्मा ने भी अपने हास्यरसपूर्ण एकाकी सग्रह 'रिमझिम' की भूमिका मे एक अत्यन्त गवेषणापूर्ण समीक्षा की है। उन्होने पूर्व और पश्चिम की समस्त हास्य प्रवृत्तियो का विश्लेषण करते हुए इन दोनो चिन्ताधाराओ में साम्य और वैषम्य कर निरूपण किया है और हिन्दी साहित्य की मौलिक प्रकृति को ध्यान में रखते हुए हास्य के अनेक रूपो की अवतारणा की है। हास्यमूलक धारणा प्रधानतः भारतीय विचारधारा से उद्भूत हुई है। उसमे इन्होंने एक मौलिक दृष्टि का परिचय दिया है। हास्य के उन विविध रूपो के आधार पर उन्होंने अपने अनेक एकाकी नाटक उदाहरण के रूप में भी प्रस्तुत किए हैं। हास्य का यह विवेचन अत्यन्त सारगर्भित और प्रेरणाप्रद है।

हास्य-रस के सम्बन्ध मे आलोचना और शिल्प की जितनी सामग्री मेरे प्रयत्नो द्वारा प्राप्त हो सकती थी उस सबका पूर्ण उपयोग करने का प्रयत्न मैने किया है। अन्य साहित्यों से मौलिक और अनुवाद रूप से प्राप्त होने वाली सामग्री भी मैंने यथासम्भव देखी है। इस समस्त सामग्री को मैने अपने चिन्तन की कसौटी पर कसा है और विषय की परिधि के अनुसार अपने व्यक्तिगत विचार भी प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। इस प्रकार हिन्दी साहित्य मे हास्य के उन समस्त अवतरणों का सयोजन किया है जिससे सुधीजन इस विषय पर विचार कर सकें और हिन्दी साहित्य की एक महत्वपूर्ण प्रवृत्ति के रूप मे इसे स्वीकार कर सकें।

अन्य रसो की अपेक्षा हिन्दी साहित्य में हास्य रस कम ही प्राप्त होता है। राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक दृष्टियो मे भारतीय जीवन कई शताब्दियो मे अव्यवस्थित और अशान्त रहा है जिससे जन-जीवन में हास्य की स्वाभाविक और ऋजु प्रवृत्ति धीरे-धीरे कम,होती गयी है। परिणामस्वरूप हिन्दी में हास्य गौणवृत्ति बन कर रह गया। आवश्यकता इस बात की है कि राष्ट्रीय दृष्टि से इस प्रवृत्ति को पुन. जागृत किया

जाय। हमें अपने मानसिक स्वास्थ्य को अविक सतुलित करना है और यह तभी सम्भव हो सकता है जब हम जीवन को उसके स्वाभाविक और निर्विकार रूप में देख सकें और उससे सुख तथा आनन्द की प्राप्ति कर सकें। सुख एवं आनन्द की भावना-भूमि मे ही हास्य और उसके विविध रूपो के उदात्त होने की सम्भावना होती है।

मुझे आशा है कि मेरे इस प्रयास से हिन्दी साहित्य का यह अंग एक विशिष्ट रूप ग्रहण करने मे समर्थ हो सकेगा, तथा हिन्दी के साहित्यकारो, चिन्तकों तथा मनीषियो को आत्मविश्लेषण करने का सकेत प्राप्त हो सकेगा। मेरे इस कार्य की सफलता का निर्णय विद्वान् ही कर सकेंगे। मै तो केवल अपने अल्प प्रयासो के प्रति ही आस्थावान हूँ।

□

प्रथम अध्याय : हिन्दी नाटक

१. हिन्दी नाटकों का उद्‌भव और विकास—

साहित्य के अन्य अगो की भाँति हिन्दी नाटको का इतिहास बहुत प्राचीन नही है। हिन्दी-नाटकों का आरम्भ भारतेन्दु युग से ही माना जाता है। यह कहना चाहिए कि हरिश्चन्द्र जी ही हिन्दी नाटको के जन्मदाता है। भारतेन्दु जी के पूर्व यद्यपि हमे कुछ नाटक मिलते है, परन्तु उन नाटको में नाट्य तत्वो का अभाव था। कथावस्तु और चरित्र-चित्रण की सुनिश्चित शैली नही थी, केवल पद्यमय सवादो मे ही नाटकीयता की पूर्ति समझी जाती थी।

हिन्दी नाटक के अभाव के निम्नलिखित कारण थे—

१—हिन्दी में नाटको की कोई विशिष्ट परम्परा नही थी।

२—हिन्दी के रगमच का निर्माण नही हुआ था।

३—मुसलमानी राज्यकाल मे मूर्तिपूजा की भाँति रगमंच भी आक्रोश और घृणा की दृष्टि से देखा जाता था।

४—हिन्दी गद्य साहित्य का कोई निश्चित रूप नही था।

५—जनजीवन मे साहित्य के प्रति कोई उत्साह नही था।

हिन्दी नाटकों का इतिहास दो सूत्रों से विकसित हुआ। पहला सूत्र परम्परा से जोडा जा सकता है और दूसरा सूत्र राष्ट्रीय चेतना के विकास से। परम्परागत सूत्र सस्कृत नाटको के अनुवाद से आरम्भ हुआ, वह सामान्य रूप से पद्यात्मक था और दूसरा सूत्र भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से आरम्भ हुआ जो कि वास्तव मे नाटक के आरम्भ का मगलाचरण है। इस पर हम क्रमश विचार करेंगे।

२. परम्परागत सूत्र भारतेन्दु युग से पूर्व—

भारतेन्दु जी के पूर्ववर्ती नाटको में नेवाज कृत 'शकुन्तला' नाटक और हृदय राम कृत 'हनुमन्नाटक' उल्लेखनीय है। विश्वनाथ सिह रचित 'आनन्द रघुनन्दन' नाटक भी प्राप्त होता है जो कि ब्रजभाषा में ही लिखा गया है, इसमे छन्दो की प्रधानता है। भारतेन्दु जी के पिता श्री गिरधर दास जी का 'नहुष' नाटक ब्रजभाषा मे लिखा हुआ मिलता है। यह मौलिक नाटक है, इसमे नाटक के नियमो का यथासम्भव पालन हुआ है।

लक्ष्मणसिंह द्वारा 'शकुन्तला' नाटक खड़ी बोली में लिखा हुआ मिलता है यद्यपि यह नाटक कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तल का अनुवाद है। अनुवाद अवश्य ही सरस और सुन्दर है। भारतेन्दुजी के पूर्व जितने भी नाटकों की रचना हुई वे सामान्यत अनूदित और व्रजभाषा पद्य में ही लिखे गए थे। अतः इन नाटकों में नाटकीय तत्व पूर्ण मात्रा में नही उभर सके है।

३. भारतेन्दु युग—

पूर्ववर्ती नाट्य परम्पराओं को भारतेन्दु जी ने अपने नाट्यसाहित्य में अपनाया और युगानुरूप सुधार कर उनमें साहित्यिक गुणों का विकास किया। इन्होंने गद्य के प्रयोग को महत्व दिया। उन्होंने प्राकृत से 'कर्पूर मजरी' तथा सस्कृत से पाखण्ड, विडम्बन, धनजय विजय और मुद्राराक्षस आदि नाटकों का सुन्दर अनुवाद किया। अंग्रेजी के नाटक 'मर्चेन्ट अव् वेनिस' का अनुवाद भी 'दुर्लभ-बन्धु' नाम से किया। भारतेन्दु ने मौलिक नाटकों की भी रचना की जो अपने समय में अत्यधिक लोकप्रिय हुए और उनका अभिनय भी किया गया। इन नाटकों में चन्द्रावली नाटिका प्रमुख है। श्री बचनसिंह ने भारतेन्दु जी के नाटकों की विस्तृत पृष्ठभूमि की चर्चा करते हुए लिखा है—

'भारतेन्दु ने अपने नाटकों की कथावस्तु जीवन के विविध क्षेत्रों से ली। किसी नाटक में एकान्तिक प्रेम का निरूपण किया गया है तो किसी में सम-सामयिक तथा धार्मिक समस्याओं का चित्रण, कहीं ऐतिहासिक और पौराणिक वृत्त के आधार पर नाटक का ढाचा खड़ा किया गया है, तो किसी में देश की दुर्दशा का मार्मिक चित्र उपस्थित किया गया है। भारतेन्दु के पूर्व नाटकों के सीमित विषय की दीवारें टूट गईं और विषय-भूमि को पूर्ण विस्तार मिला। 'नील देवी', 'सती प्रताप' में इतिहास और पुराण की वह उज्ज्वल गाथाएँ है जिनके आलोक में पाश्चात्य सस्कृति की चकाचौंध से विपथगामिनी आर्य ललनाएँ अपना मार्ग पहचान सकती है। यह वास्तव में पाश्चात्य सस्कृति के विरोध में सास्कृतिक जागरण का चिह्न है, वस्तुत अतीत की स्वस्थ कथाओं और उदात्त चरित्रों से शक्ति सचय करना ही उनका उद्देश्य है[१]।'

इस उद्देश्य से प्रेरित होकर भारतेन्दु युग में अन्य साहित्यकारों ने भी नाट्य-रचना की और धर्म सुधार, देश-प्रेम, समाज-सुधार आदि भावना का प्रचार किया। भारतेन्दु जी का अनुकरण करते हुए प्रतापनारायण मिश्र ने भारत दुर्दशा की रचना की। श्रीनिवास दास ने 'रणधीर प्रेम मोहिनी', 'तप्ता सवरण' और 'सयोगिता स्वयवर' नाटकों की रचना की। किशोरीलाल गोस्वामी ने 'मयक मजरी' और 'नाट्य-सम्भव'

---

१. हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ—श्री जय किशन प्रसाद-प्रथम संस्करण १९५१पृ० ४५३

नाटकों का सृजन किया। राधाकृष्ण दास ने 'महाराणा प्रताप' नाटक की रचना की। सामाजिक समस्याओं को लेकर भी नाटककारो ने नाटको की रचना की। उनमें भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का 'प्रेम जोगिनी' राधाकृष्ण दास का 'दुखिनी बाला' और प्रतापनारायण मिश्र का 'गो सकट' प्रसिद्ध है।

राष्ट्रीय एव देश-प्रेम की भावना को जाग्रत करने के लिए भी अनेक प्रकार के नाटक लिखे गये। भारतेन्दु जी कृत 'भारत दुर्दशा' नाटक में विदेशी शासन से पीड़ित एव पददलित हुई राजनीति और सामाजिक अवस्था के बड़े ही मार्मिक चित्र मिलते हैं। इन्होंने अपने प्रहसनो मे समाज में फैली हुई कुरीतियो पर करारे व्यग्य प्रस्तुत किए हैं। कुछ अन्य नाटककारो ने भी हास्य प्रधान नाटक लिखे जैसे 'शिक्षा-दान', 'जैसा काम वैसा परिणाम', राधाचरण गोस्वामी का 'तन मन धन' 'श्री गोसाई जी के अर्पण' और 'बूढ़े मुँह-मुँहासे' आदि। इन नाटककारो ने हास्य एवं व्यंग्यपूर्ण नाटकों की रचना कर समाज में फैली हुई अन्ध मान्यताओं को दूर करने का प्रयत्न किया।

भारतेन्दु पीढी के नाटककारो ने बगला, सस्कृत, अग्रेजी और अन्य भाषाओ के नाटको के अनुवाद किये। इस क्षेत्र में रामकृष्ण वर्मा और लाला सीताराम ने उल्लेखनीय कार्य किया। इस युग की नाट्य-रचना के सम्बन्ध में दो बातें विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं—एक तो यह कि इस युग के नाटकों में दैवी एवं पौराणिक पात्रो की सख्या कम होती गई, और मानव की कुशाग्र बुद्धि तथा उसके भावो में चमत्कार प्रदर्शित होने लगा। इस भाँति नाटक का मानव जीवन के विविध अगो से सबंध स्थापित हो गया। दूसरी बात यह कि पद्य के स्थान पर गद्य को प्रधानता दी गई और पद्य में खड़ी बोली की महत्ता पर जोर दिया गया। सस्कृत की शास्त्रीय शैली—भरतवाक्य, नान्दी पाठ, स्वगत कथन—का अनुकरण हुआ। पारसी नाटक शैली का प्रभाव भी कहीं कहीं स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। द्विजेन्द्र लाल राय के नाटकों के अनुवादो ने नाटकों के पद्य के महत्त्व को दूर करने मे हिन्दी नाटककारो पर अपना महत्वपूर्ण प्रभाव डाला। प्राय. नाटकों मे बाहरी सक्रियता विशेष रूप से मिलती है किन्तु आन्तरिक सघर्ष बहुत कम मात्रा में प्राप्त होता है।

भारतेन्दु जी ने नाटकों द्वारा एक ओर तो हास्य की सृष्टि की तथा दूसरी ओर समाज मे फैली हुई कुरीतियों का दिग्दर्शन कराया और राष्ट्रीय भावना को उत्पन्न किया। चारो ओर नवीन भावनाएँ यत्र तत्र बिखरी पडी थी परन्तु कोई ऐसा व्यक्ति न था जो उन्हें एकत्रित कर सुश्रृखलित कर देता। उस समय भारतेन्दु ने ही यह महान् काम अपनी शक्तिशालिनी लेखनी द्वारा सम्पन्न किया और हिन्दी साहित्य मे उन समस्त भावनाओ को पिरोया जो वायुमण्डल मे स्फुलिंग की भाँति भटक रही थीं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उचित ही लिखा है, 'साहित्य के एक नवीन युग के आदि में प्रवर्तक के

रूप में खड़े होकर उन्होंने यह भी प्रदर्शित किया कि नये या बाहरी भावों को पचाकर इस ढग से मिलाना चाहिए कि वे अपने ही साहित्य के विकसित अग से लगे, प्राचीन और नवीन के उस सधिकाल में जैसी शीतल और मृदुल कला का मधुर सचार अपेक्षित था वैसी ही शीतल और मृदुल कला के साथ भारतेन्दु का उदय हुआ, इसमें सन्देह नही।'[1]

इस युग के अन्त मे पारसी नाटक कम्पनियो के लिए कुछ उर्दू ढग के मनोरजक नाटक लिखे गए परन्तु सरकस के खेल की भाँति चमत्कारो से भरपूर सजावट ही से उन्हे रगमच पर प्रस्तुत किया जाता था। नाटको म साहित्यिकता का अभाव था और ये उच्च कोटि के नाटक नहीं थे। इस युग के नाटको म चरित्र चित्रण का भी विकास नही हो पाया और सस्कृत शैली का प्रभाव कही-कही स्पष्ट परिलक्षित होता है।

अत यह स्पष्ट देखा जा सकता है कि भारतेन्दु युग में जहाँ नाटक की रचना का शुभारम्भ सच्चे अर्थ मे हुआ, वही जनता के मनोरजनार्थ रगमचीय सज्जा और चमत्कार से भरपूर नाटको का कुतूहलवर्द्धक बनाने के लिए भी कम प्रयत्न नही हुए। इस युग में हास्य रस की विशेष रूप से सृष्टि हुई और धीरे धीरे हास्यपूर्ण कथानक का भी प्रयोग होने लगा। समय के साथ ही साथ नाटको में हास्यात्मक दृश्यो का विधान नाटक का आवश्यक अग समझा जाने लगा। यहाँ तक कि कुछ नाटककार अन्य नाटककारो से हास्यपूर्ण कथानक लिखाकर अपने नाटको म जोड़ देते थे उदाहरणार्थ 'महात्मा विदुर' नाटक म नन्दकिशोर लाल वर्मा ने शिवनारायण सिंह रचित 'कलयुगी साधु' प्रहसन को लगा दिया था। इस समय तक नाटककारो को हास्य के विधान की महत्ता एव आवश्यकता मालूम हो चुकी थी इसलिए नाटककार विशेष रूप से हास्य रस पूर्ण रचनाओ की ओर ध्यान देने लगे। जमुनादास मेहरा अपने नाटक 'पाप परिणाम' के वक्तव्य मे इस प्रकार लिखते है—

प्रस्तुत पुस्तक मे हमने उद्योग किया है कि दोनो ही कार्य रहे अर्थात् विषय सामाजिक, वर्तमान समय के उपयुक्त और उपदेशप्रद तथा चित्ताकर्षक हो। जो सदा से पारसी कम्पनियो के भक्त रहते आये है वे भी यदि खेलें तो उनका भी मनोरजन हो। इसलिए इसम स्थान-स्थान पर पारसी कम्पनियो के ढग की शायरी तथा हास्य कौतुक आदि भी दे दिया गया है।'[2]

गम्भीर सन्दर्भो के बाद हास्ययुक्त दृश्य केवल भाव विश्राम एव मनोरजन के हेतु जोड़ दिये जाते थ। इन हास्ययुक्त कथानको म व्यग्य की प्रधानता होती थी और

---

१ साहित्यशास्त्र के सिद्धान्त—मरेजिनी मिश्रा—पृ० २१२
२ पाप परिणाम—जमुनादास मेहरा—पृ० ३

उन व्यग्यो के लक्ष्य फैशन के पुजारी नवयुवक एव युवतियाँ, साधु, ब्राह्मण, वकील आदि थे। कभी-कभी वैद्य और डाक्टर भी व्यग्य-बाण के लक्ष्य बन जाते थे। भारतेन्दु युग के नाटककार अत्यन्त हास्य-प्रिय एव सजीव थे। उनकी इस मनोवृत्ति की छाप उनके साहित्य पर पडी। इस युग में व्यग्यात्मक हास्य की अधिक रचना हुई।

द्विवेदी युग :—भारतेन्दु युग के पश्चात् नाटका की परम्परा कुछ क्षीण हो चली थी, इसके कई एक कारण हा सकते है। *प्रथम* कारण यह है कि साहित्यिक रगमच के अभाव में साहित्यकारो द्वारा नाटक रचना के लिए कोई प्रोत्साहन नही था। *द्वितीय*, व्रजभाषा ओर खडी वोली के साहित्यिक महत्व में सघर्ष के लक्षण प्रकट होने लगे थे, जिसमें साहित्यकारो की दृष्टि उलझ गयी थी। *तृतीय*, 'सरस्वती' मासिक पत्रिका के माध्यम से गद्य की अन्य विधायें परिष्कृत और सम्वर्द्धित होने लगी थी। *चतुर्थ*, नाट्य शिल्प को अधिक जटिल समझ कर अपेक्षाकृत सरल विधान में साहित्य रचना स्पृहणीय बन गयी थी। इस प्रकार द्विवेदी युग में नाट्य रचना की ओर साहित्य-कार अधिक अग्रसर नही हुए। वस्तुत इस युग में भाषा तथा गद्य शैली का विकास ही अधिक हुआ है। कुछ हास्य एव व्यग्यपूर्ण नाटको की रचना अवश्य हुई।

इस युग में सामाजिक जीवन के विभिन्न अगो एवं समस्याओ के आधार पर लिखे जाने वाले नाटकों का अभाव है और मौलिक नाटको मे पौराणिक तथा ऐतिहासिक नाटकों की रचना हुई। *प्रथम श्रेणी* मे ऐतिहासिक कथावस्तु पर आधारित जिन नाटको की रचना हुई उनमें जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी का 'तुलसीदास' वियोगी हरि का 'प्रबुद्ध यामुन' मिश्रबन्धु का 'शिवाजी' आदि प्रसिद्ध नाटक हैं।

द्वितीय श्रेणी में सामाजिक विषयो को लेकर कुछ व्यग्यमूलक प्रहसना की रचना हुई, जिनम नवीन परिस्थितिया और जीवन की असगतियो पर व्यग्य प्रस्तुत किए गए। बद्रीनाथ भट्ट ने 'विवाह विज्ञापन' नामक प्रहसन मे पाश्चात्य ढग की कृत्रिमता एव साज सज्जा पर व्यग्य के बाण छोडे है। पडित देवप्रसाद मिश्र ने 'लल्ला बाबू' में समाज की असगतियो का मार्मिक चित्र उपस्थित किया है। जी० पी० श्रीवास्तव द्वारा रचित प्रहसन भी प्राप्त होते हैं। इन्होने प्रहसनो के अन्तर्गत सामान्य कोटि के हास्य का प्रयोग किया है। इसी कारण वे उच्चकोटि की नाट्यकला के अन्तर्गत नही रखे जा सकते।

तीसरी श्रेणी उन नाटको की थी जो कि अधिकतर पौराणिक कथावस्तु पर आधारित है। राधेश्याम कथावाचक ने 'वीर अभिमन्यु' नाटक की रचना की। इन नाटको मे कला एव साहित्यिकता का अभाव था, भले ही वे नाटकीय दृष्टिकोण से रगमच पर अवतरित किए जा सकते थे। *चौथी श्रेणी* के अन्तर्गत पारसी थियेट्रिकल कम्पनिया के लिए नाटक लिखे गए। नारायण प्रसाद 'बेताब', आगाहश्र 'काश्मीरी', हरिकृष्ण',

'जौहर', तुलसीदत्त 'शैदा' आदि प्रमुख नाटककार थे। यद्यपि इन नाटककारों ने पारसी रंगमंच के कलात्मक स्तर को ऊँचा अवश्य किया तथापि नाट्य साहित्य को कोई विशेष साहित्यिकता प्रदान नहीं की। *पाँचवीं श्रेणी* में प्राचीन कथानकों को लेकर कुछ मौलिक नाटकों की रचना हुई। जैसे अयोध्यासिंह उपाध्याय जी का 'रुक्मिणी परिणय', 'प्रद्युम्न विजय' प० ज्वाला प्रसाद का 'सीता वनवास', बल्देवप्रसाद मिश्र द्वारा रचित 'प्रयास मिलन', 'मीराबाई', प० शिवनन्दन सहाय का 'सुदामा' आदि। रायदेवी प्रसाद ने काल्पनिक कथा पर आधारित चन्द्रकला भानुकुमार आदि नाटकों की रचना की।

छठी *श्रेणी*, ऐसे नाटकों की थी, जो कि अन्य भारतीय भाषाओं के अनुवाद थे। इसमें सस्कृत, बगला तथा अंग्रेजी के नाटकों के अनुवाद अधिक हुए। गोपीनाथ पुरोहित ने शेक्सपियर के नाटकों का अनुवाद किया, जैसे 'रोमियो जुलियट' का 'प्रेमलीला' नाम से, 'एज यू लाइक इट' का 'मनभावन' के नाम से और 'मर्चेन्ट आफ वेनिस' का 'वेनिस नगर का व्यापारी' के नाम से प्रस्तुत किया। प्रेमघन जी के छोटे भाई पंडित मथुरा प्रसाद चौधरी ने 'मैकबेथ' का 'साहसेन्द्र साहस' के नाम से अनुवाद किया। तत्पश्चात् हैमलेट का भी एक अनुवाद 'जयंत' के नाम से प्रकाशित किया जो मराठी भाषा के अनुवाद का अनुवाद है! सस्कृत से सीताराम जी ने मृच्छकटिक, महावीरचरित, उत्तर-रामचरित, मालतीमाधव, मालविकाग्निमित्र आदि कई नाटकों का अनुवाद किया। पं० रूपनारायण पाण्डे ने बगला के उत्कृष्ट नाटकों का अनुवाद प्रस्तुत किया। पं० सत्यनारायण 'कविरत्न' ने भवभूति के 'उत्तररामचरिते' और 'मालती माधव' नाटक का बड़ा ही सरस एवं साहित्यिक भाषा में अनुवाद किया। पंडित ज्वाला प्रसाद मिश्र ने 'वेणी संहार' और 'अभिज्ञान शाकुन्तल' का तथा बालमुकुन्द गुप्त ने 'रत्नावली' नाटिका का अनुवाद प्रस्तुत किया।

वस्तुतः पूर्ववर्ती नाटकों की परम्परा ही इस युग में चलती रही और विविध प्रवृत्तियों का विकास हुआ। प्राय. धीरे-धीरे नाटकों मे पद्य की भाषा खड़ी बोली होने लगी। बगला साहित्य एवं पाश्चात् साहित्य के प्रभाव के कारण पद्य की प्रधानता हटने लगी तथा भाषा मे भी निखार हुआ। तत्सम शब्दों का भी प्रयोग होने लगा। द्विवेदी युग मे अनुवादों की वह बाढ़ आई कि मौलिक नाटकों की ओर किसी का विशेष ध्यान आकर्षित नहीं हुआ। थोड़े बहुत जिन मौलिक नाटकों की रचना हुई, उनमे नाटककार कोई नवीन भाव उत्पन्न नहीं कर पाए भाषा अधिक मजी अवश्य होने लगी। इस समय तक हास्य मे भी परिष्कार हुआ। नाटककार शिष्ट तथा सुसंयत हास्य का प्रयोग करने लगे थे। जनता की रुचि एव भावो मे भी परिवर्तन हो गया। चलचित्रों तथा अँग्रेजी नाटकों का प्रभाव हिन्दी नाटकों के हास्य पर पड़े बिना न रहा। यद्यपि व्यंग्यात्मक हास्य की प्रधानता रही फिर भी व्यग्य के लक्ष्यों में परिवर्तन हो गया। इस समय व्यंग्यात्मक

हास्य के लक्ष्य थे—फैशन-परस्त नवयुवक, नवयुवतियाँ तथा धनोपार्जन के लिए घृणित उपाय करने वाले वैद्य और डाक्टर। इसके साथ ही बेकारी, खुशामद और उपाधि के मोह में ग्रस्त व्यक्तियों के प्रति भी व्यग्य और हास्य की रचनाएँ हुई। उसी समय नाटककारो का ध्यान शुद्ध हास्य एवं वाग्वैदग्ध की ओर आकृष्ट हुआ। द्विवेदी युग के हास्य की प्रमुख विशेषता है उसकी मौलिकता एव शिष्टता।

प्रसाद युग—प्रसाद युग हिन्दी नाटकों के इतिहास में स्वर्णयुग है क्योंकि इस युग मे हिन्दी नाट्य साहित्य का पूर्ण विकास हुआ। जयशंकर प्रसाद मौलिक व्यक्तित्व लेकर अवतरित हुए। हिन्दी नाट्य साहित्य की जो परम्परा थी उसका मन्थन कर, उसे निखार कर संवारा। प्रसाद जी तथा इनके समकालीन नाटककारो ने, बंगला, संस्कृत और अंग्रेजी प्रभावों से मुक्त कर हिन्दी नाट्यसाहित्य को एक स्वतन्त्र रूप प्रदान किया। मंगलाचरण, नान्दीपाठ, भरत वाक्य, प्रस्तावना को त्याग कर घटनाओं के अन्तर्द्वन्द्व के प्रयोग को महत्त्व दिया और 'वर्जित' दृश्यो को रगमंच पर प्रस्तुत करने की परम्परा का सूत्रपात किया। नाटकों में विदूषक के प्रयोग में भी बहुत अन्तर आया। प्रसाद के नाटको में विदूषक को नाटक के अन्य पात्रों की भाँति स्थान मिला। संस्कृत नाटकों का मुख्य उद्देश्य रस-निष्पत्ति ही होता था। कथा और पात्रों के चरित्र में द्वंद्वात्मक विकास की मात्रा कम होती थी। परन्तु जब नाटको मे पात्रों के चरित्र का विकास घटनाओ के वाह्य एवं आन्तरिक अन्तर्द्वन्द्व के आधार पर होने लगा।

प्रसाद जी ने प्राचीन रूढ़ियों को त्याग कर अपनी मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया। सर्वप्रथम उन्होने अपने नाटकों के पात्रों को स्वतंत्र व्यक्तित्व प्रदान किया और विशेषरूप से चरित्र-चित्रण की ओर ध्यान देकर रस की धारा को प्रवाहित किया। प्रसाद के नाटकीय पात्रों में परिस्थितिया के बीच जो अन्तर्द्वन्द्व की अवतारणा हुई है वह आधुनिक मनोविज्ञान के अनुसार ही है। पात्रों के मन की भावनाओ को स्पष्ट रूप से दर्शाने का प्रयत्न किया गया है। निष्कर्ष रूप से हम यह कह सकते हैं कि नवीन कल्पना एवं ऐतिहासिक अनुशीलन के प्रयोग ने नाट्य कला मे नवीन उद्भावनाओ को जन्म दिया। प्रसाद जी ने विविध प्रकार से नारी चरित्र की कल्पना करके उसकी प्रतिष्ठा का परिचय दिया। किसी न किसी रूप मे प्रसाद के सभी नाटकों मे नारी पात्रों की अवतारणा हुई जो दुख रूपी अन्धकार के बीच मे प्रसन्नता की ज्योति की भाँति उद्दीप्त है, जो क्रूरता, दनुजता, पाशविकता के बीच क्षमा, सहनशीलता, करुणा तथा प्रेम के दिव्य सन्देश की प्रतिष्ठा करती है और अपने प्रभाव के द्वारा ही दुराचारी को सदाचारी तथा दुर्जनो को सज्जन और नृशस अत्याचारियों को उदार, साहसी एवं लोकसेवी बना देती हैं। प्रसाद जी की इन दिव्य नायिकाओ पर 'नारी तुम केवल श्रद्धा हो' की उक्ति लागू होती है।

प्रसाद जी ने नारी के विषय में कहा ही है—

'नारी तुम केवल श्रद्धा हो
विश्वास रजत नग पग तल में
पीयूष स्रोत सी बहा करो।
जीवन के सुन्दर समतल में'[1]

प्रसाद जी ने विविध विषयात्मक नाटकों की रचना की। इन्होंने पाश्चात्य नाट्यशैली को भी अपने नाटकों में अपनाया। संक्षिप्त रूप से प्रसाद जी के नाटक निम्न-लिखित वर्गों मे रखे जा सकते है। पहला ऐतिहासिक नाटकों में स्कन्दगुप्त (१६२८) चन्द्रगुप्त (१६३१) आदि हैं। इन नाटकों के अन्तर्गत प्राचीन भारतीय संस्कृति के सजीव तथा मार्मिक चित्र है। इन्होंने नाटकीय कला द्वारा ही भारतीय संस्कृति की खोज की और ऐतिहासिक तत्त्वों के विश्लेषण में मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया। प्रसाद जी ने अनेक संस्कृतियों का संघर्ष नाटकों में प्रस्तुत कर मूल भारतीय सांस्कृतिक धारा के अस्तित्व को बनाए रखा तथा नवीन राष्ट्रीय भावना का महत्त्व दिया। इस दृष्टिकोण को अपने समक्ष रख आशावादिता को नहीं त्यागा।

दूसरा, प्रसाद जी ने पौराणिक वातावरण को नवीन प्रेरणाओं से आलोकित कर "जन्मेजय का नागयज्ञ" (१६२६) नाटक की रचना की। *तीसरा*, 'ध्रुव स्वामिनी' (१६३३) नाटक लिखकर पाश्चात्य समस्या नाटक शैली का निरूपण किया। *चौथा*, "कामना" (१६२३-२४) नामक नाटक इन्होंने अंग्रेजी के एलीगेरी नाटक के ढंग का लिखा। 'कामना' में मनोविकारों तथा भावनाओं का मानवीकरण है। इस नाटक में प्रतीकात्मक शैली की प्रधानता है। *पाँचवाँ*, 'करुणालय' (१६१३) नाटक का सृजन किया जो कि गीतिप्रधान नाटक है। *छठा*, 'एक घूंट' (१६२६) नाटक लिखकर एकांकी शैली का सूत्रपात किया। इस भांति यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि प्रसाद जी ने नाट्य-साहित्य के क्षेत्र में विभिन्न शैलियों का प्रयोग किया, जिनका परवर्ती नाटककार अनुकरण करते रहे।

नाट्यशिल्प की दृष्टि से प्रसाद के नाटकों में पश्चिमी एवं पूर्वी तत्त्वों का समावेश हुआ है। नाटकों में कथावस्तु, नायक, रस, प्रतिनायक, विदूषक, शील तथा सत्य और न्याय के विषय मे नाट्यसाहित्य की परम्पराओं का पूर्ण रूप से पालन हुआ है। भारतीय नाटकों की रसात्मकता इनमें भरपूर मिलती है। इनके नाटकों मे राष्ट्रीयता की भावना, यथार्थ चित्रण, और व्यावहारिक जीवन हृदयंगम होता है। राष्ट्रीय गीतों का प्रयोग भी नाटकों मे सुन्दर ढंग से हुआ है। प्रसाद की यह भी एक अनुपम देन है।

१—श्री जयशंकर प्रसाद—'कामायनी' पृ० १०६ : लज्जा सर्ग :

वास्तव में हिन्दी-नाट्य-साहित्य को प्रसाद जी ने प्रौढ़ता प्रदान की है। अपनी प्रतिभा-पीयूष द्वारा साहित्योद्यान को सींच कर पल्लवित एवं पुष्पित किया। पं० जगदीश नारायण दीक्षित का प्रसाद के नाटको के विषय मे यह कथन सर्वथा समीचीन तथा सम्मान्य है—'प्रसाद के नाटक हिन्दी साहित्य के अनुपम रत्न है। उनमें कथानकों की विशेषता, मनोहर दृश्य विधान, संस्कृति और आदर्शों का सम्यक् निर्देशन, भावपूर्ण कथोपकथन तथा सरस संगीत आदि के अतिरिक्त सबसे बड़ी आकर्षण एव प्रभाव की वस्तु सजीव चरित्र-चित्रण है[1]।' दुखान्त भावना भी प्रसाद के नाट्यसाहित्य में एक नवीन देन थी। विषय की नूतनता की दृष्टि से भी प्रसाद अग्रदूत थे।

अभिनेयता तथा रंगमच की दृष्टि से इनके नाटक सफल नही है क्योंकि लवे-लवे स्वगत कथन और गीतों का प्रयोग है। दर्शनशास्त्र की जटिल एवं सूक्ष्म उक्तियो का सम्मिश्रण है जो नाटको की अभिनेयता मे बाधक सिद्ध होती है। प्रसाद जी ने अपने नाटकों मे हास्य तथा व्यंग्य का प्रयोग बडी सफलता से किया है। इनका हास्य शिष्ट तथा सभ्य है। उपहास का प्रयोग कम मात्रा में हुआ है। हास एव उपहास की तुलना में वाग्वैदग्ध अधिक है। इनके नाटको में शुद्ध हास्य का विधान एक ही स्थान पर देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए उनके 'एक घूंट' एकाकी मे विदूषक चन्दूला का वार्तालाप हास्योत्पादक है। हास्य का सृजन जो कुछ भी हुआ है वह विदूषक के द्वारा ही हुआ है। इनके हास्य का विधान सस्कृत परिपाटी पर ही अवलम्बित है। प्रसाद युग के समकालीन नाटका मे, पडित गोविन्द वल्लभ पत का 'वरमाला' 'राजमुकुट', माखन लाल चतुर्वेदी का 'कृष्ण अर्जुन युद्ध', बेचनशर्मा 'उग्र' का 'महात्मा' 'ईसा', मुशी प्रेमचन्द का 'कर्बला', 'संग्राम' आदि प्रमुख नाटक है।

प्रसादोत्तर युग—प्रसादोत्तर युग मे नाट्य साहित्य की वृद्धि हुई। विषय की दृष्टि से इसे अनेक वर्गों में विभाजित कर सकते है। सर्वप्रथम उन नाटककारो के नाम उल्लेखनीय हैं जिन्होंने प्रसाद के ऐतिहासिक नाटको की परम्परा को आगे बढ़ाया और उनके अस्तित्व को बनाए रखा, इनमे आचार्य चतुरसेन शास्त्री, हरिकृष्ण प्रेमी, वृन्दावन लाल वर्मा, जगदीश चन्द्र माथुर आदि का नाम प्रसिद्ध है। 'प्रेमी' जी ने 'रक्षाबन्धन' (१६३४) 'शिवासाधना' (१६३७) 'प्रतिशोध' (१६३७) आदि अनेक ऐतिहासिक नाटको की रचना की। उग्र जी का 'महात्मा ईसा' और सेठ गोविन्द दास जी का 'हर्ष' भी विशेष रूप से प्रसिद्ध है। इन लेखकों ने नाट्य साहित्य मे नवीन शैली तथा भावो का प्रयोग किया।

माखनलाल चतुर्वेदी, उदय शंकर भट्ट, सुदर्शन आदि लेखकों ने भी पौराणिक

---

१. साहित्य शास्त्र के सिद्धान्त—सरोजिनी मिश्रा, पृ० २१५

नाट्य क्षेत्र मे नवीनता प्रदर्शित की है। उदयशकर भट्ट ने पौराणिक प्रसगो पर आधारित सुन्दर गीति नाटको (विश्वामित्र, मत्स्यगन्धा, राधा) की रचना कर अपनी प्रतिभा प्रदर्शित की। भावात्मक नाटककारो में सुमित्रा नन्दन पत का विशेष रूप से महत्त्व है। इन्होने कुछ गीतिनाटको की भी रचना की है।

एक आर जहाँ प्रसाद जी ने बौद्धयुगीन भारत का चित्रण करते हुए प्रेम, अहिंसा, सत्य व त्याग का सन्देश दिया था वहाँ दूसरी और प्रेमी जी ने मुस्लिमयुगीन भारत का मार्मिक तथा सजीव ढग से प्रस्तुत करते हुये हिन्दू मुस्लिम ऐक्य भावना को महत्त्व दिया। नाट्य शिल्प की दृष्टि से इनके नाटक सफल कोटि के है। नाटको के कथानक सक्षिप्त तथा सुसगठित है, भाषा शैली, सरल, सुबोध एव स्वाभाविक है, सम्भाषण पात्रानुकूल है। पात्रा में चरित्र-चित्रण का विकास भी सुन्दर ढग से हुआ है। रगमच की दृष्टि से जो त्रुटियाँ हमें प्रसाद के नाटको मे मिलती है उन सब त्रुटियो से प्रेमी जी बचकर चले है। इनके नाटका मे प्रयोग अधिक मिलते है।

इसी भाँति श्री वृन्दावन लाल वर्मा ने 'राखी की लाज' (१९४३) 'बीरबल' (१९५०), जहादार (१९५०) 'हसमपूर' (१९४९) 'काश्मोर का काटा' (१९४८) 'झाँसी की रानी' (१९४८) आदि ऐतिहासिक नाटक लिखे जो सामाजिकता, ऐतिहासिकता, अभिनेयता तीनो दृष्टिकाणो से मफल काटि के माने जाते है। जगदीशचन्द्र माथुर का 'कोणार्क', सुदर्शन लाल त्रिवेदी का 'अमर सिंह राठौर' चतुरसेन शास्त्री का 'उत्सर्ग' नाटक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक नाटक हैं।

पाश्चात्य नाटककारो, इब्सन एव बर्नड शा आदि के प्रभाव से हिन्दी में समस्यामूलक नाटका की रचना हुई। प० लक्ष्मी नारायण मिश्र ने समस्यामूलक नाटको मे जैसे-'राजयोग','सिन्दूर की होली' 'मुक्ति का रहस्य' आदि नवीन विशेषताओ का समन्वय प्रस्तुत किया है। कही-कही समस्यामूलक नाटको के अन्तर्गत युग की नवीन समस्याओ का प्राचीन परम्पराआ एव रूढिया के साथ सघर्ष प्रदर्शित करते हुए उन्हें इस प्रकार चित्रित किया गया है कि पाठक यह निर्णय नही कर पाता कि कोन-सा पक्ष उचित है। इस सघर्ष के माध्यम से ही प्राचीन परम्पराओ तथा रूढियो ने विपक्षी भावनाओ को उभारकर प्रदर्शित किया है। मिश्र जी ने अपने नाटको मे यथार्थवादी शैली का प्रयोग किया है जिसमे उनके नाटको मे सवाद छोटे बन पडे और अधिकाश दृश्यो एव अको का निवारण हुआ। मिश्र जी ने हाजिर जवाबो, व्यग्य, विनोद का नाटको मे प्रयोग कर बुद्धिवाद के प्रखर रूप का स्पष्ट किया। इन्होने ऐतिहासिक नाटक 'गरुडध्वज' की रचना की, किन्तु यह नाटक विशेष महत्त्वपूर्ण नही है। पाश्चात्य नाट्यशिल्प को अपना कर भी मिश्र जी भारतीय एव आदर्शवादी है।

भारतेन्दु युग में नाट्य-विकास के साथ पाश्चात्य साहित्य के अनुकरण पर एकाकी

नाट्यकला का भी विकास हुआ। वैसे तो एकाकी कला का अस्पष्ट सूत्रपात भारतेन्दु के लघु-नाटको जैसे, 'अन्धेर नगरी' 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति', 'भारत दुर्दशा' आदि से ही होता है और प्रसादकृत 'एक घूँट' विकास का द्वितीय चरण प्रदान करता है। इसको हम हिन्दी एकाकी कला के विकास की पूर्वपीठिका अवश्य कह सकते है। प्रथम कोटि के नाटककारो में पं० गोविन्द वल्लभ पंत, सुदर्शन, चन्द्रगुप्त विद्यालकार, सूर्यकरण पारीख, जैनेन्द्रकुमार आदि है। किन्तु नाट्यशैली एवं कला की शिथिलता होने के कारण इनका विशेष महत्व नही है। पाश्चात्य शैली के आधार पर भुवनेश्वर ने 'कारवा' नामक नाटक लिखा। डा० रामकुमार वर्मा ने भी अनेक नाटको का सृजन किया, जो इलाहाबाद-विश्वविद्यालय के रंगमंच पर अभिनीत हुए। इन्होंने सामाजिक एव ऐतिहासिक कथावस्तु को ही एकाकियों में अपनाया है। आलोचक डा० रामकुमार वर्मा को ही एकाकी नाटको का जन्मदाता मानते है। इन्होने पाश्चात्य तथा भारतीय कला पर आधारित एकाकियो की रचना की। उपेन्द्रनाथ 'अश्क' ने भी जीवन की समस्याओं का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करते हुए अपने नाटको का सृजन किया। अन्य एकाकीकारो मे लक्ष्मीनारायण मिश्र, जगदीश चन्द्र माथुर, उदयशकर भट्ट, विष्णु प्रभाकर, चिरजीत, सत्येन्द्र, शरत, देवराज दिनेश, सदगुण शरण अवस्थी आदि के नाम उल्लेखनीय है।

वर्तमान युग मे समय की बचत तथा चित्रपट के विकास के कारण एकाकी नाटको का विशेष रूप से महत्व हो गया है। शैली का भी एकाकी नाटको मे खूब परिष्कार हो रहा है।

यह निर्विवाद सत्य है कि नाटक की प्रभावोत्पादकता अभिनय द्वारा रगमच पर ही स्पष्ट की जा सकती है। इसलिए नाटक की समस्त विधा रगमच के अनुरूप होनी आवश्यक है। नाटक के साथ रगमंच का तत्व निहित होने के कारण नाटक को 'सयुक्त कला' का नाम दिया गया है। दूसरे शब्दो मे साहित्य-कला का सयोग मच-कला से होने पर नाटक की सार्थकता समझी जाती है। इस भाँति नाटक का सम्बन्ध रंगमंच से होने पर उसमें मनोरजन की आवश्यकता अनुभव की जाती है। यह मनोरजन ही हास्य के विविध रूप ग्रहण करता है। किन-किन परिस्थितियों में हास्य रगमच पर अवतरित होता है इसकी समीक्षा के लिए नाटक के विविध अंगो की समीक्षा आवश्यक है। कथावस्तु के माध्यम से, पात्रो के चरित्र द्वारा, संवाद के उक्ति वैचित्र्य के सहारे तथा रंगमंच के विशिष्ट संयोजन के द्वारा हास्य नाटक मे अपना स्थान निर्धारित करता है। अतः हास्य का सागोपाग वर्णन करने के पूर्व यह आवश्यक है कि नाटक की भारतीय एव पाश्चात्य रूपरेखा संक्षेप में स्पष्ट कर दी जाय तथा दोनों का एक तुलनात्मक दृष्टिकोण उपस्थित किया जाय। इसी दृष्टि से प्रस्तुत अध्याय मे नाटक की सक्षिप्त रूपरेखा उपस्थित की जा रही है।

नाटक की शिल्पविधि :—

नाटकों का प्रमुख उद्देश्य भारत में रस निष्पत्ति अर्थात् आनन्द माना गया है। भारतीय संस्कृति आध्यात्मिक रही है। यही कारण है कि दुखान्तकी नाटक भारतीय संस्कृति से अमान्य हुए है। हमारे यहाँ नाटक धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष के विधायक माने गए है। वस्तुतः भारतीय नाटको की कथावस्तु का विकास भारतीय संस्कृति के अनुसार हुआ है। पाश्चात्य नाटको की कथावस्तु अधिकतर घटना-प्रधान होती है इसलिए कथावस्तु का विकास अलग ढग पर हुआ है। पाश्चात्य नाट्यकला घटनाओ के यथार्थ पर ही आधारित है तथा भारतीय नाट्यकला आदर्श एवं उस प्राप्ति पर आधारित है।

भारतीय नाट्य-विद्वानो द्वारा नाटक के चार तत्व माने गए है, जैसे—१ : वस्तु २ : पात्र ३ रस तथा ४ : अभिनय। बहुत से विद्वान् वृत्ति को भी नाटक का पाँचवाँ तत्व मानते हैं। पाश्चात्य नाट्यशास्त्र के अनुसार नाटक के छः तत्व है—१ : कथावस्तु २ : पात्र ३ : कथोपकथन ४ : देशकाल ५ : उद्देश्य और ६ : शैली।

कथावस्तु :—

जिस कथानक को लेकर नाटक की रचना की जाती है उसे कथावस्तु कहते है। इसको अंग्रेजी में 'प्लाट' कहते है। यह दो प्रकार की होती है—१—अधिकारिक अथवा मुख्य कथावस्तु। २—प्रासगिक या गौण कथावस्तु।

अधिकारिक या मुख्य कथावस्तु के अन्तर्गत प्रधान पात्रो से सम्बन्धित कथा का मुख्य विषय रहता है अर्थात् कथा का मुख्य उद्देश्य इसी में निहित होता है। अधिकारिक का सम्बन्ध आरम्भ से लेकर फल-प्राप्ति तक रहता है।

प्रासगिक कथावस्तु का सम्बन्ध सीधा नायक एवं नायिका से न होकर नाटक के अन्य पात्रो से होता है। इस वस्तु के तीन मुख्य लक्षण है—

१—अधिकारिक वस्तु मे सुन्दरता को बढाना।

२—मूल कार्य के विकास मे सहयोग देना।

३—नाटक की फल प्राप्ति में सहायक सिद्ध होना।

श्री राधाकृष्ण दास कृत नाटक 'महाराणा प्रताप' मे गुलाब सिंह और मालती की कथा प्रासगिक वस्तु है। प्रमुख उद्देश्य गुलाब सिंह का मालती को प्राप्त करना होता है और उसे पूर्ण रूप से सफलता प्राप्त होती है। प्रासगिक वस्तु के हमें दो भेद प्राप्त होते हैं, १ : पताका २ : प्रकरी।

पताका—प्रासगिक कथा का प्रसग अधिकाधिक कथा के अन्त तक चलता है तो

उसे पताका कहते है ।

प्रकरी—जब प्रासगिक कथावस्तु, कुछ बढ कर बीच मे रुक जाती है या समाप्त हो जाती है उसे प्रकरी कहते है । जैसे कालिदासकृत 'शकुन्तला' नाटक के छठे अंक मे दास और दासी का वार्तालाप है ।

भारतीय नाटको मे कथावस्तु के आधार पर इसके तीन भेद किए गए है। १—प्रख्यात् २—उत्पाद्य तथा ३—मिश्र ।

१—प्रख्यात् :—जिस कथा का आधार पुराण, इतिहास या परम्परागत वृत्त होता है, उसे प्रख्यात् कहते है ।

२—उत्पाद्य :—जिस कवि तथा नाटककार की कथा कल्पना से नियोजित होती है उसे उत्पाद्य कहते है। आजकल सामाजिक नाटक प्राय इसी प्रकार के होते है ।

३—मिश्र :—जिस कथा मे इतिहास एव कल्पना का मिश्रण होता है उसे मिश्र कहते है । प्रासगिक बातो में थोडा बहुत हेर-फेर अवश्य किया जाता है ।

इसमें कल्पना के लिए कवि को अधिक अवसर प्राप्त होता है परन्तु वह निर्दिष्ट सीमा का अतिक्रमण नहीं करता । वह इतिहास से सम्बन्धित बातो मे कभी परिवर्तन नही कर सकता । नाटककार कथा मे रसिकता एव रोचकता उत्पन्न करने के लिए प्रासगिक बातो में परिवर्तन कर सकता है । नाटककार अपने भावो को उचित रूप से व्यक्त करने के लिए अपने नायक को दोषो से मुक्त करने के लिए कल्पना का सहारा ले सकते हैं—जैसे दुष्यन्त ने महाभारत मे शकुन्तला का त्याग लोकापवाद के भय से किया था किन्तु कालिदास ने अपने नायक को दोषो से मुक्त करने के हेतु दुर्वासा के शाप एव अँगूठी के खो जाने की कल्पना की थी ।

अवस्थाएँ :—

भारतीय नाटको मे कोई विशिष्ट उद्देश्य रहता है । धर्म, अर्थ, काम एव मोक्ष मे से एक फल की प्राप्ति अवश्य होती है । भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणो से कथावस्तु के भाग एव अग बतलाए गए है । नाटक मे फल-प्राप्ति की इच्छा से किए हुए कार्य-व्यापार के दृष्टिकोण से पाँच अवस्थायें मानी गयी है—

अवस्था पञ्चकार्यस्य प्रारब्धस्य फलार्थिभि
आरम्भयत्न प्राप्त्याशा नियताप्ति फलागम ।।[1]

१—प्रारम्भ—प्रारम्भ नामक अवस्था मे फल प्राप्ति की इच्छा ही प्रमुख रहती

१—दशरूपक—धनजय—१।१०, पृ० ११२

है। यह कथानक का आरम्भ है—जैसे नायक को नायिका के देखने की इच्छा होती है।

२—*प्रयत्न*—फल प्राप्ति के लिए जो इच्छा होती है उसके लिए प्रयत्न किया जाता है। जैसे नायक अपने मित्र से नायिका के विषय म परामर्श करता है।

३—*प्राप्त्याशा*—जिसमें विघ्नो का निवारण कर फल प्राप्ति की सम्भावना प्रदर्शित होती है, उसे प्राप्त्याशा कहते है।

४—*नियताप्ति*—जिसमे विघ्नो का नाश हो जाता है और फल-प्राप्ति निश्चित हो जाती है, उसे नियताप्ति कहते है।

५—*फलागम*—फलागम नाम की अवस्थाये फल-प्राप्ति हो जाती है। जैसे नायक तथा नायिका का मिलन आदि।

पाश्चात्य विद्वानो ने कार्य तथा व्यापार के दृष्टिकोण से पाँच भाग किए है। प्राय यह देखा जाता है कि नाटका मे दो विरोधी भाव प्रदर्शित किए जाते है। जैसे किसी महान् पुरुष का दुरात्मा से विरोध। वे पाँच भाग इस प्रकार मे है —

१—*आरम्भ*—उसके अन्तर्गत विरोध उत्पन्न करने वाली घटनाएँ होती हैं। नायक और प्रतिनायक मे विभिन्न सिद्धान्तो एव आदर्शों के कारण सघर्ष उत्पन्न होता है।

२—*विकास*—इसमें सघर्ष का विकास एक निश्चित मात्रा तक बढ जाता है।

३—*चरम सीमा*—जब सघर्ष अपनी निश्चित स्थिति तक पहुँच जाता है और किसी एक पक्ष की विजय होने लगती है उसे चरम सीमा कहते है।

४—*उतार या निगति*—जब विजय-दल की विजय निश्चित हो जाती है, उस उतार या निगति कहते है।

५—*अन्त या समाप्ति*—जहाँ सघर्ष का अन्त हो जाए, वहाँ फल की प्राप्ति होती है।

हमारे यहाँ नाटको मे सघर्ष को विशेष महत्ता प्रदान नही की है किन्तु पाश्चात्य नाटको में सघर्ष की प्रधानता को महत्त्व दिया गया है। एक अवस्था और भी मानी गई है, वह है —

६—*कैटेस्ट्रोफी*—यह अन्तिम अवस्था है, इसमें कार्य पूर्ण हो जाता है और यह महत्त्वपूर्ण भी है।

अर्थ प्रकृतियॉ :—

अर्थ प्रकृतिया का अभिप्राय कथावस्तु के उन चमत्कारपूर्ण अगो से है जो कथा-वस्तु को फल प्राप्ति की ओर ले जाती है। दशरूपककार ने अर्थ प्रकृतियो को 'प्रयोजन

सिद्धि हेतव:' कहा है। ये भी पाँच है—१—बीज, २—बिन्दु, ३—पताका, ४—प्रकरी तथा ५—कार्य।

१—बीज :—बीज प्रथम अर्थप्रकृति है, जिस प्रकार बीज में फल छिपा रहता है, उसी प्रकार बीज में नाटक के फल की आशा रहती है।

२—बिन्दु :—जो बात निमित्त बन कर समाप्त होने वाली अवान्तर कथा को आगे बढ़ाती है और प्रधान कथा को अविच्छिन्न रखती है वह बिन्दु कहलाती है।

३—पताका :—पताका में छोटी-छोटी कथाएँ होती है जो प्रमुख कथा को आगे बढ़ाती है। जब प्रासगिक कथा बराबर बढती रहती है तो उसे पताका कहते है।

४—प्रकरी :—छोटे-छोटे वृत्त प्रकरी कहलाते है जैसे, रामायण में रावण और जटायु का सवाद।

५—कार्य :—कार्य में अन्तिम फल की प्राप्ति होती है।

कार्य एवं फलागम तो मिल जाते है किन्तु प्राप्त्याशा और नियताप्ति पताका, प्रकरी से मेल नही खाती। इस प्रकार इन पाँचों का वस्तु विन्यास से घनिष्ठ सम्बन्ध है।

सन्धियाँ—सन्धि मेल व जोड को कहते है। इसमें अवस्थाओ और अर्थप्रकृतिया का मेल कराया जाता है। डा० श्यामसुन्दर जी सन्धि की व्याख्या करते हुए लिखते है—'कथात्मक पूर्वोक्त पाँच अवस्थाओं के योग से अर्थप्रकृतियों के रूप में बिखरी कथानक के पाँच अंग हो जाते हैं। एक ही प्रधान प्रयोजन के साधक उन कथानकों का मध्यवर्ती किसी एक प्रयोजन के साथ सम्बन्ध होने को सन्धि कहते है।'[1] इसमे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि अर्थप्रकृति और अवस्थाओं के मेल को सन्धि कहते है। इसके पाँच भेद है—१—मुख, २—प्रतिमुख, ३—गर्भ, ४—विमर्श या अवमर्श तथा ५—निर्वहण।

१—मुखसन्धि—प्रारम्भ नाम को अवस्था के साथ योग होने से जहाँ अनेक रसो और अर्थो के द्योतक बीज की उत्पत्ति होती है वहाँ मुखसन्धि होती है।

२—प्रतिमुख सन्धि—इसमे बीज कुछ लक्षित एव अलक्षित रूप से विकसित होता है। प्रतिमुख सन्धि मे दिए हुए प्रधान फल का किंचित मात्र विकास होता है।

३—गर्भसन्धि—गर्भसन्धि इसको इसलिए कहते है कि इसमे फल छिपा रहता है। इसमें पताका एव प्राप्त्याशा का योग रहता है। यदि इसमे पताका अर्थ प्रकृति न हो तो प्राप्त्याशा अवस्था भी उत्पन्न नहीं हो सकती।

४—विमर्श सन्धि—विमर्श सन्धि तभी होती है जब गर्भ सन्धि की अपेक्षा बीज का विकास होने पर उसके फल प्राप्ति मे कुछ प्रलोभन उत्पन्न होने के कारण विघ्न उपस्थित हो जाता है। इसमें नियताप्ति अवस्था और प्रकरी अर्थ प्रकृति होती है।

---

१ साहित्यशास्त्र के सिद्धान्त—सरोजिनी मिश्रा, पृ० १७१

५—*निर्वहण सन्धि*—इसमें चारों सन्धियों का समाहार हो जाता है। इसमें कार्य और फलागम का योग होकर नाटक पूर्णता को प्राप्त होता है।

अवस्थाओं और अर्थ प्रकृतियों में यही अन्तर प्रतीत होता है कि अर्थ प्रकृतियाँ कार्य सिद्धि के लिए सहायक होती हैं और अवस्थाएँ उस सिद्धि की ओर अग्रसर होने की श्रेणियाँ है। दश रूपककार ने सन्धि के लक्षण इस प्रकार बताए है—

अर्थं प्रकृतय पच पचावस्थासमन्विता ।
यथा सख्येन जायन्ते मुखाद्या पच सधय ॥[१]

अर्थात् जहाँ पाँच अर्थ प्रकृतियाँ यथाक्रम रूप से समन्वित हो वहाँ क्रमशः मुखादि पाँच सन्धियाँ उत्पन्न होती है। साहित्य दर्पणकार ने भी यही परिभाषा बनाई है और उसमे 'इतिवृत्तस्यभागा.' और जोड दिया है अर्थात् वे कथानक के भाग हैं। नाट्यशास्त्र मे अवस्था अर्थप्रकृति और सन्धियो का वही स्थान है जो साहित्य मे काव्यागो का है। इनके प्रयोग से नाटक मे रोचकता बढ जाती है। इन सब नियमो का पालन करने से नाटक तथा रगमच दोनो को पूर्णता प्राप्त होती है।

अर्थोपक्षेपक—कथावस्तु में दो प्रकार की सामग्री होती है—१—दृश्य २—सूच्य।

१—वह घटना जो मच पर विशेष रूप से प्रस्तुत की जाती है उसे दृश्य कहते है।

२—वह कथा, जो मच पर घटित न होकर पात्रो द्वारा सूचित की जाती है, उसे सूच्य कहते है।

हमारे यहाँ मृत्यु, स्नान, भोजन आदि ऐसे दृश्य रगमच पर प्रदर्शित करना वर्जित है क्योंकि ये रस मे बाधा उत्पन्न करते है। कुछ दृश्य ऐसे होते है जो अभिनीत नही होते, किन्तु कथावस्तु को बनाए रखने के लिये उनका होना अत्यन्त आवश्यक है। जो कथानक रगमच पर प्रस्तुत किये जाते है वह अक तथा दृश्यों में विभाजित होते हैं।

सूच्य वस्तु की सूचना देने वाले साधनो को अर्थोपक्षेपक कहते है। ये पाँच प्रकार के होते है। १—विष्कम्भक २—चूलिका ३—अकास्य ४—अकावतार तथा ५—प्रवेशक।

१—*विष्कम्भक*—यह वह दृश्य है जिसमे प्रथम तथा बाद में घटित होने वाली घटनाओ की सूचना दी जाती है। उसमे केवल दो पात्रो का ही कथोपकथन होता है। ये पात्र प्रधान पात्रो के अतिरिक्त होते है। यह नाटक के आरम्भ में अथवा दो अको के मध्य में आ सकता है। यह दो प्रकार का होता है—१—शुद्ध तथा २—सकर।

---

१ दशरूपक—धनजय—१ १२ २३ पृ० २१२

शुद्ध—इसमें पात्र मध्यम श्रेणी के होते है तथा सस्कृत भाषा बोलते है।

संकर—इसके अन्तर्गत पात्र मध्यम और निकृष्ट श्रेणी के होते है और संस्कृत भाषा के साथ प्राकृत भाषा भी बोलते है।

२—*चूलिका*—यह कथानक का वह भाग है जिसकी सूचना पर्दे के पीछे से दी जाती है।

३—*अंकास्य*—अक के अन्त मे जहाँ बाहर जाने वाले पात्रो द्वारा आगामी अक की कथा सूचित की जाए, उसे अकास्य कहते है।

४—*अंकावतार*—जहाँ पर पात्रो मे बिना परिवर्तन किए पूर्व अक की कथा परवर्ती अंक मे बढाई जाए, वहाँ पर अकावतार होता है।

५—*प्रवेशक*—उसमे दो पात्रो के द्वारा ही घटनाओं की सूचना दी जाती है इसके पात्र निम्नकोटि के होते है, प्राकृत बोलते है और यह दो अको के बीच मे आता है। इसका प्रयोग नाटक के आरम्भ मे कभी नही होता।

कथावस्तु में कुछ ऐसी घटनाओ का सचयन किया जा सकता है जिसमे मनोरज-नार्थ हास्य के प्रसग उपस्थित किये जा सकें।

पात्र—पाश्चात्य नाटकों में नायक साधारण व्यक्ति भी हो सकता है क्योंकि वह सदैव परिस्थितियो मे उलझा रहता है। हमारे यहाँ के नाटक सुखान्तकी होते हैं इसलिए नायक की नाटक मे विजय दिखाना अनिवार्य है। नाटक के प्रधान पात्र को नायक कहते है। 'नेता' या 'नायक' शब्द 'नी' धातु से बना है। जिसका अर्थ है 'ले चलना' अर्थात् नायक वह है जो नाटक की प्रमुख कथा को बढाता हुआ अन्त तक ले चलता है। नायक को सम्पूर्ण गुणो से सम्पन्न होना अनिवार्य बताया है। धनजय ने नायक के लिए निम्न-लिखित गुण आवश्यक बताए—

> 'नेता विनीतो मधुरस्त्यासी दक्ष. प्रियंवद :।
> रक्त लोक. शुचिर्वाग्मी रूढवश स्थिरो युवा ॥
> बुद्धयुत्साह स्मृति प्रज्ञाकला मानसमन्वित ।
> शरो दृढ़्च तेजस्वी शास्त्र चक्षुश्च धार्मिक ॥

अर्थात् नेता को विनीत, मधुर, त्यागी, दक्ष, प्रियवद, शुचि, रक्तलोक, रूढवंश, *स्थिर-चित्त वाला, युवा, बुद्धिमान, साहसी, स्मृतिवाला, प्रज्ञावान, कलाकार, शास्त्र* चक्षु, आत्मसम्मानी, शूर, दृढ़, तेजस्वी तथा धार्मिक होना चाहिए।

नायक को नम्र होना इसलिए आवश्यक बताया है कि उसका पात्रों के प्रति अच्छा व्यवहार हो। क्योंकि नम्र होना उच्च सस्कृति एवं शील का लक्षण है। नायक को उदार चरित्र इसलिए दिखाया गया है कि उससे जनता के नैतिक विचारो का उन्नयन हो। स्वभाव भेद से नायक चार प्रकार के माने गए हैं—जैसे—१, धीरोदात्त २, धीर-

ललित ३, धीरप्रशान्त तथा ४, धीरोद्धत ।

१—धीरोदात्त—धीरोदात्त नायक क्षमाशील, आत्मगौरव, शक्तिवान, दृढव्रती तथा विनयी होता है। धीरोदात्त नायक म अह की भावना लेशमात्र भी नही होती है। वह गम्भीर प्रवृत्ति का होता है।

२—धीरललित—धीरललित विलासी नायक होता है और स्वभाव मे भी कोमल होता है। 'शकुन्तला' नाटक का नायक धीरललित है।

३—धीरप्रशान्त—धीरप्रशान्त नायक ब्राह्मण या वैश्य होता है और यह शान्तभाव का होता है। 'मालती माधव' नाटक में माधव धीरप्रशान्त नायक है।

४—धीरोद्धत—धीरोद्धत नायक अधिक अह के भाव से भरा हुआ होता है। सदैव ही अपनी प्रशसा चाहता है। साथ ही स्वभाव मे भी विश्वासघाती होता है। रावण, मेघनाद आदि इसके उदाहरण है।

नायक के प्रतिद्वन्द्वी को प्रतिनायक कहते है। यह भी धीरोद्धत होता है।

विदूषक —सस्कृत नाटको में विदूषक का होना अनिवार्य माना गया था और यह ब्राह्मण जाति का होता था। भोजनप्रियता इसकी मुख्य विशेषता हे। इसका प्रमुख कार्य राजा को परामर्श देना होता था।

नायिका—नायक की पत्नी नायिका कहलाती है। नायक के समान नायिका मे भी वही गुण होने चाहिये जो नायक मे है। नाट्यशास्त्र में भरतमुनि ने नायिकाओ के चार भेद बताए है १-दिव्या २-नृपतिनी ३-कुलस्त्री और ४-गणिका। आजकल इन भेदो की इतनी मान्यता नही। दशरूपक मे धनञ्जय ने नायिका के तीन भेद बताए है। १-स्वकीया २-परकीया और ३-सामान्या। इसके अतिरिक्त नायिका के व्यवहार के आधार पर आठ भेद और किए गए है जैसे-१-स्वाधीनपतिका २-वासकसज्जा ३-विरहोत्कण्ठिता ४-कलहान्तरिता ५-खण्डिता ६-विप्रलब्धा ७-प्रोषितपतिका और ८-अभिसारिका।

पाश्चात्य नाट्यशास्त्र के अन्तर्गत हमें इस प्रकार नायक एव नायिका के कोई भेद नहीं मिलते। नाटक के अन्तर्गत विविधपात्रों की रूपरेखा इस प्रकार उपस्थित की जाती है जिससे मनोरजन की सृष्टि हो।

कथोपकथन—कथोपकथन का नाटक में विशेष महत्व है। नाटक के पात्रो के विचार, भाव एव प्रवृत्तिया आदि का ज्ञान हमे उनके कथोपकथन द्वारा होता है। कथावस्तु का सम्बन्ध जब ऐसी बातो से रहता है जो प्रत्यक्ष रूप मे अभिनय मे प्रस्तुत नही की जाती, तब ऐसी अवस्था मे कथोपकथन का महत्त्व बढ जाता है। भाषा सरल सुबोध एव पात्रो के अनुकूल होनी चाहिये। कथावस्तु का पूर्ण विकास कथोपकथन पर ही निर्भर रहता है। कथोपकथन की सफलता पर ही नाटक की सफलता अवलम्बित

रहती हैं। कथोपकथन बहुत लम्बे नहीं होने चाहिए जिससे दर्शक ऊब जाएँ, साथ ही इतने संक्षिप्त भी नहीं होने चाहिये जिससे कथावस्तु का पूर्ण विकास न हो सके। अभिनय के अनुकूल कथोपकथन का प्रयोग होना चाहिए। प्राचीन आचार्यों ने तीन प्रकार के कथोपकथन माने है—जैसे, १—श्राव्य २—अश्राव्य तथा ३—नियत श्राव्य।

१—श्राव्य—जो सभी पात्रो द्वारा सुना जा सके वह श्राव्य कहलाता है।

२—अश्राव्य—जो बात किसी पात्र द्वारा न सुनी जा सके। स्वगत कथन ही अश्राव्य कहलाता है।

३—नियत श्राव्य—अन्य पात्रो से छिपाकर किसी एक ही पात्र या कुछ पात्रो से बात कही जाय, उसे नियत श्राव्य कहते है। यह दो प्रकार का होता है—जैसे . १—अपवारित २—जनान्तिक।

अपवारित—अपवारित उसे कहते है जिसमें जिस पात्र से बात गुप्त रखनी हो उसकी ओर मुँह फेर कर बात की जाए, उसे अपवारित कहते हैं।

जनान्तिक—दो से अधिक पात्रो की बातचीत के प्रसग में अनामिका को छोड कर बाकी तीन उँगलिया की ओट मे केवल दो पात्रों के गुप्त सम्भाषण को जनान्तिक कहते है।[१]

आकाशभाषित—भी कथोपकथन का एक भेद है। इसमें पात्र आकाश की ओर मुँह करके किसी कल्पित पात्र से बोलता हुआ दिखायी पड़ता है। यह कथोपकथन अत्यन्त रोचक होता है। उदाहरण के लिए 'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक में उस स्थान पर आकाशभाषित बहुत सुन्दर बन पडा है जब कि हरिश्चन्द्र बिकने के लिए काशी की गलियो मे घूमते हुए दिखायी पडते है। 'विषस्यविषमौषधम्' मे भी आकाशभाषित सुन्दर है।

पाश्चात्य विद्वानो ने नाटको में घटनाओ को विशेषरूप से महत्व दिया है। उनके यहा यह भी अनिवार्य नहीं है कि नायक धर्म का ही प्रतिनिधि हो और उसकी विजय भी निश्चित रूप से हो। जिस नाटक का विजय के साथ अन्त होता है वह 'कामेडी' कहलाता है और जिस नाटक में मृत्यु अथवा पराजय के साथ अन्त होता है वह 'ट्रेजडी' कहलाता है।

चरित्र चित्रण—चरित्र चित्रण ही नाटक का प्राण है। नाटककार ही मानव की मनोवृत्तियों का सूक्ष्म विश्लेषण करता है और पात्रो के चरित्र-चित्रण में जीवन की विभिन्न दशाओं तथा मानव हृदय की अनुभूतियो का समावेश करता है। मिस्टर हेनरी

१—रूपकरहस्य—डा० श्यामसुन्दर दास—पृ० ५६

आर्थर जोन्स का कथन है कि 'जब तक नाटकीय कथानक, घटनायें और परिस्थितियाँ चरित्र से सम्बन्धित नहीं होती तब तक नाटक बुद्धिहीन बल-प्रयास ही माना जायगा।'

वास्तव में चरित्र चित्रण मे नाटक का गौरव है। यह नाटक का अनिवार्य तत्व है। नाटक का स्थायित्व कथानको की अनेकरूपता के कारण नहीं, वरन् चरित्र चित्रण के कारण है। स्वगत कथनो द्वारा भी चरित्र-चित्रण पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। यद्यपि स्वगत कथनो मे स्वाभाविकता कम होती है परन्तु चरित्र चित्रण से सम्बन्धित होने के कारण उसका महत्व अवश्य है। कथोपकथन की महत्ता एव सार्थकता इसी में है कि वह कथा को अग्रसर कर पात्रो के चरित्र पर स्पष्ट प्रकाश डाले। नाटक की कथा-वस्तु की सफलता भी चरित्र चित्रण पर ही निर्भर होती है। नाटक में कई एक स्थलो पर कथावस्तु के द्वारा हमें पात्रों के मानसिक एव नैतिक गुणो का परिचय प्राप्त होता है। इस प्रकार घटनायें एव कथावस्तु चरित्र चित्रण के विकास की भूमिकाएँ हैं। चरित्र चित्रण के अन्तराल मे नाटककार कुछ ऐसी विशिष्टताएँ इगित कर देता है जिससे कि पात्र या परिस्थिति मे जीवनगत सत्य की अवतारणा हो सके।

रस और उद्देश्य—भारतीय काव्य का प्रमुख लक्ष्य अलौकिक आनन्द है। इसे रस कहते है। पाश्चात्य नाट्य शास्त्र मे इसे उद्देश्य कहा गया है। भारतीय नाटको का मुख्य उद्देश्य है मानव हृदय मे पडे हुए बीज रूपी भावो को अकुरित करना जिससे रसो मे मग्न सामाजिक साधारणीकरण की अवस्था को प्राप्त कर सके। किन्तु पाश्चात्य नाट्यकला इसके बिल्कुल विपरीत है। उसके अनुसार नाटको का मुख्य लक्ष्य अथवा उद्देश्य केवल मनोरजन है, अधिक से अधिक किसी सामाजिक अथवा राजनैतिक समस्या को प्रदर्शित करना है। हमारे प्राचीन नाटको का उद्देश्य बहुत उच्च था। जीवन की व्याख्या करते हुए आनन्द की अनुभूति ही उनका प्रमुख लक्ष्य था। उन नाटको का इष्ट नैतिक मान्यताओ को भी प्रस्तुत करना था। इस सम्बन्ध मे पाश्चात्य विद्वान शैली ने नाटक के उद्देश्य पर अपने सुलझे हुए विचार प्रकट किए है। इनका कथन है कि—

'काव्य का समाज के कल्याण के साथ जो सम्बन्ध है वह नाटक में सबसे अधिक स्पष्ट रूप में दिखायी देता है। इस बात में किसी को आपत्ति नहीं हो सकती थी। जो समाज जितना ही अधिक उन्नत होगा उसकी रगशाला भी उतनी ही उन्नत होगी। यदि किसी देश में किसी समय बहुत ही उच्च कोटि के नाटक रहे हो और पीछे से उन नाटको का अन्त हो गया हो अथवा उनमे कुछ दोष आ गए हों तो समझना चाहिए कि इसका कारण उस देश का उस समय का नैतिक पतन है[१]।'

१—साहित्य शास्त्र के सिद्धान्त—सरोजिनी मिश्रा, पृ० १८२

नाटको का सबसे बड़ा लक्ष्य है सामाजिक कल्याण एवं नैतिक उन्नति करना। इसलिए नाटककार इन सब पर दृष्टिपात करते हुए ही नाटको की रचना करते हैं। नाटको में अनुचित अंकों तथवा दृश्यो का विधान नही होना चाहिए जिससे समाज में कुरुचि उत्पन्न हो। नाटककार को सामाजिक विचारों तथा उच्च आदर्शों की प्रतिष्ठा करनी चाहिए जिससे समाज की उन्नति हो। जिस प्रकार साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब होता है उसी प्रकार नाटक भी हमारे समाज का वास्तविक चित्र होता है। जो समाज जितना उन्नतिशील होता है उसकी रंगशाला भी उतनी ही उन्नतिशील होती है। नाटक हमारे समक्ष न्याय, अन्याय, गुण, दोप आदि—सभी दृश्य प्रस्तुत करता है। इसलिए नाटककार का चाहिए कि वह उच्च आदर्शों को ही प्रस्तुत करें उसी में उसकी सफलता है।

अभिनय—अभिनय के अन्तर्गत अनुकरणात्मक कार्य की विभिन्न प्रकार की भावभंगिमाएँ तथा मुद्रायुक्त भापा होती है। संगीत अथवा पद्य के योग से गीतिनाट्य का शिल्प व्यंजित होता है। अभिनय नाटक का मुख्य अंग है। जो नाटक रगमंच पर अभिनीत किया जाता है वही सच्चे अर्थ में सफल माना जाता है। अभिनय चार प्रकार के होते है—१—आगिक २—वाचिक ३—आहार्य और ४—सात्विक।

१—आंगिक—आगिक अभिनय के तीन भेद होते है १—शारीरिक २—मुखज तथा ३—चेष्टाकृत। इस अभिनय के अन्तर्गत शरीर के अंगो का संचालन जैसे—चलना, फिरना, उठना, लेटना आदि प्रदर्शित किया जाता है। आगिक अभिनय का सबसे अधिक बोध 'कथकली' नृत्य में देखने को मिलता है जिसमें अनुकृत्यात्मक चेष्टाएँ होतीं हैं। मूक, चलचित्रो की भाँति उनमे वाणी का लेशमात्र भी व्यवहार नही होता।

२—वाचिक—वाणी द्वारा अभिव्यक्त अभिनय को वाचिक अभिनय कहते हैं। इसमे सस्कृत के साथ प्राकृत का भी व्यवहार किया जाता है। वर्तमान नाटकों में जिस प्रकार ग्रामीण भापा का प्रयोग किया जाता है उसी प्रकार प्राचीन नाटकों में संस्कृत एवं प्राकृत भापा का प्रयोग किया जाता है। जितने कथोपकथन सम्बन्धी आदेश होते हैं वे सब वाचिक अभिनय मे आते हैं।

३—आहार्य—विभिन्न वस्त्रों तथा आभूषणो को धारण करके किये जाने वाले अभिनय को आहार्य अभिनय कहते है। इसमें विभिन्न जातियो के लिए अनेक रंगों का वर्णन किया गया है।

सात्विक अभिनय—हँसना, रोना, स्तम्भ, स्वेद, रोमाच आदि सात्विको का भाव प्रदर्शित करते हुए अभिनय करना सात्विक अभिनय कहलाता है[१]।

१—रूपकरहस्य—श्यामसुन्दर पृ० ४३

वृत्तियाँ—

नाटक म वृत्तियो का भी विशिष्ट स्थान है। पाश्चात्य नाट्य शास्त्र में वृत्तियो को शैली कहते हैं। वृत्तियाँ सम्पूर्ण नाटक की गतिविधि से सम्बन्धित होती है। बहुत से विद्वान इन्हें नाटक की मात्राएँ कहते है। नाटक में जैसी शैली की आवश्यकता होती है उसी का प्रयोग नाटककार करता है, और पात्रो का इतना सजीव बना देता है कि उनमें यथार्थता झलकने लगती है। आचार्यों ने चार प्रकार की वृत्तियाँ बतलाई है—१—कैशिकी वृत्ति २—सात्वती वृत्ति ३—आरभटी वृति तथा ४—भारती वृत्ति।

१—कैशिकी वृत्ति—इसकी उत्पत्ति सामवेद से मानी जाती है। इसम गायन तथा नृत्य की प्रधानता रहती है। शृगार एव हास्य रस से इसका सम्बन्ध है। यह वृति विभिन्न प्रकार के विलासो म युक्त रहती है।

२—सात्वती वृत्ति—सात्वती वृत्ति की उत्पत्ति यजुर्वेद मे मानी गई है। यह वीर तथा अद्‌भुत रस से सम्बन्धित होती है। त्याग, दया, हर्ष, बल, सरलतायुक्त सामग्री की अधिकता रहती है। यह आनन्द देने वाली वृत्ति है।

३—आरभटी वृत्ति—इस वृत्ति की उत्पत्ति अथर्ववेद से मानी जाती है। यह रौद्र रस म सम्बन्धित होती है। इसमें इन्द्रजाल, क्रोध, सघर्ष, माया आदि का प्रदर्शन होता है।

४—भारती वृत्ति—इसकी उत्पत्ति ऋग्वेद मे मानी गई है। इसका सम्बन्ध स्त्री पात्रो से न होकर पुरुष पात्रो मे होता है। यह वृत्ति सब रसों में काम आती है।

पाश्चात्य नाटको म प्रमुख रूप मे कथावस्तु में दो प्रकार की शैलियो के रूप दृष्टिगत होते हैं। प्रथम 'अनुभाव प्रधान' शैली, द्वितीय भावप्रधान शैली। *अनुभाव-प्रधान शैली* म सकेतो द्वारा या हाव भाव द्वारा व्यवहारिक जीवन म अपने कथन को व्यक्त किया जाता है।

भाव प्रधान शैली म वाणी-द्वारा भावो के आरोह और अवरोह की अभि-व्यक्ति होती है। अत भावप्रधान शैली म मनोविकारो की आन्दोलनकारिणी शक्ति का महत्ता अधिक है। अनुभाव प्रधान शैली म क्रियाकलाप को ही महत्व दिया गया है।

देश काल—देश तथा काल के अनुसार नाटको म परिस्थिति का चित्रण होना चाहिए। प्रत्येक युग एव वातावरण के अनुकूल देश की सस्कृति, रीति रिवाज, रहन-सहन, सभ्यता और वेशभूषा सम्बन्धी चित्रण ही नाटक म अभीष्ट है। इसीलिए प्राचीन यूनानी आचार्यों ने सकलन त्रय की ओर विशेष ध्यान दिया था। इनका कहना था कि नाटकों में जो घटनाएँ प्रदर्शित हों वे सम्पूर्ण हो, एक ही काल मे हो और एक ही स्थल पर घटित हो। कार्य की सम्पूर्णता म कार्यसकलन, काल की इकाई मे काल-सकलन और

स्थल की अपरिवर्तनीय स्थिति मे स्थल-संकलन की मान्यता रखी गयी थी। संकलन-त्रय का यह सिद्धान्त यूनानी नाटककारो को भले ही मान्य हो किन्तु अन्य देशो के नाटककारो को यह सिद्धान्त मान्य नही हो सका। जीवन की विविध और व्यापक परिधि मे उसे नाटकीय सकलन त्रय में बाँधना संभव नही है। इग्लैड के नाटककारो ने—विशेषकर शेक्सपियर ने केवल कार्य की सम्पूर्णता मे कार्य-संकलन को ही महत्व दिया। काल-संकलन और स्थल-सँकलन की संकीर्णता उन्हे स्वीकार नही हुई। सस्कृत के नाटककारो ने कार्य-सकलन और काल-संकलन को ही महत्व दिया। एक अंक में एक वर्ष की घटना हो। स्थान संकलन को वे भी महत्व नही दे सके क्योकि जीवन की विपुल घटनाएँ एक ही केन्द्र मे केन्द्रित होकर भी अनेक स्थानों पर घटित हो सकती है। हिन्दी के आधुनिक नाटककारो ने तो पाश्चात्य नाटककारो की भाँति केवल कार्य-सकलन को ही महत्व दिया है। वे काल-संकलन को स्वीकार नही कर सके।

यह अवश्य कहा जा सकता है कि कुछ एकाकीकारो ने इस संकलन त्रय का महत्व अवश्य ग्रहण किया है क्योकि उनके पास घटना की परिधि छोटी होकर एक ही स्थान मे सिमिट आती है और वे कुतूहल के संचय से चरम सीमा एक ही समय की इकाई मे दिखला सकते है। डा० रामकुमार वर्मा तो संकलन-त्रय को ही एकाकी की सच्ची कसौटी मानते हैं।[1]

इस युग मे नवीन नाट्यशैली मे भी नाटक लिखे जा रहे है जिन्हें रेडियो नाटक कहते है। इन नाटको मे हमे नितान्त नवीन शैली का परिचय मिलता है। यह नाट्य शैली भी पाश्चात्य विद्वानो की अनुपम देन है। इस नितान्त नई नाट्य प्रवृत्ति ने नाट्य-साहित्य को समृद्ध एवं प्रभावशाली बनाया है। रेडियो नाटककारो में उदयशंकर भट्ट, डा० रामकुमार वर्मा, उपेन्द्र नाथ अश्क, विष्णुप्रभाकर, सुशील, चिरंजीत आदि का नाम प्रसिद्ध है। नाटकों के अनेक रूप मिलते है, जैसे भाव नाट्य, ध्वनि नाट्य, गीति नाट्य, स्वोक्ति, फेन्टेसी, फीचर आदि। प्रसादोत्तर युग मे हास्य की विधाओ में विस्तार और गहनता दृष्टिगत होती है। इसका कारण सम्भवतः यथार्थ में अधिकाधिक रुचि तथा पश्चिमी साहित्य की वस्तुपरक दृष्टि हो। हास्य अब रस की अपेक्षा मनोविज्ञान पर अधिक निर्भर हुआ और कथन की अपेक्षा कथन की शैली तथा उसकी व्यंजना मे अधिक स्पष्ट हुआ। गीति नाट्य, एकाकी तथा अनेक कौतुकों में हास्य के नाना रूप प्रकट हुए। आकाशवाणी द्वारा भी अनेकानेक झलकियाँ हास्य को ही लेकर प्रसारित हुई हैं।

१—मयूरपंख—भूमिका पृ० ७ साहित्य भवन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण १९६४।

कथावस्तु में अनुरंजन के लिए हास्य की अनिवार्यता—

कथावस्तु नाट्य के तत्वों म से एक प्रमुख तत्व है। भारतीय एव पाश्चात्य विद्वानों ने नाटक के इस तत्व को महत्ता प्रदान की है क्योंकि सम्पूर्ण नाटक कथावस्तु पर ही आधारित होता है। नाटककार वस्तु को रोचक बनाने के लिए विभिन्न सरस घटनाओं तथा परिस्थितियों का प्रयोग करता है जिससे पाठकगण की जिज्ञासा बढती चली जाए और व ऊबने न पाएँ। कथावस्तु की जिन घटनाओं के सघटन म जिज्ञासा एव कौतूहल होता है वहाँ अनुरंजन की उत्पत्ति हो जाती है। यही एक सवेद्य भावधारा है जो कथावस्तु को प्राण देती है।

जी० पी० श्रीवास्तव ने अपने 'साहित्य के सपूत' नामक नाटक की कथावस्तु म पति पत्नी की घटनाओं को इतने सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है कि उससे अनुरंजन की पुष्टि होती है। उसका एक उदाहरण देखिए—

साहित्यानन्द —(हाथ म किताब लिए हुए अपनी स्त्री सरला से।) देखा, जब मै तुम्हे प्रिये कहूँ तब तुम मुझे नाथ कहो। जब प्राण-प्यारी कहूँ तब प्राणेश्वर कहो। क्योंकि तुम मेरी स्त्री हो, समझा ? अच्छा कहता हूँ प्राण प्यारी . अब तुम अपना वाला कहो। हाँ हाँ बोलो बोलो ! उल्लू की तरह ताकती क्या हो—उहूँक, उहूँक, उलूक के समान अवलोकती क्या हो ?

सरला —तुम्हे आज हो क्या गया है ?

साहित्यानन्द —धत् तेरे की, फिर वही बात ! कुत्ते की दुम उहूँक, पूँछ हो पूँछ, कितनी ही सीधी करो, परन्तु फिर टेढी की टेढी। सहस्र ढग से तो समझा चुका हूँ। पुस्तक से पति-पत्नी सवाद का उदाहरण भी सुनवाया उस पर भी तुम नहीं समझती तो अब क्या करूँ ?

सरला —अपना मुँह पीटो और मैं क्या बताऊँ ! आखिर तुम कहते क्या हो ?

साहित्यानन्द —तुम्हारा सर।

सरला —आवो न कहो, मेरा क्या[१] ?

उपर्युक्त उदाहरण में पति-पत्नी के वार्तालाप से हास्योत्पादन हुआ है। जी० पी० श्रीवास्तव के नाटकों की कथावस्तु म अनेक ऐसे उदाहरण मिलते हैं जिनसे हँसी आती है।

कभी कभी नाटकों मे ऐसा अप्रत्याशित घटनाएँ उपस्थित हो जाती हैं जिससे अनुरंजन उत्पन्न हो जाता है। कथावस्तु में कभी ऐसे शब्दों का प्रयोग होता है जिससे हास्योत्पादन होता है, जैसे बदरीनाथ भट्ट जी के 'मिस अमेरिकन' नामक नाटक की एक

१—साहित्य का सपूत—जी० पी० श्रीवास्तव—अक १, दृश्य २ पृ० १५

उदाहरण है—

'हाकिम—अबे बेवकूफ !

नौकर—(आप ही आप) एक सार्टीफिकेट तो मिला।

हाकिम—घण्टा वण्टा कुछ नही, तू सब काम सभाल लेगा ?

नौकर—जी हाँ, क्यों नहीं ! मै क्या आदमी नही हूँ ? आदमी का काम आदमी न सभालेगा तो क्या जानवर सभालेगा।

उपर्युक्त उदाहरण मे 'जानवर' शब्द द्वारा हास्य सिद्ध हुआ है।

कथावस्तु मे कभी हास्य अनुपात रहित घटना या असगत घटनाओ द्वारा अथवा विरोधी तत्वों के वैचित्र्य-समन्वय से उत्पन्न हो जाता है। कभी आपस मे दो व्यक्ति वातचीत कर रहे है सहसा दोनो व्यक्ति ठट्ठा मार कर हँसने लगे तभी एक के मुख में मच्छड़ चला जाता है। उसका हंसना एक ओर वन्द होता है तो दूसरे व्यक्ति का हंसना उतना ही बढ जाता है।

इस भाँति विपम घटनाओ से हास्य की उत्पत्ति होती है।

विनोद द्वारा की गई प्रतिद्वन्द्विता भी अपना विशेष चमत्कार प्रदर्शित करती है इसी कारण उसे हाजिर जवाबी भी कहते है। इसमे शब्दो का प्रयोग इतना सुन्दर होता है कि शब्दो के अनेक अर्थ निकलते है। इसके दो प्रकार है : १—श्लिष्ट २—अर्थान्तर श्लिष्ट मे तो विनोद अनेकार्थ व्यंजित करता है। जैसे कोई कहे भिखारी को देख कर तुम पट देते हो। दूसरा उत्तर दे कि जी नही, मैं पट (वस्त्र) देता हूँ। अर्थान्तर में अर्थ को बदल कर उत्तर दिया जाता है। जैसे एक किसान अपनी पत्नी के साथ बाजार की ओर जा रहा है। दो चार व्यक्ति उसे मिल गए। उनमे से चतुर व्यक्ति ने अपनी चतुरता दिखाने के लिए उस किसान से पूछा—'क्यो भाई, यह तुम्हारी बहन है?' किसान भी बडा चतुर था। उसने हँस कर कहा, 'जिसको आप बहन कह रहे हैं वह तो हमारी पत्नी है।' सब लोग हँसने लगे और वह चतुर व्यक्ति लज्जित होकर भाग निकला।

कभी परिस्थितियो के अनमेल योग से भी हँसी उत्पन्न होती है। जैसे किसी दुर्बल व्यक्ति के साथ तोदवाले को देख कर हम हँसने लगते है। घोड़े पर उल्टे बैठे व्यक्ति को देख कर सब लोग हँसना आरम्भ कर देते है। नाटक में रोचकता उत्पन्न करने के लिए ऐसे अनेक प्रसंगो की अवतारणा करनी पड़ती है जो दर्शकों के हृदय मे मनोरंजन की सृष्टि कर सके। किन्तु हास्य के ये प्रयोग अत्यन्त सावधानी मे होने चाहिए। यदि हास्य का प्रयोग समुचित रूप से नही हुआ तो दर्शकों पर उसका इच्छित प्रभाव नही पड़ सकेगा। हास्य एक दुधारी तलवार की भाँति है। यदि यह अपने लक्ष्य पर प्रहार करने में असफल होता है तो स्वयं प्रहारकर्ता ही क्षतविक्षत हो जाता है। यह भी कहा जाता

है कि हास्य का प्रयोग राजनीति की भाँति सर्प के साथ क्रीड़ा करना है। जो सर्प मदारी के लिए आजीविका का साधन बनता है, वही खिलाने वाले को दशित भी कर सकता है। इस प्रकार हास्य के प्रयोग मे बहुत बडी सावधानी अपेक्षित है।

नाटक के अनेक दृश्यों में पात्र एव कथाभेद से हास्य की सृष्टि होती है किन्तु यह भी आवश्यक है कि नाटकीय कथावस्तु के विकास मे यथा अवसर हास्य सबधित मनोरंजन की प्रच्छन्न धारा प्रवाहित होती रहे। यदि यह मनोरजन दर्शकों को प्राप्त न होगा तो नाटक नीरस एव ऊब उत्पन्न करने वाला हो जाएगा। अत. यह स्पष्ट है कि नाटक के क्रमिक विकास मे हास्य का प्रयोग अत्यन्त सावधानी से किसी रूप मे अवश्य ही प्रयुक्त होना चाहिए।

जी० पी० श्रीवास्तव के नाटको की कथावस्तुओं में अवस्था द्वारा हास्य उपस्थित होने के अनेक उदाहरण मिलते है। इनके 'अच्छा उर्फ अक्ल की मरम्मत' मे बदहवास राय अपनी स्त्री को सदैव प्रसन्न रखने की युक्ति अपने मित्र रसिकलाल से पूछता है। रसिकलाल सलाह देता है कि स्त्री के कुछ भी कहने पर 'अच्छा' शब्द ही उत्तर मे कहे। बदहवास राय ऐसा निश्चय कर अपने घर आते हैं। उसकी स्त्री क्रोधित होकर आती है ऐसी अवस्था उपस्थित होती है कि हँसी आना स्वाभाविक है।

सुशीला—मै अपने पिता के यहाँ जाती हूँ।

बदहवास राय—अच्छा।

सुशीला—इससे अच्छा हो कि मौत आ जाय।

बदह० राय—अच्छा।

सुशीला—मै खुद ही प्राण त्यागे देती हूँ।

बदह० राय—अच्छा।

सुशीला—अभी जाकर मै विष खाती हूँ।

बदह० राय—अच्छा।[1]

दर्शक गण यह समझ जाते है कि सुशीला आत्महत्या न करेगी और न ही अपने पिता के घर जायेगी। बदहवास राय अच्छा, अच्छा करने में ही लगे रह जाते हैं। ऐसी परिस्थितियों मे विनोदपूर्ण अवस्था उपस्थित होने के कारण ही हँसी उत्पन्न होती है। जी० पी० श्रीवास्तव के नाटको में अवस्था द्वारा उत्पादित हास्य की बड़ी भरमार है।

कथावस्तु में अनुरजन उत्पन्न करने के लिए प्रत्येक बात को बढा चढ़ा कर ही लिखना अथवा कहना पड़ता है। तभी कथावस्तु उत्कृष्ट एवं रोचक बनती है। पात्रो के चित्र भी असम्भाव्य रूप मे प्रदर्शित किए जाते है। शब्दावली, चरित्र, घटनाएँ, संवाद,

---

१. नोक झोंक—श्री जी० पी० श्रीवास्तव—पृ० ५२

परिस्थितियाँ, अवस्थायें—आदि सभी कथावस्तु के हास्योत्पादन मे सहायक सिद्ध होती है। मिश्र बन्धुओ ने अपने नाटक के पात्रो द्वारा हास्य का उद्रेक किया है। इन पात्रो का महत्त्व हास्य की दृष्टि से तो है ही परिस्थिति की दृष्टियों से भी है। कोई ग्रामीण पात्र है तो कोई सिपाही तथा नागरिक आदि है। उदाहरणार्थ :—

'रावण—अबे तू यहाँ कहाँ से आ गया ? जा जहाँ से.. ......।

नरान्तक—क्या यह कोई खराब जगह है ?

रावण—खराब नही है तो क्या अच्छी है ?

+ + +

रम्भा—यह इनकी बातें है। स्वय मेरा रुपया चाहते है। जब मैने बडा तकाजा किया तब उसी के वदले मे माला मुझे दे दी।

नरान्तक—पिताजी यह क्या बात है ? मेरी तो बुद्धि चक्कर खा रही है।

रावण—अरे तू डेरे पर क्यों नही जाता ! यहाँ खडा खडा क्या पंचायत कर रहा है। वदमाश कही का !

नरान्तक—मै रोने लगूगा। मुझसे आप कभी ऐसी बातें नहीं करते थे। आज क्या हो गया है ?

रम्भा—आज इनकी अकल मारी गई है। जुए में दाम हारे, उसमे माला गयी। अब बिचारे निर्दोष बच्चे को डाटते हैं।'[1]

प्रस्तुत उदाहरण में यह स्पष्ट होता है कि मिश्रबन्धु ने हास्य का विधान विनोद-पूर्ण वार्ता से किया है। इनके पात्र किसी निश्चित स्थान अथवा समय पर नहीं मिलते बल्कि वे यत्र तत्र रगमच पर उपस्थित होकर अपनी वेशभूषा एव परिष्कृत हास्य के द्वारा दर्शकों का मनोरजन करते है। इनका हास्य अत्यन्त सुसयत एव मर्यादित है। इस प्रकार के हास्य का एक और उदाहरण देखिए—

(हस्तिनापुर की एक फुलवारी। लाला, पुरबी, रामसहाय व रोशन का प्रवेश)

लाला—कै हो पुरबी महराज, कुछ सुन्यो ? अब की सालो भरे के सबै यतवार सुना सब बुद्धैक परिगे।

पुरबी—तुमहूँ निरे अहमकै रह्यो लाला, अरे कहूँ दुइ, एकु परिगे हरहइ भला। सब कइसे परि सकत्यें !

लाला—यहै तो पूछा।

रामसहाय—भला पाडे जो तलाव में आग लगे तो मछलियाँ कहाँ जावे। बिचारी उसी मे जले भुने।

---

१. रामचरित्र नाटक—मिश्रबन्धु—अक १, दृश्य ३, पृ० २२

पुरवी—जरै कहे ! बिरवन पर न चढ़ि जाय ।
लाला—तो का उड़ गाई-भैंसी आय ?'[१]

पात्रो के अनुकूल भाषा का प्रयोग कर नाटककार ने हास्य को स्वाभाविक बना दिया है । इस प्रकार यह स्पष्ट है कि कथावस्तु को रोचक बनाने के लिए नाटककार विभिन्न सामग्री का प्रयोग करता है जिससे कथावस्तु समृद्ध सफल एव परिष्कृत बन सकें।

प्राचीन संस्कृत नाट्य शास्त्र का प्रभाव—

हिन्दी नाट्य साहित्य पर जैसे पाश्चात्य साहित्य एव बंगला नाट्य साहित्य का प्रभाव पड़ा, उसी प्रकार प्राचीन सस्कृत नाट्य साहित्य का आरम्भ सस्कृत नाटको की प्रेरणा तथा प्रभाव से ही हुआ । 'मुद्राराक्षस' 'धनञ्जय विजय', 'पाखण्ड', विडम्बन'—कई एक सस्कृत-नाटको का हिन्दी मे अनुवाद हुआ । भारतेन्दु जी तथा उनके समकालीन नाटककारो ने भी सस्कृत के नाटका का अनुवाद प्रस्तुत किया । भारतेन्दु युग के सभी हिन्दी नाटको पर सस्कृत शैली का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। भरत वाक्य, प्रस्तावना, मगलाचरण, नान्दी पाठ अधिकतर इस काल के नाटकों में मिलता है ।

द्विवेदी-युग में भी हमें सस्कृत नाट्य साहित्य की अमिट छाप मिलती है। इस युग मे भी सस्कृत के नाटको का अनुवाद हुआ । जैसे—'उत्तररामचरित', 'मालती माधव', मालविकाग्निमित्र', 'मृच्छकटिक' आदि नाटक अनुवादित हुए। सस्कृत शब्दो का भी विशेष रूप से प्रयोग हुआ । प्रसाद युग मे आकर सस्कृत नाट्य साहित्य का प्रभाव कुछ कम हो गया । स्वय प्रसाद जी भी सस्कृत के प्रभाव से मुक्त नहीं हैं। उनके 'जनमेजय का नागयज्ञ' और 'अजात शत्रु' पर सस्कृत का कुछ हल्का प्रभाव दिखाई पडता है । मगलाचरण और भरतवाक्य, स्तुति, प्रस्तावना तथा आशीर्वचन का प्रयोग भी कम हुआ है । नाटकों मे अकों, और दृश्यों का विभाजन सीधे सादे एव सरल ढग से आरम्भ हुआ, तत्पश्चात् स्वगत कथनों का प्रयोग भी कम होता गया ।

वर्तमान युग में आते-आते नाटकों के विकास में विशेष रूप से प्रगति हुई। पद्यात्मक सवाद विलीन हो गए और गीतों का प्रयोग अधिक मात्रा मे होने लगा । सवाद सजीव एव स्वाभाविक तथा रसानुकूल नाटकोचित लिखे गए। भाषा-शैली मे भी परिष्कार और सुधार हुआ । भरतवाक्य, मगलाचरण, स्तुति, प्रस्तावना आदि भी समाप्त हो गए ।

१—पूर्व भारत—मिश्रबन्धु—पृ० ८०

हिन्दी नाटकों पर अंग्रेजी नाट्य साहित्य का प्रभाव —

हिन्दी नाटको पर अनेक भाषाओ का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। प्रमुख रूप स अग्रेजी नाट्य साहित्य का प्रभाव आधुनिक नाटककारा पर बहुत है क्योकि आधुनिक शिक्षा मे अग्रेजी का महत्वपूर्ण स्थान होने के कारण सभी लोग इस साहित्य से परिचित है। अग्रेजी नाट्य साहित्य का प्रभाव हिन्दी नाटको पर तीन प्रकार से आका जा सकता है—

१—अनुवाद की दृष्टि से

२—शेक्सपियर और एलिजाबेथ युग के नाटककारो की दृष्टि से

३—आधुनिक नाटककार इब्सन, शा आदि की दृष्टि से

प्रथम प्रभाव की कोटि मे अनूदित रचनाएँ ही आती है। भारतेन्दु युग से अनुवाद कार्य आरम्भ होता है। तोताराम वर्मा ने सर्वप्रथम एडिसन के केटो का 'केटो वृतान्त' (१२७६) के नाम से अनुवाद किया। तत्पश्चात् शेक्सपियर के नाटकों के अनुवाद की धूम हो गई। 'मर्चेन्ट आफ वेनिस' और 'कामडी आफ इरोस' का सुन्दर अनुवाद रत्नचन्द ने किया। पुरोहित गोपीनाथ ने 'एज यू लाइक इट' और रोमियो जूलियट का तथा मैक्बेथ का मथुरा प्रसाद उपाध्याय ने अनुवाद किया। इब्सन के नाटको का अनुवाद भी हुआ। गाल्सवर्दी के नाटका का प्रभाव भी हमारे नाटको पर पडा।

अंग्रेजी नाट्य साहित्य के प्रभाव के कारण हमारे यहाँ की नाट्य कला के रूप तथा विधान मे विभिन्न प्रकार के परिवर्तन हुए। चटकीले एव भडकीले वातावरण स और पारसी रगमच के रोमाचक नाटका स मुक्ति मिली। यद्यपि एलिजाबेथ-युग के नाटकीय तत्वो पर पारसी रगमच का प्रभाव था। भारतेन्दु के पश्चात् वृजचन्द और कृष्णचन्द्र ने बनारस म श्री भारतेन्दु नाटक मण्डली की स्थापना की, जहाँ पर साहित्यिक नाटको के अभिनय को प्रश्रय दिया जाता था। इसके पश्चात् प्रसाद नाट्य साहित्य आरम्भ हुआ। प्रसाद के स्पर्श से साहित्य में नवीन शैली का विकास हुआ। यह हिन्दी नाटको के इतिहास मे एक रोमांटिक प्रवृत्ति का युग था। श्री सुदर्शन, माखनलाल चतुर्वेदी, बद्रीनाथ भट्ट, गोविन्दबल्लभ पत के द्वारा ऐतिहासिक नाटक इसी युग मे लिख गए।

हिन्दी नाटको में निम्नप्रकार के परिवर्तन हुए—

१—नान्दी पाठ, मगलाचरण, प्रस्तावना आदि प्रथाओं का उन्मूलन हुआ।

२—अक तथा दृश्य विधान में प्रवेशका और सन्धिया आदि का बहिष्कार हुआ।

३—सवादो मे तीव्रता आई।

४—सम्भाषण का पात्रानुकूल प्रयोग होने लगा।

५—शेक्सपियर की नाट्य प्रणाली स्वय कथन का अनुकरण हुआ तथा पृथक् कथन (एसाइड) तथा पद्यबद्ध सवादो का बहिष्कार किया गया।

६—निरर्थक एव अप्रासगिक गीतो की मात्रा कम हुई।

७—दुखान्त नाटको का प्रचलन हुआ।

हिन्दी लेखको का ध्यान रोमान्टिक प्रवृत्ति के फलस्वरूप जीवन की उन समस्याओ की ओर भी आकृष्ट हुआ, जिनकी उपेक्षा इस युग के बौद्धिक चिन्तन मे असम्भव थी। जीवन मे जैसे-जैसे ये समस्यायें उग्र रूप धारण करने लगी, वैसे ही वैसे साहित्य मे भी उनकी अभिव्यजना के तीव्र स्वर मिले। उपेन्द्रनाथ 'अश्क', लक्ष्मीनारायण मिश्र, सेठ गोविन्ददास, भुवनेश्वर प्रसाद, पृथ्वीराज शर्मा आदि के नाटको मे इस युग के भाव-विचार एव सघर्ष मिलते है। इनके नाटकीय तत्वो तथा विचारो पर, इब्सन, शॉ और यथार्थवादी नाटको का गहरा प्रभाव पडा। इन नाटककारो ने, व्यक्ति और समाज की समस्या, शासन तथा प्रजातन्त्र की समस्या, इस प्रकार विभिन्न प्रकार की समस्याओ को उठाया। अग्रेजी के विचारशील यथार्थवादी नाटककारो का भी उन पर प्रभाव पडा और साथ ही वे भारतीय विचारधारा से भी प्रभावित हुए। महात्मा गाधी ने इन सभी समस्याओ पर विशेष रूप से अपना प्रभाव डाला। जिन लोगो ने राजनीतिक समस्याओ को अपने नाटको में अपनाया है वे सब गान्धी जी की विचारधारा से प्रभावित हुए। इनमें पश्चिम की वस्तुवादी क्रान्ति का प्रभाव नही मिलता है।

सेठ गोविन्ददास जैसे नाटककारो ने गान्धीवादी आस्था का ही समस्यामूलक नाटको मे अपनाया। डा० रागेय राघव ने 'रामानुज' नाटक मे सास्कृतिक और सामाजिक क्रान्ति के स्वर स्पष्ट रूप से व्यक्त किये है। जिन नाट्यकारो म गाधीवादी आस्था का अदम्य आग्रह है उनके चिन्तन पर पश्चिम की बौद्धिक उत्तेजना का प्रभाव क्षीण होकर परिलक्षित होता है। कुछ नाटककारो ने घर और बाहर की समस्या, व्यक्ति तथा सेक्स की समस्या आदि को अपने नाटको मे अपनाया है जैसे लक्ष्मीनारायण मिश्र और उपेन्द्र नाथ अश्क ने। इन पर 'इब्सन' तथा 'शॉ' का प्रभाव विशेष रूप से प्रदर्शित हुआ है।

हिन्दी नाटको में इस बौद्धिक प्रभाव को विधान की दृष्टि से विभिन्न रूपो में देखा जा सकता है, जैसे—

१—ये नाटक पात्र-बहुल या घटना-बहुल नही है किन्तु विचार-प्रधान नाटक है।

२—उनमे नाटकीय इकाइयो की समन्विति है।

३—इन नाटको की शैली यथार्थवादी है और उसम तीव्र व्यग्य, विक्षोभ तथा व्यग्य है।

४—रगमच के वहाँ पर्याप्त निर्देश मिलते है।

५—नाट्य सम्बन्धी अनेक बातो का भूमिकाओ मे स्पष्टीकरण है।

६—नाटका मे अको के अन्तर्गत दृश्यो का भी समावेश हुआ है।

हिन्दी नाट्य साहित्य अग्रेजी साहित्य के द्वारा कई दृष्टियो से प्रभावित हुआ, जिसका सक्षेप मे उल्लेख किया जाता है

१. एकांकी नाटकों का विकास :—

जिस अर्थ मे आज एकाकी नाट्य कला का विकास हुआ है यह नि सन्देह पश्चिम साहित्य की देन है। इस सन्दर्भ में डा० रामकुमार वर्मा, उपेन्द्रनाथ 'अश्क' भुवनेश्वर प्रसाद, विष्णु प्रभाकर आदि का नाम उल्लेखनीय है।

२. प्रतीकात्मक नाटकों की रचना :—

आधुनिक युग मे प्रतीक नाटको का भी प्रचलन हुआ। इन नाटका से यह अभिप्राय है कि इनमें पात्र प्रतीक रूप से चित्रित होते है। पत की 'ज्योत्स्ना' पर पाश्चात्य विद्वान शैले की 'चेंची' का प्रभाव है। 'प्रसाद' कृत 'कामना' को भी हम इस कोटि के अन्तर्गत रख सकते है। अग्रेजी के फैन्टेसी नाटका का भी इन पर प्रभाव पड़ा है।

३. गीति नाट्य और भाव-नाट्य का प्रचलन :—

'प्रसाद' कृत 'करुणालय' तथा हरिकृष्ण प्रेमी के 'स्वर्ग विहान' के पश्चात् उदयशकर भट्ट के 'विश्वामित्र' 'मत्स्यगन्धा' और 'राधा' आदि गीति नाट्यों की रचना हुई। भाव नाट्यों मे भट्ट जी कृत 'अम्बा', गोविन्द वल्लभ पत कृत 'वरमाला' और मुरारी लाल कृत 'मीरा' प्रसिद्ध हैं।

४. रेडियो के लिए अनेक फीचरों की रचना :—

ध्वनि नाटकों के अतर्गत रेडियो द्वारा 'फीचर' का शिल्प निखरा। उपर्युक्त विवरण से अग्रेजी साहित्य का प्रभाव हिन्दी नाट्य साहित्य पर ज्ञात होता है। इस भाँति हमारे हिन्दी नाट्यकारो पर अग्रेजी नाट्यकारो का प्रभाव अधिक पड़ा।

बंगला नाट्य साहित्य का प्रभाव —

हिन्दी नाट्य साहित्य पर बगला नाट्य साहित्य का भी विशेष रूप से प्रभाव देखा जा सकता है। डा० रवीन्द्रनाथ ठाकुर और द्विजेन्द्रलाल राय के नाटको का विशेष प्रभाव पड़ा। ऐतिहासिक नाटको के क्षेत्र मे हिन्दी नाटककार द्विजेन्द्रराय की नाट्य कला

से अधिक प्रभावित हुए है। द्विजेन्द्रराय के नाटक मध्यकालीन भारतीय इतिहास से सम्बन्धित है, और वे मुगल युग की विभिन्न प्रवृत्तियो के सास्कृतिक तथा मनोवैज्ञानिक चित्र है। राय ने ऐतिहासिक नाटको के अतिरिक्त पौराणिक नाटको की भी रचना की है जैसे भीष्म, सीता, आदि। सामाजिक नाटको मे 'भारत रमणी', 'उस पार' आदि की रचना हुई। इन नाटको के अन्तर्गत हमें सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि का विश्लेषण प्राप्त हाता हैं। देश की तत्कालीन सामाजिक समस्याओ का उचित समाधान है तथा पात्रा के चरित्र विकास का भी सुन्दर चित्रण है।

ऐतिहासिक नाटको मे द्विजेन्द्रलाल राय का अधिक सफलता मिली है। नाटकीय परिस्थितियाँ इतिहास से सम्बन्धित होते हुए भी मनोविश्लेषण एव चरित्र चित्रण की मौलिकता की छाप लिए हुए है, साथ ही साथ आदर्शों में आधुनिकता का स्वर है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रसाद, वृन्दावनलाल वर्मा, हरिकृष्ण प्रेमी आदि अन्य नाटककारा की रचनाओं में भी हम बँगला नाट्य साहित्य का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। 'दुर्गादास' 'मेवाड पतन' मे राष्ट्र के पुनर्जागरण एव विश्वप्रेम की भावनाओ का सुन्दर चित्रण किया गया है, जिसका प्रभाव हमें हिन्दी नाटकों पर मिलता है।

देश को स्वतन्त्र करने के लिए विदेशियो के पास प्रतिनिधि रूप मे ताराबाई, महामाया तथा दुर्गादास अग्रसर होते है। गोविन्द सिंह में राष्ट्रनिर्माण की भावनाओं का समावेश किया गया है। इनकी नाट्यकला का आधार मनोवैज्ञानिकता तथा यथार्थवादिता है। इन्हाने पात्रा की आन्तरिक विचारधारा के अध्ययन की ओर भी विशेष रूप से सकेत किया है। यद्यपि इन्होंने हास्यपूर्ण नाटको की रचना नही की, तथापि पात्रो के कथोपकथना म निर्मल हास्य का पर्याप्त समावेश है, और परिस्थितियो के साथ ही साथ व्यग्यार्थ एव ध्वनि की प्रधानता है।

उपर्युक्त बगला के नाट्य लक्षणा का समावेश हम हिन्दी नाट्यकारो की रचनाओ म स्पष्टत देखते है, क्योकि प्रत्येक हिन्दी नाटककार ने अपने नाटको में राष्ट्रीय प्रेम की भावना, मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि तथा यथार्थवादिता आदि सभी को अपने नाटकों मे स्थान दिया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि बगला साहित्य का प्रभाव भी हिन्दी नाटका पर पड़ा। हिन्दी नाट्यकारो ने बगला के अनेक नाटको का अनुवाद भी किया।

हिन्दी नाटक की मौलिक प्रवृत्ति—

हिन्दी नाटक साहित्य के विकास में जहाँ युगीन परिस्थितियाँ एव समीपवर्ती साहित्यिक प्रेरणाआ का प्रभाव पडता रहा है, वहाँ हिन्दी नाटक की अपनी मौलिक प्रवृत्ति भी निरन्तर विकासोन्मुख रही है। सस्कृत की रससिद्ध भूमिकाओ तथा आदर्शों-

न्मुख कथावस्तु की परिकल्पना हिन्दी-नाटकों मे भी हुई तथा अग्रेजी साहित्य के जीवन-गत यथार्थ तथा दुखान्त परिस्थितियो का आग्रह भी हिन्दी साहित्य को मान्य हुआ किन्तु शताब्दियो से पोषित जनरुचि हिन्दी साहित्य में निरन्तर कार्य करती रही है। यही जनरुचि उसकी अपूर्ण मौलिक प्रकृति बन गयी।

यह जनरुचि अधिकतर लोकनाट्य की प्रेरणाओ से चली। साथ ही जो सस्कृति और धर्म के प्रति आस्तिक भावना जनता मे सचित होती रही है, यह भी अनेक प्रसगो पर मौलिक उद्भावनाओं के साथ व्यजित होती रही है। युग की परिस्थितियो ने भी अनेक अवसरो पर अपनी छाप हिन्दी नाटको पर डाली है। उदाहरण के लिए भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ने अपने मौलिक नाटक 'भारत दुर्दशा' मे जो अन्व परम्परा के प्रति व्यग्य उपस्थित किए हैं अथवा 'नील देवी' नाटक में अब्दुस्समद की भर्त्सना नर्तकी के रूप मे नील देवी के द्वारा हुई है यह जैसे भारतीय जनता का आक्रोश ही प्रतीक रूप में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की लेखनी मे आकर सिमट गया।

द्विवेदी युग में माधव शुक्ल ने महाभारत (पूर्वार्द्ध) मे अत्याचारी दुर्योधन की व्यवसायहीन जनता का बड़ा मनोरजक दृश्य खीचा है। उस दृश्य में बढई और लुहारो ने एक गीत गाकर तत्कालीन परिस्थिति का निम्न चित्र दिया है—

'बहुत दिनन में रीझे गोसइयाँ'
हमका दिहिन रोजगार, हो मोरे रामा
हमका दिहिन रोजगार।'

यह स्पष्ट उल्लेख करता है कि दुर्योधन के राज्य म प्रजा कितनी व्यवसायहीन रहती थी। महाभारत की कथावस्तु मे जनता का मौलिक और स्पष्ट स्वर है।

प्रसाद युग के नाटको में सभी की कथावस्तु इतिहास सम्मत है किन्तु उनमे भी ऐसे पात्र समाविष्ट हुए है जो सामान्य जनता की भावनाओ का स्पष्टीकरण करते है। उदाहरण के लिए 'स्कन्दगुप्त' मे भट्टार्क की माता कमला अथवा 'ध्रुवस्वामिनी' मे शकराज की प्रणयिनी 'कोमा।' प्रसाद के अनेक नाटको मे विदूषक जैसे पात्र की भी व्यवस्था है और यह विदूषक जहाँ प्राचीन परम्पराओ का वहन करता है वहा समय समय पर समाज के प्रति हास्य और व्यग्य भी कर देता है। अजातशत्रु का वसन्तक, स्कन्द-गुप्त का 'मुद्गल' इन हास्योक्तियो मे विशेष निपुण है, यद्यपि ये हास्योक्तियाँ अधिकतर साहित्यिक श्रेष्ठता के ताने-बाने से गूथी गयी हैं।

प्रसादोत्तर युग के नाटको में भी लोक मचीय परम्परा अधिक प्रखरता से उभरी है। विशेषकर एकाकी नाटको मे तो इस लोक रुचि का निर्वाह बडे ही कौशल से हुआ है। डॉ० रामकुमार वर्मा का नाटक 'पृथ्वी का स्वर्ग', सेठ गोविन्द दास का एकाकी नाटक 'भिखारिणी', और उदयशकर भट्ट का 'दस हज़ार' तथा उपेन्द्रनाथ 'अश्क' द्वारा

रचित 'तौलिए' आदि स्पष्ट रूप से लोक रुचि की बडी सुन्दर अभिव्यजना करते है। प्रसादोत्तर नाटको मे चरित्र चित्रण का आधार मनोविज्ञान है। इसलिए इन मनोवैज्ञानिक गहराइयो में जहाँ एक ओर पात्र और परिस्थिति की विशिष्टता परिलक्षित होती है वहाँ नाटककार का हास्य के माध्यम से लोक रुचि और युगीन परिस्थितियों को व्यक्त करने के अनेक अवसर प्राप्त होते हैं।

इस भाँति यह स्पष्ट है कि भले ही हिन्दी नाटक अंग्रेजी तथा बगला नाटक की शिल्प विधि से किसी न किसी रूप मे प्रभावित हुए है तथापि उसमे ऐसे अश वर्त्तमान है जो उसकी मौलिक प्रवृत्ति और प्रकृति के सशक्त एव प्रभावशाली व्यजक दृष्टिगत होते है। यहाँ यह प्रश्न उठ सकता है कि क्या सामान्य जनता की ओर दृष्टिपात करना ही नाटक की मौलिक प्रवृत्ति है ? इस कथन का समाधान इस रूप में किया जा सकता है कि नाटक रगमचीय कला होने के कारण सामान्य जनता की अभिरुचि का यथासम्भव समावेश तो करता ही है, साथ ही उस रुचि को कला सम्मत बनाकर उसे मनोविज्ञान के धरातल पर प्रतिष्ठित करता है और इस भाँति उस कला को ऐसा रूप देता है जो साहित्यगत मान्यताओ को प्राप्त करते हुए सामान्य जनरुचि को भी अपने क्रोड मे सुनियोजित करता है। इस भाति नाटककार की प्रतिभा जहाँ परिस्थिति का साधारणीकरण करते हुए वस्तुकौशल को एक कुतूहलजनक रूप देती है वहाँ दूसरी ओर रस-निष्पत्ति में लोकरुचि को भी एक अवयव मानकर मधुमती भूमिका प्रस्तुत करती है। इस प्रकार नाटककार की यह मौलिकता अपने अन्तराल मे विचारो और शैली दोनो को ही समेट लेती है।

□

द्वितीय अध्याय : हास्य का विवेचन

हास्य रस हमारे संस्कृत व्यक्तित्व की सहजता, ऋजुता एवं पवित्रता का द्योतक रहा है, जो समस्त कल्मप को अपनी सुरसरि-धारा मे नहलाता हुआ सब का हित करता हुआ प्रवहमान होता रहता है। हास्य रस ही मानव जीवन के जटिल जीवन संदर्भ को नया अर्थबोध देता है। हास्य दुर्बलताओं, विषमताओं, अपूर्णताओं और स्वीकृत रूढ़ परंपराओ के विरुद्ध अपने समस्त आक्रोश को मुस्कानो की सीमाओ से बाँध कर नई मानवता के स्वागत के लिए चेतना को जाग्रत करता है।

हास्य रस बहुत अमूल्य तथा उत्तम रस है। यह सरस, सुष्ठु, सुस्निग्ध तथा निर्मल नवनीत है। इसी रस के द्वारा मानव-हृदय के सुकोमल तथा उत्तमोत्तम भावों का उदय होता है। हास्य रस ही मनुष्य मात्र के हृदय में सहानुभूति, सहृदयता तथा शुद्धता की त्रिवेणी तरंगित कर देता है। और यह त्रिवेणी हृदयपटल को परिप्लावित करती रहती है तथा प्रेम पुलकित गात, अमल अलौकिक तथा मधुर शीतल हँसी की पवित्र धारा से अभिषिक्त होती है।

हास्य रस क्या है ?

हास्य की वास्तविक प्रवृत्ति का निरूपण करना अत्यन्त कठिन है, क्योंकि यह साहित्य की अपेक्षा दर्शन शास्त्र का विषय अधिक है। सरल शब्दो मे हम इमे इस भाँति कह सकते हैं कि हँसी क्यों आती है ? अर्थात् हम क्यों हँसते है ? अनेक विद्वानों ने अपने विभिन्न मत प्रस्तुत किए है। प्रसिद्ध हास्य-व्यंग्य के तत्ववेत्ता बर्नड शा का कथन है कि 'कोई भी वस्तु जो हँसाये वह हास्य है।' फ्रान्सीसी आलोचक बर्गसा.ने इस प्रश्न को हल करते हुए हास्य की परिस्थिति और प्रवृत्ति का विश्लेषण किया है, और कई निष्कर्ष निकाले है। उनका कथन है कि 'हास्य सर्वथा मानवीय वृत्ति है और मानव जीवन से बाहर उसकी कोई गति नही है। हास्य के लिए भावुकता और उद्वेग का सर्वथा अभाव अनिवार्य है क्योंकि हास्य और भावुकता एक दूसरे के शत्रु है। हास्य एक सामाजिक वृत्ति है, वातावरण तथा परिस्थिति में किसी भी प्रकार की सामाजिकता हास्य को जन्म दे सकती है।

शरीर-वैज्ञानिकों ने हास्य की परिभाषा इस प्रकार दी है . 'बाह्य वातावरण एवं कोई भूली-भटकी स्मृति द्वारा मस्तिष्कगत विशिष्ट केन्द्र की हलचल का परिणाम, जो होठों एवं मन तथा मुख की भाव-भंगिमा पर लौट कर प्रतीत होता है उसे हास्य कहते है[1] ।' यद्यपि यह परिभाषा पूर्ण सत्य तो नही है किन्तु अधिकाश रूप मे ठीक है ।

विकासवादी हास्य को हर्ष का बाह्य सूचक मानते हैं । इनका कथन है कि जिस प्रकार प्रसन्नता के सूचकों में नृत्य, ताली बजाना इत्यादि है उसी प्रकार हास्य भी एक प्रकार है[2] ।' कुछ आचार्यों का कहना है कि जब मस्तिष्क मे रुधिर का संचार स्थगित हो जाता है तभी हास्य का उदय होता है । अन्य आचार्यो के अनुसार 'हास्य विजय के भावो का सूचक है ।' जैसे कुछ अलौकिक शक्तियो के साथ युद्ध मे मनुष्य को जब विजय प्राप्त होती है तो उसे देख कर हम एकदम हर्षान्वित हो जाते है ऐसी परिस्थिति में ही शोक के साथ भी हर्ष का उदय हो जाता है । यह भाव निरपराधियों की हानि मे नहीं होता । जो वास्तव मे दुष्ट व्यक्ति है और अपनी अनधिकार चेष्टा के कारण कष्ट और दु.ख उठाते है उनको देखने से ही हमारे मन मे संतोष जागृत हो जाता है ।

आधुनिक मनोविश्लेषण शास्त्रियो के अनुसार हमारी सभी क्रियाओ का मूल हमारी अनुबद्ध अवस्था मे रहता है । प्राय: कुछ भाव ऐसे होते है जो सामाजिक तथा नैतिक बन्धनों के कारण हमारी उद्‌बुद्ध अवस्था में बाहर नहीं निकल पाते हैं । जैसे उपहास में, स्वप्न मे, तथा विस्मृति के कारण ये बन्धन उठ से जाते है फिर अनुबद्ध विचार बाहर प्रकाश पा जाते हैं । उदाहरण के लिए, हम किसी व्यक्ति से घृणा करते है परन्तु सामाजिक भय के कारण हम उस घृणा को प्रकट नही करते, परन्तु उपहास में 'घृणा' सुन्दर वेश धारण कर समाज में बाहर जाने के योग्य बन जाती है और मन में जो अवरोध का भाव छिपा रहता है वह मिट जाता है तथा मन प्रसन्न हो जाता है ।

मनोवैज्ञानिको मे प्रख्यात मैग्डूगल महोदय का कथन है कि प्रकृति ने हास्य द्वारा मनुष्य में स्वाभाविक सहानुभूति की अतिशयता को रोक कर मनुष्य को जरा-जरा सी बातो के लिए दुखी होने से बचाये रखा है[3] । उदाहरण के लिए पानी में ढकेले जाने पर सामान्यत हमें क्रोध आना चाहिए किन्तु साथियो के समक्ष अपनी विनोदप्रियता के लिए हम हँस पड़ते हैं । इसी तरह गोपियो के सम्बन्ध में महाकवि चकबस्त की पंक्तियाँ है—

'खिलखिला पडती है जब पैर फिसल जाता है ।'

१—हास्य के सिद्धान्त तथा आधुनिक हिन्दी साहित्य—स्व० नारायण दीक्षित तथा त्रिलोकी नारायण दीक्षित पृ० ९६

२—नवरस—बाबू गुलाबराय, पृ० ४१०

३—नवरस—बाबूगुलाब राय—द्वितीय संस्करण—पृ० ४११

जहाँ तक मेरा अनुमान है प्रकृति के कार्य व्यापारों की मानव द्वारा जो अनुकृति होती हैं वह भी अपनी कृत्रिमता से हास्य उत्पन्न करती है जैसे वसन्त ऋतु में कोयल के बोलने का अनुकरण जब एक मनचला बालक करता है तो हम अनायास मुस्करा उठते हैं। हँसना मानव की मूल प्रवृत्ति है और प्रत्येक मूल प्रवृत्ति के साथ उद्वेग का सम्बन्ध अवश्य ही रहता है, हास्य क्रिया के साथ प्रसन्नता का सम्बन्ध है। इसलिए प्रसन्नता हँसी के मूल कारणों में से मानी जाती है। हास्य की परिभाषा है कि 'हंसी अपने गौरव की अनुमति से उद्भूत प्रसन्नता का प्रकाशन है[1]।'

हास्य एक प्राकृतिक देन है और वह प्रेम की भांति स्वत उत्पन्न होता है। जहाँ प्रेम दो वस्तुओं के आकर्षण से उत्पन्न होता है वहाँ हास्य दो वस्तुओं के विकर्षण का परिणाम है। सिली महोदय के अनुसार, 'हास्य रस मनोविकार होते हुए भी बौद्धिकता का पर्याप्त अंश लिए हुए है।' हास्य का सम्बन्ध हास्यमय परिस्थिति के ज्ञान से ही है क्योंकि इसमें बुद्धि से काम करना पड़ता है। हास्य एक मानसिक क्रिया है। हास्य मानव की जटिल स्थितियों को दूर कर नवीन स्थितियों को जन्म देता है। यही कारण है कि नाटककार गम्भीर दृश्यों के बीच-बीच में हास्यपूर्ण दृश्यों का समावेश कर देते हैं जिससे कि बहुत सुन्दर प्रभाव पड़ता है। हास्य ही आनन्द का सूचक है। वह मानव हृदय की कालिमा को मिटा कर मधुर रस से पूर्ण करता है।

हास्य रस की उत्पत्ति—

साधारणत हँसी अनेक प्रकार के कारणों से उत्पन्न होती है। किसी हास्यास्पद वस्तु को देखने से या कभी अमराई में कूकती हुई कोयल की मधुर ध्वनि का किसी व्यक्ति द्वारा अनुकरण सुनकर हम हास्य का अनुभव करने लगते हैं। कभी किसी फैश-नैबिल बाबू को सड़क पर केले के छिलके से फिसल कर गिरते हुए देख कर हम हँसने लगते हैं तथा कभी किसी व्यक्ति द्वारा गुदगुदी करने से हममें हास्य की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार हास्य मानवहृदय रूपी सागर को अनेक प्रकार की परिस्थितियों में मथ कर उसमें भाव-तरंगें उत्पन्न करता रहता है।

मानव जीवन में हास्य का विशेष महत्त्व है। हँसना एक मानसिक क्रिया है और गुदगुदी द्वारा जो हास्य उत्पन्न होता है वह सामान्य हास्य कहलाता है। मानसिक हास्य में हमें बुद्धि से कार्य करना पड़ता है। वह शब्द, घटना, कार्यकलाप, शारीरिक गुण तथा मानसिक गुण और रहन-सहन से सम्बन्धित होता है। यह विशिष्ट हास्य है। हास्य

१—डाक्टर बरसाने लाल चतुर्वेदी—हिन्दी साहित्य में हास्य रस, पृ० ५२, ५३

रस की उत्पत्ति मे भी भिन्न-भिन्न दार्शनिकों ने तथा आचार्यों ने विभिन्न मत प्रस्तुत किए है।

प्राचीन भारतीय आचार्यो ने हास्य को राग से उत्पन्न माना है। फ्रायड आदि आधुनिक मनावैज्ञानिकों ने इसके मूल मे द्वेष की भावना को प्रधान समझा है। शारदा तनय ने रजोगुण के अभाव और सत्वगुण के आविर्भाव से ही हास्य की उत्पत्ति बताई है और प्रीति पर आधारित उसे एक चित्त-विकार के रूप मे प्रस्तुत किया है। 'स शृंगार इतीरित तस्मादेव रजोर्हीनात्यमत्वा हास्य सम्भव [१]।' अभिनवगुप्त ने सभी सामान्यत रसाभास से हास्य की उत्पत्ति मानी है। 'तेन करुणाद्याभासेष्वदि हास्यत्व सर्वेषु मन्तव्यम्[२]।' इस प्रकार करुण वीभत्स आदि रसो से भी विशेष परिस्थिति मे हास्य की सृष्टि हो सकती है। 'करुणोऽपि हास्य एवेति' कह कर आचार्य ने इसे भी मान्यता दी है। विकृति के साथ-साथ अनौचित्य को भी हास्योत्पादन का कारण बताया है। अनौचित्य अनेक प्रकार के हो सकते है। अशिष्टता तथा वैपरीत्य भी इसी सीमा के अन्तर्गत आते है।

स्पेन्सर महोदय ने हास्य की उत्पत्ति का सिद्धान्त असगति के निरीक्षण को बताया है। उनका कथन है कि हास्य का कारण हमारी चेतना के उत्कर्ष तथा अपकर्ष की ओर होने वाली गति से है। जब हम किसी मोटे अथवा नाटे व्यक्ति के साथ लम्बी अथवा दुबली स्त्री को देखते है तो खिलखिला पड़ते है। भारतीय नाटकों मे विदूषक अपनी शारीरिक क्रियाओ द्वारा साधारण जनता को हँसाता है। यह हास्य का परम्परा-गत सिद्धान्त है। अपकर्ष का सिद्धान्त पात्रों और शारीरिक क्रियाओ तथा घटनाओ मे देखा जाता है क्योंकि पात्र अपनी शारीरिक बनावट, शब्दावली, घटना आदि में अपकर्ष के माध्यम से हास्योत्पादन के लिए सहायक होता है। जब हमारी चेतना बडी वस्तु से हट कर छोटी वस्तु की ओर आकर्षित हाती है तब भी हास्य की उत्पत्ति होती है। उसे 'अधोमुख असगति' कहते है।

स्पेन्सर महोदय ने हास्य की उत्पत्ति चेतना की परिवर्तित गति को माना है। असगति यद्यपि सदैव हास्य की उत्पत्ति का कारण नही होती, तथापि जीवन में अनेक असगतियाँ ऐसी भी होती है जो हास्य को उत्पन्न न कर अन्य भावा का उत्पन्न करती हैं। इस भाँति यह स्पष्ट ज्ञात हाता है कि केवल असगति ही हास्योत्पादन मे सहायक नही होती। हास्य का सम्बन्ध सामाजिक भावना से भी है। जब हम किसी शिक्षित व्यक्ति को बेकार घूमता देखते हैं तो हमारे हृदय में करुणा की उत्पत्ति हाती है और

१—भाव प्रकाश—शारदातनय—पृ० ४७

२—अभिनव भारती अभिनवगुप्त—पृ० २९७

ठगने वाला दुकानदार जब कभी स्वय ठग लिया जाता है तो उसके चीख-चीख कर चिल्लाने पर हँसी आती है। इस प्रकार जब कोई मूर्ख स्वय वचित हो जाता है और उसकी मूर्खता ही उसकी प्रवचना का कारण होती है तो सब लोग हँसने लगते हैं।

बेमेलपन, विपरीतता, औचित्य से शून्य और परिनिष्ठित मार्ग से हटी हुई बात ही हास्य की उत्पत्ति का कारण होती है। पूतना जैसी भीमकाय स्त्री का बच्चो जैसा छोटा-सा पति होने की अनुपातहीन घटनाएँ ही हास्योत्पादन में सहायक होती है। ऐसी ही घटनाओ के लिये हैनरी बर्गसा ने अपनी पुस्तक लाफ्टर में बताया है कि 'जब मनुष्य अपनी नैसर्गिक स्वतत्रता छोड़ कर यत्र की तरह काम करने लगता है तब वह हास्य का विषय बन जाता है। यदि कोई मनुष्य रास्ता चलते-चलते फिसल पडे तो वह भी लोगो की हँसी का भाजन बन जाता है। मनुष्य तभी गिरता है जब वह अपनी स्वाभाविक स्वतत्रता को भूलकर जड़ मशीन की भाति आचरण करने लगता है। यह भी एक तरह की विषमता है जब मनुष्य अपने स्वभाव से विपरीत चलता है।[1] बर्गसा ने यह भी स्पष्ट रूप से कहा है कि, 'हास्य के आलम्बन को समाज सम्मत नही होना चाहिए साथ ही घटना शब्दावली तथा पात्रा में यान्त्रिक क्रियाओ का होना आवश्यक है।' बर्गसा का यह मत उचित जान पड़ता है। यदि हास्य के आलम्बन को समाजप्रियता मिल जाए तो वह अनेकों असगतियों के अतिरिक्त भी हमारे हास्योत्पादन मे सहायक नही होगा[2]।

१— "A man running along the streets, stumbles and falls, the passers by burst out laughing. They would not laugh at him, I imagine, could they suppose that the whim had suddenly seized him to sit down on the ground We laugh because his sitting down is unvoluntary...

Now, take the case of a person who attends to the petty occupations of his every day life with mathematical precision

The Laughable elements in both cases consists of a certain mechanical inelasticity, just, where one would expect to find the wide awake adaptability and the living pliableness of a human being."

"Laughter" by Henry Bergson. Page No. 9-10.

2. Society will therefore be suspicious of all inclusticty of character, of mind and even of body, because it is the possible sign of a slumbring activity as well as of an activity with

बर्गसा ने हास्य की उत्पत्ति का दूसरा कारण 'अचेतन' को माना है।[1] उदाहरण के लिए, एक चौबे जी को लीजिए जो कि सर्वदा डकारा ही करते है। और यजमान से भोजन की प्रार्थना करते हुये भी डकारते है। वे अपनी आदतों से बाध्य होकर इस प्रकार का आचरण करते है कि उनकी यह आदत ही हमारी हँसी का मूल कारण बन जाती है।

तीसरा प्रमुख कारण बर्गसा ने यांत्रिक क्रिया को बताया है। यह क्रिया शारीरिक तथा वाणीगत दोनो प्रकार की होती है। साधारणत खेल तमाशों मे विदूषक बहुत ही शीघ्र हँसा देता है। भारतीय नाटकों की यही एक विशेषता है कि उनमे विदूषक की शारीरिक कलाएँ दर्शकों को हँसाने में सहायक सिद्ध होती है। एक व्यक्ति जब किसी अन्य व्यक्ति का अनुकरण कर अथवा वैसी ही सूरत बनाकर उसी प्रकार का आचरण करने लगता है तो हँसी आना सभव है। इस प्रकार विवाह के समय जब दर्शनशास्त्र के तत्ववेत्ता साख्य और अद्वैतवाद पर भाषण देना आरम्भ करते है तो हँसी आती है। एक ही वातावरण मे रहने के कारण और एक ही कार्य करने से मशीन की भी जडता दूर होनी चाहिये। इसी कारण हास्योद्रेक के लिए नाटकों मे विदूषक को स्थान दिया गया है जो अपनी रहन सहन तथा वेषभूषा द्वारा जनता को हँसाता है।

शब्दों की प्रयोग-पटुता भी हास्य की उत्पत्ति में सहायक होती है। श्री सुदर्शन द्वारा रचित 'ऑनरेरी मजिस्ट्रेट' नाटक म गड्डूशाह व फन्दूशाह इसी प्रयोग-पटुता द्वारा हास्योत्पादन करते है। वे लाग कोई भी बात कहते हैं तो तुनक कर कहते है कि किसकी मजाल है 'जानते हो ? हम डिप्टी है।' ऐसे तकिया कलाम की बातें ही नाटकों में हास्य की उत्पत्ति के लिए रखी जाती है जिससे नाटकों मे नीरसता न आने पाए। विपरीतता के सिद्धान्त को भी इन्होंने महत्व दिया है। मानसिक यान्त्रिक क्रिया भी हँसाने का एक साधन है। श्री जयशंकर प्रसाद के 'स्कन्दगुप्त' में मुद्गल का बारम्बार 'काणाम' 'काणाम' आदि कहना हँसी का कारण है।

---

separatist tendencies that inclines to severe from the common centre round which society grevitates. In short, because it is the sign of an eccentricity.

"Laughter" by Henry Bergson, Page No 19.

1. To realise this more fully, it need only be noted that a comic chrracter is generally comic in proposition to his ignorance of himself. The comic person is unconscious.

"Laughter" By Henry Bergson Page. No. 16.

पात्रो की मानसिक असम्बद्धता भी हँसी का एक कारण है। यह असबद्धता कभी आन्तरिक सघर्ष तथा कभी बाह्य सघर्ष का रूप धारण करती है। अनेक प्रकार के पात्र रगमच पर उपस्थित होते है और वैषम्य द्वारा हास्य का उत्पादन करते है। कृपण सेठ के साथ खर्चीला नौकर और कुशल डाक्टर के साथ मूर्ख कम्पाउडर आदि का नाटको में दिखाकर ऐसी परिस्थितियो द्वारा विषमता उत्पन्न कर सामाजिको को हँसाया जाता है।

फायड महोदय के अनुसार हास्य की उत्पत्ति हमारे मस्तिष्क के उपचेतन भाग से होती है। उनका कथन है कि मनुष्य म कुछ कुठित कामवासना मस्तिष्क में एकत्रित होती रहती है जो कि सामाजिक तथा अन्य परिस्थितियो के कारण दबी रहती है। जब कोई ऐसा कार्य या परिस्थिति उपस्थित होती है तब यह दबी शक्ति हास्य के रूप में प्रकट होती दिखायी देती है। फ्रायड का यह सिद्धान्त हम कुछ उचित प्रतीत नही होता, क्योकि इस सिद्धान्त से कोई तत्व ही नही निकलता जो कि हास्य की उत्पत्ति से सम्बन्धित हो।

श्री जी० पी० श्रीवास्तव का कथन है कि हास्य का सम्बन्ध हृदय से कम तथा मस्तिष्क से अधिक है। हास्य की व्याख्या अरस्तू महोदय ने भी की है। उनका कथन है कि पतन या डिग्रेडेशन के कारण भी हास्य की उत्पत्ति होती है। उदाहरण के लिए जब कोई व्यक्ति साधारण मनुष्यतत्व की श्रेणी से गिर जाता है तो उसका यह पतन उसे हमारी दृष्टि मे उपहास का भाजन बना देता है, किन्तु अरस्तू की यह व्याख्या अत्यन्त प्राचीन है इसके पश्चात् अनेक विद्वानों ने अपने मत प्रकट किये है।

हैजलिट और कान्ट ने भी हास्य की उत्पत्ति के विषय मे बताया है। इनका प्रमुख सिद्धान्त यह है कि सच्चे हास्य की उत्पत्ति दो असमान पात्रा, भावो या विचारो के द्वन्द्व से होती है। इसी को असमानता या इकाग्रुयिटी कहते है। श्री जी० पी० श्रीवास्तव ने जिस सिद्धान्त को 'कठपुतली' कहा है उसी को बर्गसा ने ओटोमैटीजन कहा है। श्रीवास्तव जी ने एक अन्य सिद्धान्त 'आशा की प्रतिकूलता' बताया है। उनका कथन है कि प्राणी मात्र मे प्रतिकूलता उत्पन्न होने पर भी हास्य की उत्पत्ति होती है।

मानव जीवन के साथ इस वृत्ति का घनिष्ठ सबध है। मेकूडगल के अनुसार मानव जब दुखित भावो मे डूबने लगता है तब हास्य ही उन दुखित भावो से छुटकारा दिलाता है। जब मानसिक वृत्तियो का सकोचन होता है तो हास्य ही स्वस्थता प्रदान करता है। प्राणी का मस्तिष्क जब बहुत थक जाता है तब हँसी के द्वारा ही वह अपने मन को प्रफुल्लित करता है। मेकूडगल का कथन है कि प्राणी मात्र मे सहानुभूति की भावना निहित रहती है। अत जब कभी हम हास्यास्पद वस्तु को देखते है तो दमित सहानुभूति प्रकट हो जाती है और वह हमे दुखद स्थितियों से पृथक् करती है। प्रकृति ने

मानव को ऐसी शक्ति प्रदान की है कि वह निराशा के अन्धकारमय जीवन में हास्य रूपी ज्योति के सहारे अपनी दुखद घटनाओं को भूल जाए।

उपर्युक्त मनोवैज्ञानिकों के मतों पर विचार करते हुए यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि कोई भी सिद्धान्त अपने में पूर्ण नहीं है क्योंकि बर्गसा ने यह बताया है कि मानव में हास्य एक ऐसी प्रवृत्ति है जिसमें जीवन में गति उत्पन्न होती है। और जीवन मनोवैज्ञानिक विकास के साथ हास्य के क्षेत्र में भी विकसित होता है। मानव की इस विकासोन्मुख गति के साथ ही साथ हास्य का भी दृष्टिकोण बदल गया है। किसी युग में मनुष्य लूले, लगड़े, काने आदि मनुष्यों को देख कर हँस सकता था किन्तु आज के युग में वे हमारी करुणा के आलम्बन हैं, यही कारण है कि आज हास्य के आलम्बन वे नहीं है जो कई वर्षों पूर्व थे।

माध्यम की दृष्टि से यही कह सकते हैं कि हास्य की उत्पत्ति निम्नलिखित प्रमुख रूपों द्वारा होती है—

१—शब्दावली
२—रहन-सहन
३—घटना क्रिया कलाप
४—मानसिक गुण
५—शारीरिक गुण

इन रूपों को देखते हुए यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि भारतीय आचार्य का यह कथन 'विकृताकृति वाग्विशेष्यरात्मनोऽथ परस्या वा'[1] उपयुक्त लगता है क्योंकि इसमें शब्दावली, वेशभूषा और क्रियाकलाप सब सम्मिलित है। इसीलिए सैद्धान्तिक दृष्टि से भारतीय दृष्टिकोण अपने में पूर्ण है।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण से हास्य का अध्ययन—

आधुनिक युग वैज्ञानिक युग है क्योंकि विज्ञान शास्त्र ने इतनी उन्नति की है कि प्रत्येक वस्तु हमारे लिए सुलभ हो गयी है। विज्ञान द्वारा कौतूहलजनक आविष्कार तथा आश्चर्यजनक परिवर्तन के लिए मानव समाज कृतज्ञ रहेगा। विज्ञान ने मानव जीवन की प्रत्येक गुत्थियों को सुलझाया है जिसके कारण आज मानव ने भी इतनी उन्नति की है। वृक्ष से फल गिरना छोटी-सी बात है किन्तु न्यूटन महोदय को यही छोटी सी बात जिज्ञासा-पूर्ण लगी थी। इसी प्रकार रुदन, हास्य आदि समस्याएँ साधारण प्राणी मात्र के लिए

१—हास्य के सिद्धान्त तथा आधुनिक हिन्दी-साहित्य, स्व० नारायण दीक्षित तथा त्रिलोकी नारायण दीक्षित, पृ० ३

तो मामूली बातें है किन्तु एक वैज्ञानिक मस्तिष्क को उलझाने के लिए वे पर्याप्त समस्या-मूलक हैं।

वैज्ञानिकों ने हास्य को जीवन का एक आवश्यक अंग माना है। उनका कथन है कि मस्तिष्क की अस्थियों के भीतर मास का एक पिंड होता है जो समस्त शरीर की क्रियाओं का नियन्त्रण करता है। जैसे—सोचना, बोलना, हिलना, डुलना आदि समस्त क्रियाएँ मस्तिष्क पर ही निर्भर रहती है और सभी क्रियाओं के केन्द्र इसी मस्तिष्क मे ही स्थित रहते हैं। हमारा मस्तिष्क दो भागो मे विभक्त है, और इन दोनों भागों का कार्य करने के लिए विभिन्न केन्द्र हैं। वाणी के लिए वाणी केन्द्र (ब्रोकाज सेन्टर) है, दृष्टि के लिए दृष्टि केन्द्र (विजुवल सेन्टर) है, हास्य के लिए हास्य केन्द्र (सेन्टर ऑफ लाफिंग) तथा श्रवण के लिए श्रवण केन्द्र है। ये केन्द्र एक दूसरे के निकट होते है। इन केन्द्रों में से यदि किसी भी केन्द्र का ह्रास हो जाये, तो उस क्रिया का भी शरीर में व्याघात हो जाएगा।

हास्य क्रिया निम्नलिखित कारणों से उत्पन्न होती है—

१—दृष्टि द्वारा
२—वाणी द्वारा
३—श्रवण द्वारा
४—स्वाद तथा गन्ध द्वारा
५—चिन्तन द्वारा
६—नाडयन्त प्रतीति द्वारा

हमारे शरीर में सूचना वाहक तथा क्रिया प्रतिक्रिया कराने वाले विभागों का अलग शासन हैं। शरीर के भीतर अनेक नाड़ी-मण्डलो के जाल-से बिछे हुए है जिस कारण शरीर का कोई भी भाग बचा नही है। इन्ही जालो के द्वारा हमारा कार्य सुचारु रूप से चलता रहता है। जब हम चूल्हे के पास खाना बनाते रहते है और जब असावधानी के कारण हमारी उँगली जलने लगती है तो शीघ्र ही वह अग्नि से हट जाती है। इस शीघ्रता का प्रमुख कारण है मस्तिष्क का सहज ज्ञान एवं नाड़ियों की कार्यक्षमता आदि।

नाड़ी जाल भी हमारी हास्य उत्पत्ति का कारण है। प्रहसनीय दृश्य जब कभी हम देखते है तो यह नेत्रों में दृश्य बन कर दृष्टि नाड़ी द्वारा हमारे दृष्टि-केन्द्र तक पहुँचता है। तभी एक वास्तविक दृश्य उपस्थित होता है मन को उस दृश्य की प्रतीति होती है। जब दृश्य दृष्टि-केन्द्र से हास्य-केन्द्र तक पहुँचता है, तब समस्त कोष्ठाणु उत्तेजित हो उठते हैं। जिस प्रकार नाड़ियों पर इस परिवर्तित क्रिया का प्रभाव पड़ता है उसी प्रकार की भाव-भंगिमा बन जाती है। अतिहसित तथा उपहसित हास्य मे विशेष रूप से हमारा मुख खुलता है जिसका कारण मौखिक नाड़ियों की उत्तेजना मात्र है।

(शब्द)

'शब्द विशेष' के श्रवणमात्र से भी कभी हम हँसने लगते हैं। शब्द द्वारा भङ्कृत वायु टाइपेनिक मेम्ब्रेन्स को हिला-सा देती है, जिस कारण अन्त करण तथा मध्य कर्ण के विशेष अवयवों में भौतिक क्रिया उत्पन्न होती है, जिससे वर्ण नाडी (एकान्सिटिक नर्व) की एक शाखा श्रवण नाड़ी (Accoustic Nerve) द्वारा 'शब्द कम्पन' श्रवण केन्द्र म पहुँचता है तो शब्द सुनाई पड़ता है। यदि शब्द हास्योत्पादक हुआ तो यह सूचना नाडी-सूत्रों द्वारा हास्य-केन्द्र तक पहुँचाई जाती है जिससे उसके कोष्ठाणु उत्तेजित हो जाते हैं, इस उत्तेजना का जैसा भी प्रभाव मुख पर पड़ता है उसी प्रकार की भाव-भगिमा बन जाती है।

वाणी द्वारा भी हास्य की उत्पत्ति होती है। कभी-कभी मनुष्य स्वय बात करते करते हँसने लगता है क्योंकि बोलते समय वाणी केन्द्र उत्तेजित रहता है। जब हास्यास्पद बात हमारे समक्ष प्रकट हुई तो वाणी केन्द्र से नाडी-सूत्र और कार्य लिप्त नाडिया द्वारा हास्य-केन्द्र उत्तेजित कर दिया जाता है और उक्त परिवर्तन से हमारा हास्य बाहर प्रकट हो जाता है।

चिन्तन के क्षणो मे जब हमारे मस्तिष्क के अवयव क्रिया प्रतिक्रिया मे लगे रहते है, उस समय यदि कोई हास्योत्पादक बा। का स्मरण हो आया तो उस अवयव के तन्तु हास्य केन्द्र को जाग्रत करके हँसा देते हैं। वैज्ञानिकों का कथन है कि चिन्त्य हास्य में शरीर की अन्त स्रावी ग्रन्थियो के स्राव का भी हाथ रहता है।

सुगन्ध विशेष तथा स्वाद-विशेष से भी हमें कभी-कभी हँसी आती है। प्राय स्वाद लेते समय स्वाद-केन्द्र उत्तेजित हो जाता है। इस क्रिया मे अनेक भौतिक क्रियाएँ भी सम्मिलित रहती है। इन क्रियाओं द्वारा स्वाद केन्द्र उत्तेजित होकर नाडी सूत्रों से हास्य केन्द्र का जाग्रत करता है और परिवर्तित क्रिया द्वारा हास्योत्पादन हो जाता है। इस प्रकार गन्ध के द्वारा भी हास्य उत्पन्न हो जाता है।

प्राय कक्ष-प्रदेश आदि स्थानो को स्पर्श करने से भी हास्य उत्पन्न होता है। वैज्ञानिको का कथन है कि गुदगुदाने की क्रिया विशिष्ट-प्रतीत तथा साधारण-प्रतीत होती है। नाडिया द्वारा गुदगुदाने की क्रिया मस्तिष्क मे पहुँचती है और फिर नाडी सूत्रा के द्वारा हास्य का पूर्ववत् क्रिया द्वारा उन्मन्थन होता है तो हँसी आ जाती है।

हास्योचित वस्तु का तथा आत्मसयम का प्रभाव भी हास्य केन्द्र पर पड़ता है। जब हास्य केन्द्र के कोष्ठाणु अधिक मात्रा मे जाग्रत हो जाते है तब उनकी क्रिया प्रतिक्रिया झटके के साथ हास्य सम्बन्धी नाडिया पर पड़ती है तो हँसी उत्पन्न हो जाती है।

हास्य के द्वारा ही फुस्फुस के सूक्ष्मातिसूक्ष्म भाग का प्रसारण तथा आकुञ्चन होता है और स्वच्छ तथा नाडी वायु का भरण होता है। फुस्फुस के प्रत्येक भाग का

व्यायाम भी उचित रूप से होता है। हास्य द्वारा ही शरीर मे स्फूर्ति का सचार होता है और चित्त में प्रसन्नता होती है।

हास्य-रस के भेद—

प्राय आरम्भ से ही मानव जीवन में आत्माभिव्यक्ति की समस्या चली आ रही है और इस समस्या के साथ पर-बोध की समस्या भी जुडी हुई है। पर-बोध की समस्या के कारण मानव अभिव्यक्ति के साधन मात्र से सन्तुष्ट नही होता, फलत उसे अभिव्यजना के नए नए प्रकारो का उद्घाटन करना पड़ता है। लेखक अपनी बात को प्रभविष्णुता तथा मार्मिकता प्रदान करने के लिए विभिन्न प्रकार के सिद्धान्तो को खोज निकालता है। मूल भावना चाहे एक हो परन्तु दृष्टिकोण का अन्तर ही कलागत भेद का मूल कारण है। हास्य की भावना भी मूल रूपो मे एक है और दृष्टिकोण के अन्तर से ही हम उसे पहिचानते है।

मानव प्रकृति ही विचित्र है, सामान्य मनोभाव में ही हसी का सचार होना साधारण-सी बात है। कभी-कभी हर्ष का कोई भी सदर्भ न होते हुए भी मनुष्य हँसी से ओत-प्रोत हो जाता है परन्तु इस हँसी मे और अन्य प्रकार की हँसी मे भेद होता है। उदाहरण के लिए एक मूर्ख व्यक्ति की हँसी एक शिष्ट व्यक्ति की हँसी से भिन्न होती है। यदि हम एक नवयुवती की मधुर मुस्कान तथा एक दार्शनिक की हँसी की तुलना करें तो ज्ञात होगा कि युवती की मधुर मुस्कान कुछ सकोच मिश्रित रहती है और दार्शनिक की मुस्कान मनोभावना से पूर्ण रहती है। किसी नराधिप की विजय दर्प मिश्रित हँसी और शिशु की स्वाभाविक कोमल हँसी मे कितना महान् अन्तर है। इन सब प्रकारो की हँसी की प्रेरक शक्तियाँ भिन्न-भिन्न है।

हास्य रस का स्थायी भाव हास है। इस स्थायी भाव हास को लेकर हास्य के अनेक भेद किए गए है। ये भेद अधिकतर आश्रय पर आधारित है। जब व्यक्ति स्वय हँसता है तो उसका हास्य आत्मस्थ कहलाता है और जब दूसरो को हँसाता है तो वह हास्य परस्थ कहलाता है। नाट्यशास्त्र में भी इन भेदो की व्याख्या मिलती है। पडित राज जगन्नाथ ने इन भेदो को स्वीकार तो किया है परन्तु उनकी व्याख्या भिन्न प्रकार से की है।

'आत्मस्थः परसस्थश्चेत्यस्य भेद द्वय मत।
आत्मस्था द्रष्टुरुत्पन्नो विभावेक्षण मात्रत.॥
हसत मपरं दृष्ट्वा विभावश्चोप जायते।
योऽसौ हास्य रस्तज्ज्ञै परस्थ परिकीर्तित.॥

उत्तमाना मध्यमाना नीचानामप्य सौ भवेत् ।
त्र्यवस्थ कथितस्तस्य षडमेक्ष सन्ति चापरा ॥[1]

इनके अनुसार हास्य दो प्रकार का होता है—१—आत्मस्थ और २—परस्थ। *आत्मस्थ* हास्य सीधा विभावो से उत्पन्न होता है और *परस्थ* हास्य हँसते हुए व्यक्ति या व्यक्तियो को देखने से उत्पन्न होता है। इसके अतिरिक्त भाव के विकास क्रम अथवा उसके तारतम्य को भी आधार मानकर हास्य के छ भेद किए है। यह उत्तम, मध्यम और अधम—तीनो प्रकार से व्यक्तियो में उत्पन्न होता है।
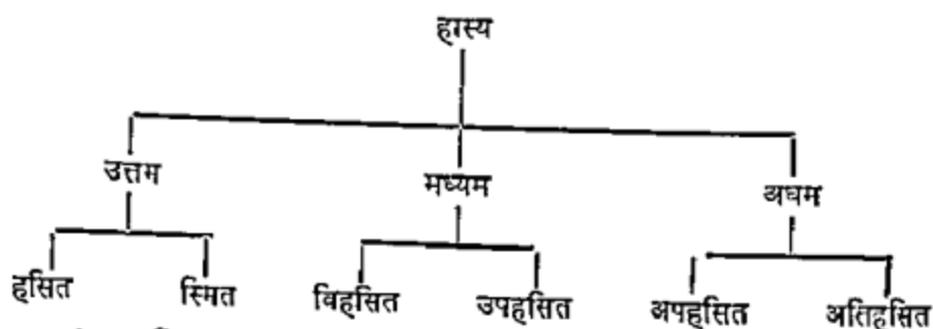
१—हसित हास्य—जिस हास्य मे कपोल, नेत्र व मुख विकसित हो जाए और कुछ दाँत दिखायी दें उसे हसित हास्य कहते है।

२—स्मित हास्य—जिसमे कपोल थोडे विकसित हो और नेत्र के प्रान्त अधिक प्रकाशित न हो, दाँत दिखाई न दें तथा जो मधुर हो उसे स्मित हास्य कहते है।

३—विहसित हास्य—जिस हँसने मे ध्वनि मधुर हो जिसकी शरीर के अन्य अवयवो में भी पहुँच हो और मुँह लाल हो जाये, आँखें थोडी बन्द हो और ध्वनि गभीर हो जाये उसे विहसित कहते है।

४—उपहसित हास्य—जिसमे टेढी दृष्टि से देखना पडे, कन्धे सिकुड जायँ तथा नाक फूल जाए तो वह उपहसित हास्य कहलाता है।

५—अपहसित हास्य—असमय पर हँसना और हँसते समय आँखों में आँसू आ जाएँ तथा कधे एव केश हिलने लगें उसे अपहसित हास्य कहते है।

६—अतिहसित हास्य—जिसमें बहुत कर्णकटु ध्वनि हो तथा नेत्र आँसू से भर जाएँ और पसलियो को हाथो से पकडना पडे, उसे अतिहसित हास्य कहते है।

उपर्युक्त भेदो को अनुभव के आधार पर ही कल्पित किया गया है। यह विभाजन मानसिक कम तथा शारीरिक अधिक माना गया है। अनुभाव मनोभावो के अनुरूप ही

१ हास्य के सिद्धान्त तथा आधुनिक हिन्दी साहित्य—स्व० नारायण दीक्षित तथा त्रिलोकी नारायण दीक्षित, पृ० ४९

प्रकट होते है और इनसे मानसिक दशा भी परिलक्षित होती है। कुछ सस्कृत विद्वानो ने इन छ भेदो मे आत्म और पर का अन्तर बताते हुए प्रथम हुए प्रथम तीन भेदो को आत्म समुत्य और अन्तिम तीन भेदो को पर समुत्य के अन्तर्गत बताया है, इसमें 'आत्म' और 'पर' का अन्तर करना अनुपयुक्त प्रतीत होता है। भानुदत्त (१४वी श० ई० मध्य) ने वीभत्स और करुण की भाँति हास्य के भी आत्मनिष्ठ तथा परनिष्ठ भेद किए हैं जो भरतमुनि के आत्मस्थ तथा परस्थ के समानान्तर है।

हिन्दी के आचार्यों में केशवदास जी (१७वी श० ई०) ने हास्य को १—मदहास, २—कलहास, ३—परिहास, ४—अतिहास, आदि चार स्वतन्त्र भेदा में विभक्त किया है। जिन पर नाट्य शास्त्रोक्त भेदो की गहरी छाप है। इन भेदो में अन्तर तो स्पष्ट ज्ञात होता है। केशव जी ने हास-विभाजन को उदाहरण सहित प्रस्तुत किया है, जैसे—

'विकसहि नयन कपोल कछु दसन-दसन के बास।
मदहास तासो कहे कोविद केसव दास॥'

जिसम दाँत, कपोल तथा नेत्र विकसित दिखाई पड़ें उसे केशवदास जी ने *मन्द-हास* कहा है।

'जहे सुनिये कल ध्वनि कछू कोमल विमल विलास।
केसव तन मन मोहिये बरनहु कवि 'कलहास'॥'

जिसम कोमल ध्वनि शरीर और मन को मोहित कर ले, उसे केशवदास ने *कलहास* नाम से सम्बोधित किया है।

'जहा हँसहि निरसक है, प्रगटहि सुख मुख बास
आधे-आधे बरन पर उपजि परत अतिहास।'

जिसमें थोडे-थोड़े समय में मुख से नि शक हँसी उत्पन्न होती है उसे केशवदास जी ने 'अतिहास' बताया है।

'जहँ परिजन सब हँसि उठे, तजि दम्पति की कानि
केसव कौनहुँ बुद्धिवल सो परिहास बखानि॥'

जिस हास्य मे नायिका की प्रीति परिजनो के परिहास का कारण वन जाय ऐसे *परिहास* का वर्णन बुद्धिबल भी नही कर सकता है, ऐसा केशवदास का कथन है।[१]

केशवदास जी के प्रथम तीन भेद तो भरतमुनि के भेदा के समानान्तर है तथा भाव के विकास-क्रम पर आधारित है, परन्तु अन्तिम भेद एक परिस्थिति-विशेष की अपेक्षा रखता है जिसमें नायक, नायिका की प्रीति परिजनों के परिहास का कारण ब

---

१ रसिक-प्रिया—केशवदास १४, ३, ८, १२, १५ पृ० ८२

जाए। रामसिंह, ('रसनिवास' के रचयिता) ने हास्य रस का स्थायी भाव 'हँसना' माना है। स्मित, हसित आदि भेद नाट्यशास्त्र में प्राप्त छः भेद नहीं हैं क्योंकि कुछ विद्वानों ने उसको स्थायी भाव का भेद माना है। आधुनिक विवेचक हरिऔध जी ने इसका खण्डन करते हुए लिखा है किसी-किसी ने तो स्थायी भाव 'हास' के छः भेद माने हैं, यह उपयुक्त नहीं है क्योंकि सभी स्थायी भाव वासना रूप है, अतएव अंत.करण में ही इनका स्थान है, शरीर में नहीं। स्मित, हसित, अपहसित, उपहसित, अतिहसित के जो नाम और लक्षण कहे गए हैं उनका निवास स्थान देह है। अत यह हास्य क्रिया के ही भेद हैं।'[१]

डा० रामकुमार वर्मा ने अपने 'रिमझिम' नामक हास्य एकाकी सग्रह की भूमिका में इन छः भेदों के साथ आत्मस्थ और परस्थ का गुणन करके बारह भेद मान लिए हैं। जिसका आधार भी हमें नाट्यशास्त्र में मिल जाता है। डा० रामकुमार वर्मा ने पाश्चात्य साहित्य मे उपलब्ध हास्य के पाँच मुख्य रूप मानते हुए उनकी परिभाषा इस प्रकार की है—

१—सैटायर (विकृति)—आक्रमण करने की दृष्टि से वस्तु स्थिति को विकृत कर उससे हास्य उत्पन्न करना।

कैरीकेचर (विद्रूप या अतिरंजना)—किसी भी ज्ञात वस्तु या परिस्थिति को अनुपात रहित बढ़ाकर या गिराकर हास्य उत्पन्न करना।

३—पैरोडी (परिहास)—उदात्त मनोभाव को अनुदात्त संदर्भ से जोड कर हास्य उत्पन्न करना।

४—आइरनी (व्यंग्य)—किसी वाक्य को कह कर उसका दूसरा ही अर्थ निकालना।

५—विट (वचनवैदग्ध)—शब्दों तथा विचारों का चमत्कारपूर्ण प्रयोग करना। फ्रायड ने इसे दो प्रकार का माना है—

१—सहज चमत्कार अथवा हार्मलेस विट

२—प्रवृत्ति चमत्कार अथवा टेन्डेन्सी विट

'सहज चमत्कार' में केवल विनोद की मात्रा रहती है और *प्रवृत्ति चमत्कार* में ऐन्द्रयिक प्रतिकारात्मक भावना ही है।

आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियों को ध्यान मे रखते हुए उन्होंने अपनी ओर से पाँच स्वतंत्र भेदों की स्थापना की जिनमे से प्रत्येक में दो-दो उपभेद करके कुल दस प्रकारों में हास्य रस के समस्त प्रचलित स्वरूपों को समाविष्ट करने का प्रयत्न किया है—

---

१. रस कलश—हरिऔध—पृ० २९२
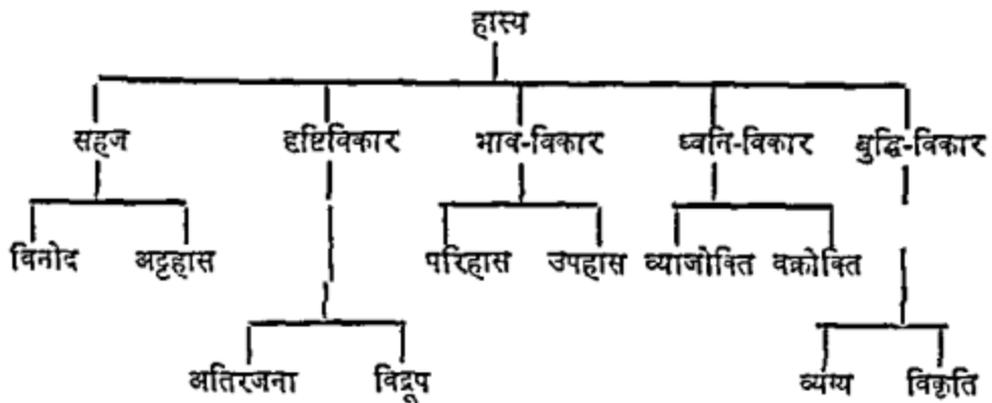
इस वर्गीकरण के सम्बन्ध में लेखक की यह धारणा है कि इस भाँति हास्य सहज विनोद से चल कर क्रमशः दृष्टि, भाव, ध्वनि और बुद्धि में नाना रूप ग्रहण करता हुआ विकृति में समाप्त होता है।[1]

इस विभाजन पर कुछ बातों को लेकर सरलता से आपत्ति की जा सकती है जैसे 'विनोद' और 'व्याजोक्ति', 'विट' के रूप माने गए हैं। उनको बुद्धि विकार से अलग मानना और सहज तथा ध्वनिविकार नामक वर्गों में रखना चिन्त्य है। वक्रोक्ति भी काव्य शास्त्र में दो प्रकार की मानी गयी है—१—श्लेष २—काकु वक्रोक्ति। ध्वनि-विकार के अन्तर्गत केवल काकु वक्रोक्ति ही जा सकती है, श्लेष वक्रोक्ति नही। श्लेष वक्रोक्ति पर आधारित हास्य को भी किसी न किसी वर्ग में समाविष्ट किया जाना चाहिए था। इसी प्रकार 'व्याजोक्ति' जो वाच्यार्थ का ही एक रूप है ध्वनिविकार के अन्तर्गत नही रखी जा सकती क्योंकि ध्वनि विकार उसका आधार नही है और न ही उसके लिए अनिवार्य है।

हमारे देश में नाटको के नियमो की रचना अभिनय को ही दृष्टि में रखकर की गई है। अभिनय का प्रमुख स्थान होने के कारण शारीरिक चेष्टाओ को ध्यान में रख कर हास्य में स्मित आदि भेदो की कल्पना की गई है। गुण या उद्देश्य को ध्यान में रख कर हास्य के भेद नही किए गए। इसका प्रमुख कारण प्राचीन आचार्यों का दृष्टिकोण है। भारतीय नाट्यशास्त्र में रस की प्रधानता है, और रस आनन्दस्वरूप माना गया है।

हास्य का पाश्चात्य विद्वानों की दृष्टि से विवेचन—

पाश्चात्य विद्वानो ने गुण, उद्देश्य तथा उपकरण के अनुसार ही हास्य रस का विभाजन किया है। पाश्चात्य साहित्य में हास्य रस का विवेचन अभिनय के आधार पर

---

१. रिमझिम—डॉ० रामकुमार वर्मा—पृ० १३

नही हुआ। यद्यपि जीवन मे हास्य का प्रमुख स्थान अवश्य रहा। उनके घात-प्रतिघातमय भौतिक जीवन में रोना और हँसना ही अधिक माना जाता है। इसीलिए रस का विवरण वे करुण और हास्य पर लिख कर ही प्राय. समाप्त कर दिया करते है[1]। विदेशी विद्वानो ने हास्य के पाँच प्रभेद किए हैं—

१—हास्य : ह्यूमर :
२—वाक्छल : विट :
३—वक्रोक्ति : आइरनी :
४—व्यग्य : सेटायर :
५—प्रहसन : फार्स :

हास्य : ह्यूमर

हास्य हृदयहीनता पर नही, किन्तु प्रहसनीय विषयो की दुर्बलताओ पर भी होता है। हास्य, घृणा से प्रेरित होकर नही होता। उस वस्तु के प्रति क्षोभ प्रकट के हेतु भी नही, वरन् उसकी गतिविधि को अबाध स्वाभाविक तथा अनिवार्य समझ कर सहानुभूति प्रदर्शित करने के लिए होता है। जैसे प्रसाद जी ने अजातशत्रु मे निम्नलिखित स्थल पर इसी प्रयोग का एक उदाहरण प्रस्तुत किया है :

'यह सब ग्रहो की गडबड़ी है। ये एक बार ही इतना काण्ड उपस्थित कर देते है। कहाँ साधारण बाला, हो गयी थी राजरानी। मैं देख आया वही मागन्धी ही तो है। अब आम लेकर बेचा करती है और लड़को के ढेले खाया करती है। ब्रह्मा भी भोजन करने के पहिले मेरी तरह भाँग पी लेते होगे तभी तो ऐसा उलट-फेर···[2]।'

'बसन्तक को इसी उलट फेर पर हँसी आता है। इसी हँसी को वह ब्रह्म को भंगेडी बताकर व्यक्त करता है। बसन्तक की यह हँसी न तो घृणा प्रदर्शन के लिए है और न ससार में ग्रहो की गडबडी पर क्रोध प्रकट करने लिए है। संसार की गति पर यह हँसी मागन्धी की वर्तमान दशा तथा अवस्था के प्रति बसन्तक की सहानुभूति की सूचना देती है। यह अनिवार्य नही है कि हास्य का प्रहसनीय विषय दुर्बलतापूर्ण हो अथवा हमारी सहानुभूति इस प्रकार के हास्य से युक्त ही हो जिस प्रकार एक दार्शनिक की दृष्टि ससार की गति-निरीक्षण में तत्पर रहती है उसी प्रकार हास्य के आश्रय की दृष्टि मानव के चरित्र की असंगति तथा उसकी दुर्बलताओ आदि के निरीक्षण में सदा तत्पर रहती है। एक दार्शनिक की हँसी में सहानुभूति की मात्रा रहती है क्षोभ, घृणा आदि

१—हिन्दी साहित्य में हास्य रस—डा० नगेन्द्र, नवम्बर ११३७ : लेख : पृ० ३१
२—अजातशत्रु—जयशंकर प्रसाद—पृ० १६७

नही। जिस भाँति संसार की दुर्बलताएँ साधारण व्यक्तियों को दृष्टि मे नही आती, उन्हें दार्शनिक ही देखता है किन्तु वह पागल-सा प्रतीत होता है और मनुष्यो द्वारा उपहासात्मक होकर झक्की कहलाता है। व्यक्तिगत वृत्तियां प्रधान होने के कारण हास्य को 'सार्थक मे निरर्थक' कहा गया है क्योंकि जो बात एक व्यक्ति को संगत जान पड़ती है वह दूसरे को असंगत प्रतीत होती है। अत: हास्य को सब नही समझ सकते और न ही इसकी प्रशंसा कर सकते हैं। इस विशिष्टता एवं व्यक्तिगत प्रधानता के कारण ही हास्य को 'सार्थक मे निरर्थक' कहा गया है।

प्रसिद्ध तत्ववेत्ता सिली के अनुसार यह एक मनोविकार होते हुए भी बौद्धिकता का पर्याप्त अंश लिए हुए है।[1] अत. इसका निर्माण, चिन्तन, सहानुभूति, सयम तथा करुणा आदि इन चारों गुणो द्वारा हुआ है। ए० निकाल ने अपनी पुस्तक 'एन इन्ट्रोडक्शन टू ड्रमेटिक थ्योरी' मे स्मित की व्याख्या करते हुए लिखा है—'स्मित के लिए समझदारी का होना आवश्यक है जब कि हँसना बेसमझदारी का भी हो सकता है। इसके लिए विशेष प्रकार के चिन्तन की भी आवश्यकता है जो कि रूखा चिन्तन ही न हो वरन् मनुष्यत्व पर सहानुभूति विचार के उपरान्त उत्पन्न हुआ हो।'

हास्य की आवश्यकता के विषय में जार्ज मेरीडिथ ने लिखा है कि हास्यास्पद के प्रति उसकी हँसी उड़ाने तथा उससे प्रेम करने मे सन्तुलन नही खोना चाहिए। जिसकी हँसी उड़ाई जाए, उसे प्रेम भी किया जाए। इन्होंने यह भी कहा है कि आलम्बन के प्रति करुणा के भाव भी आवश्यक है।

भारतीय शास्त्रकारो ने रस-मैत्री के प्रकरण की व्याख्या करते हुये करुण रस को हास्य रस का शत्रु बतलाया है जब कि जार्ज मेरीडिथ हास्य की भावना में करुण रस की झलक पाते हैं। साहित्यदर्पणकार का कथन है, जैसे—

'आद्य: करुणा वीभत्सरौद्रौ वीर भयानकै।
स्यामेत करुणेऽप्यपि हास्यो विरोधभावा॥'[2]

इनके अनुसार हास्य रस का प्रयोग आधुनिक दृष्टि से निर्जीव तथा असफल होगा। इस सन्दर्भ में जार्ज मेरीडिथ ने लिखा है—

'हँसने के लिए प्रेम को कम करना पडता हो ऐसा मनोविज्ञान कभी नही कहता। हास्य-मनोवृत्ति सामाजिकता तथा प्रेम भावना को लिये हुए है। फिर हँसने पर प्रेम-पात्र में प्रेम कम हो और वही हास्य शक्ति का मापक हो, यह कदापि सगत नही लगता। शरीर विज्ञान तो हास्य को बढ़ती हुई प्रेम की शक्ति का ही परिवर्तित रूप मानता है।[3]

१—हिन्दी साहित्य में हास्यरस—डा० बरसाने लाल चतुर्वेदी—पृ० ४५
२—साहित्य दर्पण विश्वनाथ—पृ० १५२
३—एन एसे आन कामेडी बाई मेरीडिथ—पेज० नं० ८४

दूसरे स्थान पर जार्ज मेरीडिथ कहते है कि 'आप अपने हास्य की योग्यता का अनुमान इससे कर सकते है कि आप अपने प्रेम-पात्रो पर बिना अपना प्रेम कम किए हँस सकें।'

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने करुण तथा हास्य रस के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करते हुये लिखा है—जो बात हमारे यहाँ रस व्याख्या के भीतर स्वतः सिद्ध है वही योरप मे इधर आकर एक आधुनिक सिद्धान्त के रूप मे यो कही गयी है कि उत्कृष्ट हास वही है जिसमें आलम्बन के प्रति एक प्रकार का प्रेम-भाव उत्पन्न हो अर्थात् वह प्रिय लगे। यहाँ तक तो बात बहुत ठीक रही है पर योरप में नूतन प्रवर्तक बनने के लिए उत्सुक रहने वाले चुप कब रह सकते है ? वे दो कदम आगे बढकर आधुनिक' मनुष्यता-वाद' या 'भूतदयावाद' का स्वर ऊँचा करते हुये बोले—'उत्कृष्ट हास वह है जिसमें आत्मबल के प्रति दया एव करुणा उत्पन्न हो।' कहने की आवश्यकता नही कि यह होली मुहर्रम सर्वथा अस्वाभाविक, अवैज्ञानिक और रसविरुद्ध है। दया या करुणा दुखात्मक भाव है, हास आनन्दात्मक। दोनो की एक साथ स्थिति असाध्य ही है। यदि हास के साथ एक ही आश्रय मे किसी और भाव का सामंजस्य हो सकता है तो प्रेम या भक्ति का ही।[1] इस पद्धति के अनुसार करुण तथा हास्य रस में विरोध है परन्तु पाश्चात्य विद्वानो की यह धारणा है कि हास्य रस के साथ करुण रस का होना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि हमारे जीवन में दोनो रसो का विशेष महत्व है।

मि० सिली का कथन है कि 'हँसी तथा रुदन पास ही पास हैं। एक से दूसरे पर जाना बहुत ही सरल है। जब वृत्ति कार्य मे पूर्णरीति से संलग्न हो तो वह शीघ्रता से दूसरे कार्य पर सरलतापूर्वक जा सकती है। मानव को करुणावस्था के बीच में यदि हास्य का सहारा मिल जाता है तो वह थकान का अनुभव नही कर पाता।

प्रसिद्ध नाटककार ड्राइडन ने अपना मत प्रकट करते हुए लिखा है कि निरन्तर की गम्भीरता मस्तिष्क को आक्रान्त किए रहती है। हमें अपने मस्तिष्क को कभी-कभी उसी तरह स्वस्थ तथा सजीव बना लेना चाहिये जिस प्रकार हम अधिक सुविधापूर्वक चलने के लिए मार्ग मे ठहरते है। करुणा से मिश्रित हास्योत्पादक स्थल हमारे ऊपर उसी प्रकार प्रभाव डालता है जिस प्रकार अंको के बीच संगीत का विधान और इसमें हमें लम्बी कथावस्तु तथा कथोपकथन मे, चाहे वह अत्यन्त विशिष्ट हो और उसकी भाषा अत्यन्त सजीव हो, विश्रान्ति सी मिलती है। इसलिए हमें इस बात से सहमत होने के लिए अधिक युक्तियुक्त तर्कों की आवश्यकता है कि करुण तथा हास्य का सम्मिश्रण एक

१—हिन्दी साहित्य का इतिहास आचार्य रामचन्द्र शुक्ल-संशोधित एवं परिवर्तित, संस्करण, पृ० ४७५

दूसरे को नष्ट कर देता है। इस बीच में हम इसे अपनी जाति के सम्मान का कारण समझते है कि हम लोगों ने अभिनय के लिए एक ऐसी शैली का सृजन किया है जो न प्राचीनो को मालूम थी और न अर्वाचीनो को; और जो करुण तथा हास्य का सम्मिश्रण है।''[1]

शुक्ल जी के विचार चिन्त्य हैं क्योंकि आलम्बन इतना नीरस तथा निर्लज्ज नही होता कि प्रेम के द्वारा उस पर कोई प्रभाव ही न पड़े। उसके प्रति घृणा को जाग्रत करना आवश्यक नही है। मानव जीवन में सदैव हँसना, रोना तो लगा ही रहता है। कभी किसी क्षण में वह हँसता हुआ दिखता तो कभी रोता हुआ मिलता है, तो क्या साहित्य मे इन दोनो रसो का विरोध रहे? गम्भीर नाटको मे तो हास्य रस का होना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि पाठको को वह आनन्द तथा रस नही मिल पाता जो उन्हे हास्ययुक्त नाटकों मे मिलना है। पाश्चात्य साहित्य मे तो हमे गुण और प्रभाव की दृष्टि से ही वर्गीकरण मिलता है किन्तु भारतीय पद्धति मे तो हँसने की क्रिया के भेद और उपभेद मिलते हैं समाज में जब तक आलम्बन के प्रति का करुणा के भाव जाग्रत न हो तब तक लक्ष्य-प्राप्ति असंभव हो जाती है।

व्यंग्य (सैटायर)

हास्य में सहानुभूति होती है क्योंकि हास्य का हृदय से घनिष्ठ संबंध है। जिस *हास्य में सहानुभूति की मात्रा नही होती और घृणा आदि सहानुभूति विरोधी भावो की* छाया पड़ती है उसे व्यंग्य कहते है। व्यग्य विरोध अथवा घृणा प्रदर्शित करने का एक अस्त्र है। व्यंग्य में हृदय की सहानुभूति का लेशमात्र भी स्पर्श न होने के कारण हास्य का उत्पन्न होना असंभव-सा ही है। इस हँसी का स्थान क्रूरता मे ही होता है, हँसने में नही। फिर भी इसमें हास्य का समावेश होने के कारण उसे हास्य के भेदो के अन्तर्गत रखा गया है। व्यंग्य किसी संस्था, समाज, व्यक्ति अथवा समूह की दुर्बलताओ तथा अवगुणो का उद्घाटन कर उस पर आक्षेप करता है। हास्य का ध्येय होता है, केवल हंसना मात्र, किन्तु व्यग्य का लक्ष्य किसी वस्तु विशेप का विरोध करना भी है।

ए. निकाल का कथन है कि 'व्यग्य में भौतिकता के प्रति आक्रोश होता है। इसमे दया, करुणा, उदारता के लिए गुंजाइश नही होती। मनुष्य की शारीरिक असम्बद्धता एवं सामाजिक असम्बद्धता पर यह निर्दयता से प्रहार करता है। व्यंग्य की भाषा में गुदगुदी कम विकटता अधिक रहती है।'

१—हास्य के सिद्धान्त तथा आधुनिक हिन्दी—साहित्य-स्व० नारायण दीक्षित तथा त्रिलोकी नारायण दीक्षित—पृ० ७८

प्रा० जगदीश पाण्डे ने अपनी पुस्तक 'हास्य के सिद्धान्त' म व्यग्य के विषय में इस प्रकार कहा है कि 'व्यग्य के लिए यथार्थ ही यथेष्ट विषय है। पर जहाँ यथार्थ के फेर में पढ कर लोग रक्तालाप व्योरों को जुटाने म ही ऐतिहासिक साधुता का पाण्डित्य प्रदर्शन करने म ही रह जाते है वहाँ आलम्बना का हम परिचित पाकर निंद्य तो समझ लेते है पर हँस नही पाते[1]।'

मैरीडिथ का कथन है कि 'यदि आप हास्यास्पद का इतना मजाक उडाते हैं कि उसमे आपकी दयालुता समाप्त हो जाए ता आपका हास्य व्यग्य की कोटि मे आ जाएगा। 'मैरीडिथ ने व्यग्यकार की परिभाषा करते हुए लिखा है कि 'व्यग्यकार एक सामाजिक ठेकेदार होता है, बहुधा यह एक सामाजिक सफाई करने वाला है जिसका काम गन्दगी के ढेर को साफ करना होता है।

वस्तुत व्यग्य रुढियुक्त परम्पराओ तथा सामाजिक कुरीतियो एव व्यवहारा को हेय अथवा हास्यास्पद रूप में रखने की ही चेष्टा करता है। हिन्दी काव्य साहित्य में व्यग्य का प्रयाग अधिक किया गया है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी का व्यग्य सामाजिक तथा धार्मिक है। 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति', 'अधेर नगरी' इन दोनो नाटका में सामाजिक तथा राजनैतिक रुढ़िया पर व्यग्य किया गया है।

व्यग्य म जिस प्रकार घृणा का स्थान होता है उसी प्रकार हास्य की छाया भी हो सकती है। किन्तु प्रसाद जी के व्यग्य म अनेक स्थानो पर तो हास्योत्पादन होता ही नही है। कभी कभी तो उनका व्यग्य अत्यन्त चुटीला तथा मार्मिक होता है और कभी पूर्णतया असफल भी हो जाता है। उनके 'विशाख' नामक नाटक में महापिंगल का व्यग्य बहुत ही चुटीला तथा भाव-गर्भित है। उसी प्रकार श्री जी० पी० श्रीवास्तव ने भी 'उलट फेर' नाटक में खूब व्यग्य के उदाहरण प्रस्तुत किये है। उदाहरणार्थ—

चिरागअली—लाओ इस बात पर शुकराना।

रामदेव—अब हजूर फाँसी की सजा होइगे, अउर ऊपर से सुकराना देई ?

चिरागअली—हाँ हाँ, फासी की सजा हुई हमारी बदौलत इसको ग़नीमत जानो। अगर इतनी कोशिश न करते तो न जाने क्या हो जाता। समझे ? लाओ शुकराना।

उपर्युक्त उद्धरण से यह स्पष्ट होता है कि व्यग्य को लेकर अनेक प्रकार की मूर्खताओ का उद्‌घाटन भी होता है। व्यग्य हमें दो भेदो म मिलता है—एक व्यग्य तो यह है कि जो मीठी चुटकियो के रूप में नाटका म मिलता है और दूसरा जो विषाक्त बाण की भाँति हृदयभेदी होता है। हमारे साहित्य में व्यग्य का प्रयोग बहुधा सोद्देश्य किया

१—हास्य के सिद्धान्त—प्रो० जगदीश पाण्डे—पृ० १०२

गया है। व्यंग्य का मुख्य उद्देश्य है सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक। साधारण शब्दों में जिन्हें हम कुरीतियां कहते है, उनका भी सुधार करना है।

वाग्वैदग्ध : विट :

वाग्वैदग्ध भी हास्य का प्रमुख भेद है। जिस प्रकार अलंकार का प्रयोग करने से काव्य की सुन्दरता बढ़ जाती है उसी प्रकार वैदग्ध के प्रयोग से हास्य की चमत्कारिता बढ़ जाती है। वैदग्ध शब्द, विकार की अभिव्यक्ति की एक विशिष्ट कलापूर्ण तथा मन को आकृष्ट करने वाली एवं आनन्द प्रदान करने की एक प्रणाली है। वाग्वैदिग्धता कभी स्वतन्त्र रूप में नही रहती है क्योंकि कभी तो यह विचारों पर अवलम्बित रहती है और कभी शब्दों पर आश्रित रहती है।

अरस्तू के अनुसार जिन 'चटकीले शब्द प्रबन्धो' की लोग बहुत प्रशंसा करते है, वे अनुभवी और चतुर मनुष्यों के रचे हुए होते है और मुख्यतः साधर्म्य, वैधर्म्य, विशद स्वभाव वर्णन आदि के कारण उत्पन्न होते हैं।[1]

एडिसन ने 'सिक्स पेपर्स आन विट' नामक लेखमाला में वाग्वैदग्ध (विट) तथा हास्य (ह्यूमर) का अलग से वर्णन नही किया तथापि इनका मत है कि वाग्वैदग्ध (विट) और हास्य (ह्यमर) दोनों एक नही है, एक दूसरे से भिन्न है। इन दोनो में परस्पर कुछ विशिष्ट सम्बन्ध अवश्य है। ये प्रायः एक दूसरे पर अवलम्वित रहते है। इनका कथन है कि 'परिहास' या विनोद के श्रेष्ठ घराने का मूल पुरुष 'सत्य' है। सत्य को शोभनार्थ नामक लड़का हुआ। 'उक्तिचमत्कार' ने अपने वंश की 'आनन्दी' नामक लड़की से विवाह किया। इस दम्पति से 'विनोद' नामक पुत्र-रत्न उत्पन्न हुआ। 'विनोद' का जन्म भिन्न-भिन्न स्वभावों के माता-पिता से हुआ था। इसलिए उसका स्वभाव भी विलक्षण हो गया है। कभी वह देखने में गम्भीर, कभी चंचल और कभी विलासी जान पड़ता है। लेकिन उसमें विशेषतः उसकी माता के स्वभाव का ही अधिक अंश आया है, इसलिए वह स्वयं चाहे जिस वृत्ति में रहे दूसरो को वह बिना हँसाए नही रहता[2]।'

इस छोटे से रूपक का आशय यह है कि वाग्वैदग्ध (विट) में सत्य और प्रौढ़ अर्थ होना चाहिए। एडिसन ने वाग्वैदग्ध (विट) की व्याख्या करते हुए लिखा है कि 'पदार्थों के जिस सम्बन्ध-दर्शन में पाठकों या श्रोताओं में प्रसन्नता और आश्चर्य या चमत्कृति उत्पन्न हो और उसमे भी विशेषतः चमत्कृति जान पड़े, उसे वाग्वैदग्ध (विट) कहते है।[3]

१—हिन्दी साहित्य में हास्यरस—डा० बरसानेलाल चतुर्वेदी—पृ० ३६

२—हास्य-रस रूपान्तरक—रामचन्द्र वर्मा—दूसरा संस्करण, पृ० ८७

३—हास्य रस रूपान्तरक—रामचन्द्र वर्मा—दूसरा संस्करण, पृ० ८

हास्यकारो ने वाग्वैदग्ध को दो भागा में विभक्त किया है—

(१) चमत्कार वैदग्ध

(२) रसात्मक वैदग्ध

चमत्कार वैदग्ध में शब्द या वाक्य के प्रयोग की पटुता या विचारा का आरोप है। प्रयोगपटुता जब जीवन म कोई ऐसी परिस्थिति उपस्थित करती है जिसमें भाव सचारण की क्षमता हो तो उक्ति का गुण रसात्मक हो जाता है। 'वाग्वैदग्ध की एक विशिष्टता उसकी सामाजिकता है। हास तथा हास्य के विपरीत इसमें तीन पात्रो की आवश्यकता होती है।

(१) जिसके द्वारा प्रयोग किया जाय।

(२) जिसके लिए प्रयोग हो।

(३) जिसके लिए सुना जाए।'[1]

यह हास्य का अत्यन्त कलापूर्ण तथा उत्कृष्ट अग है। वैदग्ध का प्रयोग शैली तथा भाषा पर पूर्ण अधिकार की अपेक्षा रखता है।

मुख्यत 'शब्द-वैदग्ध' यमक के आश्रित रहता है। पहले इसमे शब्द अपने निश्चित अर्थ को सूचित करता है और दूसरी बार वह उस शब्द को विभक्तकर नया अर्थ प्रकट करता है। दोना भिन्न अर्थ-वैदग्ध तथा हास्य के कारण ही होते हैं।

वैदग्ध का प्रयोग अर्थ और शब्द दोनो में होता है। अत अलकार की भाँति उसमे भी अर्थ वैदग्ध और शब्द वैदग्ध के दो भेद किए जा सकते हैं। भारतीय साहित्य मे नाट्य की नर्मन वृत्ति के अन्तर्गत वैदग्ध की सत्ता पर भी प्रकाश डाला गया है।

वक्रोक्ति (आइरनी)—

वक्रोक्ति से यहाँ हमारा तात्पर्य कुन्तल की वक्रोक्ता उक्ति से मिलता है। जब हम वाक्य एक अर्थ में कहे और उसका अर्थ दूसरा निकले, तो उसे वक्रोक्ति कहते हैं। यह बहुत तीव्र होती है।

मेरीडिथ ने अपनी पुस्तक 'दी आइडिया आफ कामेडी' में वक्रोक्ति की परिभाषा इस प्रकार बताई है—'यदि हास्यास्पद पर सीधा व्यग्यबाण न छोडे वरन् उसे ऐसा उमेठ दें तथा कराह निकलवा दें और प्यार के आवरण मे उसे डक मारें जिससे वह अन्तर्द्वन्द्व में पड जाए कि वास्तव मे किसी ने उस पर प्रहार किया है अथवा नहीं, तब आप वक्रोक्ति का प्रयोग कर रहे है। मेरीडिथ ने इसको और भी स्पष्ट रूप से बताया है। उनका कथन है कि वक्रोक्तिकार जो कुछ लिखेगा अपनी मानसिक प्रवृत्ति से लिखेगा।

१—हास्य के सिद्धान्त तथा आधुनिक हिन्दी साहित्य—श्री त्रि० ना० दीक्षित, पृ० ७२

वक्रोक्ति व्यंग्य का ह्रास है, यह 'स्विफ्ट' (Swift) की भाँति कठोरतम भी हो सकता है जिसमें साथ में नैतिक लक्ष्य भी हो और 'गिबन' (Gibbon) की भाँति गम्भीर भी हो सकता है जो द्वेषपूर्ण हो। एक वक्रोक्ति वह है जो ऊपर से स्पष्ट दिखलाई पड़ती है और दूसरी वह है जिसके उद्देश्य में तिरस्कार की भावना होती है। जो व्यंग्यात्मक उद्देश्य में असफल हो गई है तथा जिसमें भ्रम के खजाने है।'

ए० निकाल ने इसकी परिभाषा इस प्रकार कही है कि 'जिस वस्तु में हम विश्वास नही करते उसमें विश्वास दिखाते हैं तथा हास्य में जिस वस्तु मे हम वास्तव में विश्वास करते है उसमें अविश्वास दिखाते हैं। वक्रोक्ति का कार्य है फूल मे कीट बन कर पहुँचना।

बर्गसां ने अपनी पुस्तक 'लाफ्टर' में आइरनी की परिभाषा इस प्रकार कही है कि 'कभी कभी हम यह कहते है कि यह होना चाहिये और दिखाते भी है कि जो कुछ किया जा रहा है उसमे हमारा विश्वास भी है, वहाँ वक्रोक्ति होती है। वक्रोक्ति में हमको ऊपर से ऊँचे उद्देश्य की भलाई दिखाने का बहाना करना पड़ता है, इस प्रकार वक्रोक्ति अन्दर से इतनी तीव्र हो सकती है कि हमें मालूम पड़े कि वह शक्तिशाली वक्तव्य है।'

प्रो० जगदीश पाण्डे ने 'हास्य के सिद्धान्त' में वक्रोक्ति के भेद इस प्रकार बतलाए है :—

(१) आधार के तिरोभाव
(२) विरोधाभास
(३) व्याजनिन्दा
(४) व्याजस्तुति
(५) असंगति
(६) द्विविधा
(७) प्रत्यावर्तन
(८) ध्रुव विपर्यय व्यंग्य
(९) पृष्ठाघात की वक्रोक्ति
(१०) अभिन्न हेतुक विभिन्नता, तुक विभिन्नता
(११) निंद्य की साधु स्तुति।

वक्रोक्तिकार भी धनुष की भाति झूठी नम्रता में झुककर तीर की तरह चोट करता है। इसमे स्तुति तथा निन्दा दोनो झूठी होती है। स्तुति, निन्दा तथा वक्रोक्ति में भेद ध्वनि का है, काकु का है। ध्वनि में ही अर्थ गूढ़ रहता है। वक्रोक्ति तथा सच्ची स्तुति या निन्दा में वही साम्य है जो कोयल और कौवे में है, वक्रोक्ति का सच मानना

विश्वासघात का आखेट बनना है ।[1]

भारतेन्दु जी के नाटकों में हमें आइरनी के अनेक उदाहरण मिलते हैं जैसे 'अन्धेर नगरी' का एक उदाहरण देखिए : 'कुजड़िन—जैसे काजी वैसे पाजी। रैयत राजी टके सेर भाजी। ले हिन्दुस्तान का मेवा फूट और वैर।'[2]

'विषस्य विषमौषधम्' में एक वक्रोक्ति का उदाहरण देखिए :

'साढ़े सत्रह सौ के सन् में जब आरकाट में क्लाइव किले में बन्द था तो हिन्दुस्तानियों ने कहा कि रसद घट गई सिर्फ चावल है सो गोरे खाय हम लोग माड पीकर रहेंगे।'[3]

वक्रोक्ति को मधुमक्खी कह सकते है क्योंकि इसका प्रभाव मधुमक्खी के डंक-सा ही तीव्र होता है। इसी कारण वक्रोक्ति की उपमा मधुमक्खी से की है।

परिहास : पैरोडी :

पैरोडी अंग्रेजी का शब्द है। इसे हिन्दी में परिहास कहते हैं। यह एक हास्यपूर्ण कला है। परिहास हमारे जीवन की यातना को उच्छ्वास में परिणत कर उसे मुस्कान से अनुरंजित कर देती है, जीवन-सागर को पार करने के लिए हमारे हाथ में पतवार देती है, तथा मानवता को जाग्रत कर जीवन से पूर्ण आनन्द लेने का आग्रह करती है। जिस प्रकार अस्त होता हुआ सूर्य हमें दिवस के अवसान की ओर संकेत करता है किन्तु साथ ही चन्द्रिका की फूटती हुई किरणों का भी बोध कराता है, इसी प्रकार परिहास मेघाच्छन्न आकाश के तले चन्द्रिका की चादनी का बोध कर हमारे जीवन को हर्ष तथा उत्साह प्रदान करता है।

डा० रामकुमार वर्मा ने अपनी पुस्तक 'रिमझिम' की भूमिका में पैरोडी की परिभाषा इस प्रकार की है—'परिहास' (पैरोडी) उदात्त मनोभाव को अनुदात्त संदर्भ से जोड़ कर हास्य को उत्पन्न करना।[4]

आर्थर सिम्स नामक एक विद्वान ने लिखा है कि मूल के प्रति प्रेम तथा आदर में कमी नहीं आनी चाहिए। प्रशंसा तथा हास्य पैरोडी की जान है।[5]

कुछ विद्वानों का कथन है कि यह पद्य तथा गद्य दोनों की हो सकती है। वास्तव में यह पद्यांश भाग में ही अधिक सफल दिखाई पड़ती है। सर आर्थर क्युलियर क्वेट ने

१—हास्य के सिद्धान्त तथा मानस में हास्य—प्रो० जगदीश पाण्डे, पृ० ६२
२—भारतेन्दु नाटिकावली—पृ० ६९०
३—विषस्य विषमौषधम्–भारतेन्दु हरिश्चन्द्र–पृ० ४५
४—डा० रामकुमार वर्मा–'रिमझिम'–चतुर्थ संस्करण १९६४, पृ० १२
५—हिन्दी साहित्य में हास्य रस—डा० बरसाने लाल चतुर्वेदी–पृ० ४६

एक स्थान में कहा है 'पैरोडी का सम्बन्ध कविता और विशेषत उच्च कविता से है।'

शाब्दिक पैरोडी अत्यन्त सरल होती है जो शब्दो या पंक्तियो के परिवर्तन द्वारा की जाती है जिससे मूल रूप उसका नष्ट न हो और भिन्न अर्थ प्रकट हो। शैली की पैरोडी उच्च प्रकार की होती है। इस प्रकार से तीन प्रकार की पैरोडी हो सकती है—

१—आकार प्रकार सम्बन्धी पैरोडी

२—शाब्दिक पैरोडी

३—भावना सम्बन्धी पैरोडी

पैरोडी द्वारा कवियो की तुकबन्दी की खिल्ली उड़ाई जाती है और यह अनजाने मे ही लेखक को ज्ञात कराती है कि उसकी शैली मे क्या क्या दुर्बलताएँ तथा त्रुटियाँ हैं। इस भाति उसकी शैली को कोरी कल्पना से वंचित करती है। साहित्यिक शिथिलता से मुक्त करने के लिए एक प्रकार से पैरोडी साधक रूप मे प्रयाग मे लाई जाती है। पैरोडी मे विशेष रूप से एक प्रकार की शैली तथा लेखक की हास्यास्पद चुटकियाँ होती है जो कि भावों को परिहास मे परिणत कर देती है। डा० रामकुमार वर्मा द्वारा रचित 'आँखो का आकाश' नामक नाटक पैरोडी का सुन्दर उदाहरण है।

पैरोडी द्वारा हम समाज मे फैली बुराइयो को भी दूर कर सकते है क्योंकि हास्य इसका अस्त्र है। कभी-कभी गम्भीर विषय मे ऐसी हास्यस्पद समस्याएँ प्रकट हो जाती है जो समाज से सम्बन्धित होती है। इस प्रकार पैरोडी का सामाजिक पहलू भी है।

राधाचरण गोस्वामी ने अपने पत्र 'भारतेन्दु' मे एक पैरोडी लिखी। उसका उदाहरण यह है—

'आज हरि हाई कोर्ट सिधारे।
पुरी द्वारिका मध्य सुधर्मा सभा मनो पग धारे।
परम भक्त साहब नोटिस को निज कर दर्शन दीनो।
बहुत दिनन को ताप आपने पाप सहित हरि लीना।
आवत समै सुरेन्द्र नाथ को कारागार पठायो।
को कहि सकै विचार विवेचन यह मूरख मन मोरो।
सूरदास जसुदा को नन्दा जो कुछ करे सो थोरो॥'[1]

प्रहसन (फार्स)—

हिन्दी साहित्य मे प्रहसनो का आरम्भ भारतेन्दु युग से होता है। 'अन्धेर नगरी' तथा 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' भारतेन्दु जी के प्रमुख प्रहसन है। साहित्य मे दो

१. भारतेन्दु मासिक पत्रिका—२० जून १८८, ४१—पृ० ४४

प्रकार के नाटक माने जाते है—

१—सुखान्त नाटक

२—दु.खान्त नाटक

सुखान्त नाटक में हास्य का पुट रहता है जो कि कामेडी के अन्तर्गत माना जाता है। आधुनिक युग मे तो ट्रेजीकामेडी भी लिखी जा रही है।

मेरीडिथ ने कामेडी के उद्गम के विषय में लिखा है कि 'प्रहसन का कलाओ में कभी उच्च स्थान नही था। प्रारम्भ मे यह नाटकों से नीची वस्तु थी जिसमे अविकसित सभ्यता की प्रबल अभिव्यक्ति मिलती थी। इन्होंने भाव को प्रहसन की आत्मा माना है। प्रहसन के लिए वास्तविक समार का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है।'[१]

मेरीडिथ की भाँति बर्गसा ने भी कामेडी के विषय में वर्णन किया है—'प्रहसन मे हमारे जाने पहचाने चरित्रों का ही चित्रण होता है। साम्य का इसमें सदैव ध्यान रखा जाता है। यह विभिन्न प्रकार के वर्गों को हमारे सम्मुख रखता है। कभी कभी नये वर्गों का सृजन भी इसमें किया जाता है, इस भाँति इसमे अन्य कलाओ से विभिन्नता स्पष्ट प्रतीत होती है।'[२]

भारतेन्दु जी ने अपनी नाटिकावली मे भारतीय नाट्यशास्त्र के आधार पर प्रहसन की परिभाषा इस प्रकार दी है—'हास्य रस का मुख्य खेल राजा वा धनी व ब्राह्मण वा धूर्त कोई हो। इसमें अनेक पात्रों का समावेश होता है। यद्यपि प्राचीन रीति से इसमें एक ही अंक होना चाहिए किन्तु अनेक दृश्य किये विना नही लिखे जाते।'[३]

प्रहसन लिखने का उद्देश्य मनोरजन भी है और धर्म के नाम पर पाखण्ड का मूलोच्छेदन भी। काने को भी 'काना' कहने से काम नहीं बनता। वह तो बुरा भी मानता है। इसलिए समाज की बुराई को यदि केवल 'बुरा' मात्र कह कर उससे आशा की जाए कि समाज उस बुराई को दूर कर देगा, तो यह व्यर्थ है। व्यंग्य और वक्रता द्वारा इस प्रकार की बुराई को प्रकट करना एक प्रकार की कला है और बहुत ही उच्च कला है। इसमें साँप भी मर जाता है, लकड़ी भी नहीं टूटती।'[४]

ए. निकाल जो कामेडी के विद्वान माने जाते है, इनका कथन है कि प्रहसन में चार प्रकार की हास्य अभिव्यक्ति होती है। हास्यास्पद का आधार केवल एक हास्य तत्व ही नही होता बल्कि इनका ऐसा सम्मिश्रण होता है कि उनको अलग-अलग करना

---

१. दी आइडिया आफ कामेडी बाई मेरीडिथ, पेज नं० ११

२. लाफ्टर-हेनरी वर्गसाँ—पे० न० १६३

३. भारतेन्दु नाटिकावली—पृ० ७९३

४. हिन्दी नाटकों का इतिहास-डाक्टर सोमनाथ गुप्त, पृ० ५३

कठिन होता है। प्रहसन का हास्य एक आवश्यक गुण है यद्यपि प्रहसन एक मात्र हास्य पर ही अवलम्बित नहीं रहता। इसमे व्यग्य तथा हास्य का पुट रहता है।' निकाल ने प्रहसन के सन्दर्भ मे कामेडी के निम्न भेद किए है —

(१) प्रहसन (फार्स)
(२) व्यग्य प्रधान प्रहसन (कामेडी आफ सैटायर)
(३) शृङ्गार रस प्रधान (दी कामेडी आफ रामास)
(४) कोमलता प्रधान प्रहसन (जेन्टिल कामेडी)
(५) भावुकता प्रधान प्रहसन (सेन्टीमेंटल कामेडी)
(६) वचन विदग्धता प्रधान प्रहसन (कामेडी आफ विट)
(७) अन्तर्द्वन्द्व प्रधान प्रहसन (दी कामेडी आफ इन्ट्रीग्स)
(८) करुणरस प्रधान प्रहसन (ट्रेजी-कामेडी)[1]

प्रहसन तथा व्यग्य में अन्तर बताते हुए मेरीडिथ ने लिखा है 'व्यग्य किसी के मुँह अथवा पीठ पर घाव के समान है, प्रहसन एक मलहम है। उसका हास्य व्यक्तिगत नहीं होता, उसमें असाधारण नम्रता होती है जो अधिक से अधिक एक मुस्कान भर ला देती है। प्रहसन का हास्य बाह्कि हास्य होता है चूंकि बुद्धि से इसका सचारण होता है—इसीलिए इसे मस्तिष्क का हास्य कहा जाता है'[2]।

प्रहसन के द्वारा मानव में सामाजिक भावना उत्पन्न होती है अर्थात् वह समाज के उत्तरदायित्वों को समझने लगता है और पूर्णरूपण समाज के बनाए हुए नियमो का पालन करने लगता है। इसके द्वारा मानसिक थकान दूर होती है तथा अह की भावना मिट जाती है। मानव के स्वभाव मे कोमलता आती है और आशा का सचार होता है।

प्रहसन के अन्तर्गत, वैदग्व विट, हास्य (ह्यूमर) तथा भ्रान्त (नानसेन्स) तीनों का प्रयोग *किया जाता है। हास्य का क्षेत्र अवस्था, कार्य और चरित्र है, इन्ही के द्वारा* प्रहसन हास्य की वस्तु को प्रकाश में लाता है। कामडी का हास्य सार्वजनिक तथा अवैयक्तिक एव शिष्ट होता है।

श्री बदरीनाथ भट्ट द्वारा रचित 'लवड घोंधो' नामक प्रहसन का एक उदाहरण देखिए—

'कल घर के हिसाब में डेढ आने की भूल रह गयी थी। इस पर एडिटर और एडिटराइन मे झगडा हुआ। एडिटराइन ने असाधारण गालियाँ दी जिनका कोई मतलब

१. एन इन्टरोडक्शन टू ड्रामटिक थ्योरी—ए निकाल पेज न० १५८
२—लाफ्टर—हेनरी बर्गसा, पेज न० १६३

नही था.। एक अपढ औरत से जुबान की लड़ाई में हार जाने से उन्हें अपने ऊपर लज्जा और क्रोध आया इसलिए घर से असहयोग कर बाहर टहल रहे हैं कि कौंसिल के उम्मेद-वार मतलब सहाय उन्हे घेरते है[१] ।'

इस वर्णन मे हमें हँसी की सामग्री मिलती है । अपना राग अलापने के कारण तथा एडिटर की झल्लाहट के कारण ऐसी स्थिति होती है कि दर्शक भी जी खोल कर हँस पड़ते है ।

भ्रान्त हास्य के विषय में इस बात की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए कि हास्य के विपरीत भ्रान्त हास्य मे हास्यास्पद पात्र को उपहासास्पद होने का ज्ञान नही होना चाहिए । यदि उसे ज्ञान हो जाएगा या दर्शकों को इसका ज्ञान हो जाएगा तो हँसी उत्पन्न नही होगी । प्रत्युत हास्य के अभाव में घृणा या अनुकम्पा उत्पन्न हो जाएगी । प्रहसनो मे तो हास्यास्पद पात्र को उपहास्यास्पद होने का ज्ञान होना ही नही चाहिए । 'घोघावसन्त' मे बदरीनाथ भट्ट ने इस बात की ओर विशेष रूप से ध्यान दिया है । अपनी प्रशंसा मे घोघावसन्त जिन्हे उनके मित्रों ने 'शिकारपुरी' का उपनाम दिया है, कहते है :—

'खाट के पाये से चुटिया बाँध-बाँध कर रात रात भर पढ़ा, तब कहीं इण्टर-मीडिएट पास हुआ । और कहा गया था कि ससार के इतिहास मे तुम जिसे सबसे बड़ा आदमी समझते हो उस पर निबन्ध लिखो । मैंने अपने बाबू जी पर लिख दिया जिससे मुझे सेकण्ड डिवीजन मिला यद्यपि वह पटवारी है[२] ।'

फल के छिलको के बारे मे वर्मा जी के शब्दो में भट्ट जी कहते हैं—'गूदा नहीं तो सुगन्ध तो बाकी है, फेंक कैसे दूँगा । मैंने तो सुगन्ध समेत के पैसे दिये थे । मेरे पैसे कोई मुफ्त के थे[३] ।'

घोघा बसन्त शिकारपुरी के नाम से बड़ी-बड़ी बातें करते है और दर्शकों को हँसाते है । जनता उनको हास्यास्पद समझती है क्योंकि उन्हे इस बात का ध्यान नही रहता । भ्रान्त हास्य के लिए अज्ञानता अनिवार्य है ।

भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों के दृष्टिकोण का तुलनात्मक अध्ययन :—

पाश्चात्य तथा भारतीय विद्वानो के हास्य भेदो को देख कर यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय विद्वानों ने हास्य के जो भेद किए है वे अत्यन्त स्थूल एवं शारीरिक

१—लबड़धोधौं—बदरीनाथ भट्ट—पृ० ७४
२—लबड़धोधौं—बदरीनाथ भट्ट—पृ० ८०
३—वही—वही—पृ० ८३

आधार पर किए हैं। किन्तु प्रेरक मनोवृत्तियों के अनुकूल हास्य की भावना का विश्लेषण हमारे साहित्य में नहीं किया है। भारतीय साहित्य में विदूषक ही हास्य का आलम्बन रहा है। यही कारण है कि हास्य की भावना बौद्धिक धरातल पर न रह सकी। पश्चिमी विद्वानों ने गुण, उद्देश्य एवं उपकरण पर आधारित ही हास्य का विभाजन किया है। व्यंग्य : सैटायर : वक्रोक्ति : आइरनी, : विदग्धता : विट : हास्य : ह्यूमर : प्रहसन : फार्स : आदि।

हास्य की विशेषता उसकी निर्मलता है और व्यंग्य सदा सोद्देश्य होता है। उपहास के द्वारा ताड़ना ही उसका कार्य होता है। वक्रोक्ति में चुभन तथा कटुता होती है। वाग्वैदग्ध सदा बुद्धि के चमत्कार पर ही अवलम्बित रहता है, हास्य तो कटुता आदि से पृथक् होता है। हमारे आचार्यों ने इन भेदों को पृथक् नहीं माना है। बल्कि हास्य के चारों ओर ही सब भेदों को लता की भाँति लिपटा दिया है। जितना उच्च तथा स्पष्ट हास्य हमें पाश्चात्य साहित्य में मिलता है, उतना भारतीय साहित्य मे नहीं मिलता है, यदि दिखाई भी पड़ता है तो स्थूल दृष्टिकोण है। हिन्दी साहित्य मे हास्य के नाम पर व्यंग्य का प्रयोग अधिक होता है। उसका उद्देश्य भी किसी न किसी प्रकार की सुधार भावना के रूप में रहता है। किन्तु अब साहित्यकार शिष्ट हास्य का नाटकों में प्रयोग करने का अधिक प्रयत्न कर रहे हैं।

रस का विवेचन हमारे साहित्य मे अभिनय की दृष्टि मे किया गया है। हास्य का आधार जो हम शारीरिक प्रक्रियाओ मे पाते हैं उसका मूल कारण नाट्य शास्त्र के नियम ही है जिसमें अभिनय की सदैव प्रमुखता रहती है। पाश्चात्य विद्वानो के वर्गीकरण का आधार अभिनय नही है तथा न ही हास्य का विश्लेषण नाट्य शास्त्र के नियमो पर हुआ है। हास्य का सम्बन्ध चरित्र, घटना एवं कार्य से ही होता है। उपर्युक्त बातो पर ध्यान देते हुए भारतीय तथा पश्चिमी विद्वानो के हास्य के विभाजन में हमें स्पष्ट भिन्नता ज्ञात होती है।

भारतीय नाट्य विधान में रस की आवश्यकता—

भारतीय वाङ्मय मे साहित्य शताब्दियों से भिन्न शैलियों मे लिखा जाता रहा है। इन शैलियों मे विविध प्रकार के काव्य रूपो का समावेश हुआ है। ये काव्य रूप कवियों की अथवा प्रतिभाशाली लेखकों की प्रतिमा के आधार पर जीवन का चरित्र खीचने मे समर्थ हुए हैं। यह जीवन उदात्त जीवन है, जिसमें समाजगत नैतिकता आरम्भ मे अत तक ओतप्रोत रही है। आचार्यों ने काव्य में रस को महत्त्व दिया है।

रस साहित्य का प्राण माना गया है। रस रहित काव्य का कोई मूल्य नहीं है। आचार्य भरत का कथन है कि रस के बिना किसी अर्थ की प्रवृत्ति भी नहीं होती है।

'नहि रसादृते कश्चिदर्थः प्रवर्तते'[१]। अग्निपुराण के लेखक व्यास जी ने यह स्पष्ट रूप से कहा है कि रस काव्य का प्राण है—'वाग्वैदग्ध्य प्रधानेऽपि रस स्याम् जीवितम्'[२] रसवादियों में ही रस की प्रतिष्ठा नहीं रही है किन्तु वक्रोक्तिवादियों, अलंकारवादियों एवं रीतिवादियों आदि में भी अप्रत्यक्ष तथा प्रत्यक्ष रूप में रस की प्रधानता रही है।

यद्यपि भामह रस विरोधी आचार्य थे फिर भी उन्होंने 'मुक्त लोक स्वभावेन रसैश्च सकले पृथक्' लिखकर रस की अनिवार्यता को स्वीकार किया। इन्होंने रस का अन्तर्भाव रसवद् अलंकार में करके अप्रत्यक्ष रूप से रस को मान्यता प्रदान की है। दण्डी भी रस विरोधी आचार्य थे, किन्तु उन्होंने रस के प्रति अपनी आस्था प्रकट करते हुए स्पष्ट रूप में लिखा है 'कामं सर्वोप्यलंकारो रस अर्थे मिवि उचति।'[३] आचार्य रुद्रट ने भी काव्य में रस की अनिवार्यता बताई है 'तस्मात् कर्तव्यं यत्नेन महीपसा रसैर्युतम्।'[४] आचार्य वामन ने भी 'दीप्ति रसत्व कान्ति' कह कर गुणों के अन्तर्गत रस का समावेश करने की चेष्टा की है।

ध्वनिकार आनन्दवर्धन ने रस को ध्वनि का अंग माना है। क्रौंचवध वाले प्रसिद्ध श्लोक में उन्होंने करुण रस की व्यंजना के कारण उसमें पूर्ण काव्यत्व का स्फुरण माना है। इससे यही ज्ञात होता है कि ध्वनिवादी होने के कारण भी वे रस का अनिवार्य मानते थे। वक्रोक्ति एवं अलंकारों में विश्वास करने वाले आचार्य भोज ने भी रसोक्ति को ही अधिक अनिवार्यता दी है।

'वक्रोक्तिश्च रसोक्तिश्च स्वभावोक्ति वाङमय
सर्वासु ग्राहिणी तासु रसोक्ति प्रतिजानीते।'[५]

आचार्यों की काव्य परिभाषाओं द्वारा हमें काव्य में रस की अनिवार्यता तथा उसकी महत्ता के विषय में स्पष्ट रूप से ज्ञात हो जाता है। वामन भट्ट ने 'रसोवेत' तथा जयदेव ने 'रसनिक' और भरतमुनि ने 'बहुकृत रस मार्ग' काव्य में लिखकर अप्रत्यक्ष तथा प्रत्यक्ष रूप से रस की अनिवार्यता स्वीकार की है। मम्मट तथा विश्वनाथ और जगन्नाथ आदि सभी आचार्यों ने रस की महत्ता को स्वीकार किया है। काव्य की पराकाष्ठा साधारणीकरण से भी स्पष्ट होती है क्योंकि साधारणीकरण ही रस की भूमिका है। अतः रस काव्य का अनिवार्य उपादान सिद्ध होता है।

१—नाट्यशास्त्र—भरतमुनि—पृ० २०८, अ० ६
२—अग्निपुराण—व्यासजी ३३७। ३३, पृ० २०४
३—नाट्यशास्त्र—भरतमुनि—पृ० २०३, २०४
४—वही वही पृ० २०३, २०४
५—शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त—डा० गोविन्द त्रिगुणायत—पृ० १-३

आचार्य भरत का कथन है 'विभावानुभाव व्यभिचारिसंयोगात् रस निष्पत्ति'[१] अर्थात् विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों के सयोग मे ही रस की निष्पत्ति होती है। अग्निपुराण के अनुसार चार प्रमुख रस माने गए है शृगार, रौद्र, वीर एव वीभत्स आदि। इन चारों के द्वारा ही अन्य रसों की उत्पत्ति होती है। शृगार से हास्य, वीर से अद्भुत, वीभत्स से भयानक और रौद्र से करुण आदि का आविर्भाव हुआ है। आचार्य भरतमुनि ने भी प्रथम चार रस की उत्पत्ति मानी है, शृगार, वीर, रौद्र तथा वीभत्स आदि। इन्होंने भी शृगार से ही हास्य की उत्पत्ति बतलाई है। उनका कथन है कि शृगार रस की अनुकृति हास्य है। सर्वप्रथम दशरूपककार ने शान्तरस को जन्म दिया था और तत्पश्चात् साहित्य दर्पण में वात्सल्य रस का विवेचन मिलता है। इस प्रकार रसों की सख्या दस हो गयी है।

'रस' शब्द का अर्थ लोकोत्तर 'आनन्द' है और रस को ही काव्य की आत्मा कहा गया है। 'रस' का ब्रह्मानन्द सहोदर के नाम से भी सम्बोधित किया जाता है। जब कभी हम सुन्दर काव्य को पढते हैं तो हमारा हृदय अलौकिक आनन्द से भर जाता है और काव्य में जिस प्रकार का वर्णन होता है उसी प्रकार के भाव भी हमारे मन में उत्पन्न होते है। 'मानस' के उस प्रसग को जिसमे लक्ष्मण जी के मूर्च्छित होने पर श्री रामचन्द्र जी के विलाप का वर्णन है, हम पढते हैं तो हमारी आखें छलछला उठती हैं। 'विनय पत्रिका' के उन पदों को पढ कर जिनमें तुलसीदास जी के हृदय की प्रगाढ भक्ति भरी हुई है, उस भक्ति को देख कर हमारा हृदय भी भक्ति भाव से भर जाता है। अत. रस की अनुभूति के कारण ही हमारे हृदय में इस प्रकार के भाव उत्पन्न होते है। काव्य अथवा नाटक वही सुन्दर तथा प्रभावशाली माना जाता है जिसमे रस होता है।

अत: रस नाटक का अनिवार्य तत्व माना जाता है। भारतीय काव्य का लक्ष्य अलौकिक आनन्द है। उसे ही हम रस कहते हैं। नाटकों का प्रमुख उद्देश्य है सामाजिकों के हृदय में बीज रूप स्थित भावों को अकुरित करना, जिसमे शृगारादि रसों में निमग्न सामाजिक साधारणीकरण की अवस्था प्राप्त कर सके। नाटकों के प्रसग में शान्त रस को छोड कर शेष आठ रसो का वर्णन किया गया है। प्रधान दो ही रस माने गए है— शृगार तथा वीर। अन्य रसों की व्यजना गौण रूप मे होती है। 'शान्त रस' का प्रयोग नाटकों में इसलिए नही किया जाता है कि अभिनेता निर्वेद के कारण शान्तरस का अभिनय नही कर पाते, और सामाजिक भी प्राय इस रस को पाने के लिये तैयार नही रहते। इसलिये नाटककार को इस बात का सर्वदा ध्यान रखना पडता है कि विरोधी रस असगत भाव से उत्पन्न न होने पाये।

१—भरतमुनि का नाट्य शास्त्र—पृ० २०३

प्राय नाटककार रस का उपयोग अपने नाटकों को रोचक बनाने के हेतु करते है, इसलिये उसका उपयोग अनिवार्य है। यदि नाटक में रस का प्रयोग हुआ तो परिस्थिति चाहे करुण हो अथवा सुखान्त हो, वह बराबर रोचक बनी भी रह सकती है। दर्शक उद्विग्न होकर उस नाटक की समाप्ति के समय की प्रतीक्षा और इच्छा करते हैं। बात यह है कि सामाजिक बीच-बीच मे विश्राम चाहते है। एक ही प्रकार की मनोवृत्ति में लगे रहने से उन्हे उचाट-सा प्रतीत होने लगता है। इसी कारण पाठकों का ध्यान नाटक की ओर आकृष्ट करने के हेतु यह अत्यन्त आवश्यक है कि रस का प्रयोग नाटक में किया जाए।

यदि नाटकों में रस का प्रयोग न किया गया तो उनमें नीरसता आ जाती है, फिर पाठकों को उतना आनन्द तथा रस प्राप्त नहीं होता है जितना कि रसजनित नाटकों द्वारा प्राप्त होता है। हास्य रस का नाटकों में समावेश होने के कारण पाठकगण आनन्द में डूब जाते है। उनका मन उस नाटक को छोड़ने का कदापि नहीं करता, उसकी समाप्ति मे ही लगे रहते है तथा समाप्त करके ही चैन लेते है। यही कारण है कि रसयुक्त नाटक की इतनी महत्ता है। इसीलिए आचार्यों ने रस को नाटक का अनिवार्य तत्व माना है और साहित्य मे इसकी महत्ता का वर्णन किया है।

वाग्धारा के प्रवाह ने आदि काल से, आदि स्रोत से चल कर अनेक रूप ग्रहण किए है। सरस्वती की सौम्य भंगिमा ने कही अलकारों में रूप दिखाया जिसके चमत्कार पर मतिविस्मित होकर रह गई। कभी व्यग्य दृष्टि से काव्य का आनन्द उठाया और कभी रस की सरिता बहा दी। इस प्रकार अनेक सीढ़ियाँ बन गयी। इससे यह स्पष्ट है कि साहित्यशास्त्र के उदय की बेला मे नाटकों मे अरुणिमा का रग था और उनमें रसो की प्रधानता थी तथा उनका जीवन ही रस था। इसी से यह ज्ञात होता है रस की अनिवार्यता तथा महत्ता आरम्भ से लेकर अन्त तक है। अत सामाजिकों का आनन्दित करना नाटकों का प्रमुख लक्ष्य रहा है। नाटककार रस को नाटक की आत्मा मान कर अन्य तथ्यों को उसका अनुवर्ती साधक एव सहायक मानते है।

रसों में हास्य रस —

सब रसो मे स्वभावत हास्य रस अधिक सुखात्मक रस प्रतीत होता है। आचार्य भरत ने हास्य रस की उत्पत्ति शृगार रस से मानी है और बताया है कि हास्य शृगार की ही अनुकृति है। 'शृंगारानुकृतिया तु स हास इति सज्ञित ।' 'अनुकृति' शब्द का अर्थ है नकल करना अथवा अनुकरण करना, क्योंकि नकल ही हँसी की जड है। किसी व्यक्ति की चाल-ढाल, बात-चीत तथा उसकी वेषभूषा आदि की नकल की जाती है तो हास्य का प्रादुर्भाव होता है।

यद्यपि शृंगार रस से हास्य की उत्पत्ति बतलाई गई है किन्तु उसका वर्ण शृंगार रस के 'श्यामवर्ण के विपरीत श्वेत बतलाया गया है, 'सितो हास्य प्रकीर्तित' हास्य के देवता भी शृंगार के देवता विष्णु से भिन्न शैव प्रथम अर्थात् शिवगण है। डा० रामकुमार वर्मा ने भरत मुनि के उक्त सूत्र मे कि हास्य रस शृंगार रस से प्रेरणा पाता है अपना मत प्रकट करते हुए कहा है कि हास्य न केवल शृंगार से प्रेरणा पाता है परन्तु जीवन की अनेक परिस्थितियों से बल प्राप्त करता है।

हास्य रस के विषय में दशरूपककार का कथन है कि 'हास्य का कारण अपनी अथवा दूसरे की विचित्र वेशभूषा, चेष्टा, शब्दावली तथा कार्यकलाप है।'[1] साहित्य दर्पणकार ने भी हास्य रस के सम्बन्ध में अपने मत प्रकट किये है कि वाणी चेष्टा तथा आकार आदि की विकृति से हास्य रस का आविर्भाव होता है।[2] विश्वनाथ तथा धनजय के लक्षणो मे केवल यह अन्तर है कि वेशभूषा, चेष्टा, शब्दावली, तथा कार्यकलाप में विचित्रता अपनी भी हो सकती है, तथा दूसरो की भी हो सकती है। वाणी के विकार आदि को भी महत्व दिया गया है और उसे भी हास्य की उत्पत्ति का कारण बताया है। हास्य रस का अपना स्वतत्र अस्तित्व है इसका अध्ययन हम दो दृष्टिकोणो से कर सकते हैं, जैसे—

(१) आलम्बन की दृष्टि से

(२) आश्रय की दृष्टि से

आलम्बन की दृष्टि से इसका मूल या अस्तित्व किसी प्रकार की विकृति स है।

'वागादि वैकृताच्चे तो विकासो हाय इष्यते'[3]—विकृति चाहे किसी उक्ति में हो या किसी मनुष्य में हो, इसकी विचित्रता चित्त में प्रसन्नता उत्पन्न करती है जो हँसी द्वारा हमारे समक्ष प्रकट होती है। बर्गसाँ महोदय का कथन है कि जब मनुष्य अपनी स्वतत्रता से कार्य न कर मशीन की भाँति कार्य करने लगता है वही हास्य का विषय बन जाता है। यह विकृति का एक रूप है। विकृति शब्दो से तथा वेशभूषा एव चाल-ढाल से भी उत्पन्न होती है। नाट्यशास्त्र में कई प्रकार की विकृतियों का उल्लेख हुआ है—

'विपरीतालकारैः विकृता चाराभिधानवेशैश्च
विकृतैरर्थविशे षैर्हसतीति रस स्मृतो हास्य [4] ॥

इसमें अलकारो, आचरणो, नाम, वेश, अर्थविशेष आदि का उल्लेख हुआ है।

---

१ दशरूपक—धनजय—४ प्रकाश, पृ० ७१
२. साहित्य दर्पण—विश्वनाथ—परिच्छेद ३, पृ० २१४
३ साहित्य दर्पण—विश्वनाथ—३।१७५
४. नाट्य शास्त्र—भरतमुनि—६—४९

हास्य के आश्रय के दृष्टिकोण से इसमें एक प्रकार की श्रेष्ठता के भाव रहते हैं। जहाँ विकृति अनिष्ट की सीमा तक नहीं पहुँचती वहीं पर वह हास्य कही जाती है। यदि सीमा का उल्लंघन कर दिया जाए तो वह करुण रस में परिणत हो जाती है। डा० गुलाबराय के अनुसार 'जब विकृति भयानक स्थिति में रहती है और अनिष्ट की सीमा तक नहीं पहुँचती तब आश्रय को एक प्रकार का सुख होता है और वह हास्य मे परिणत हो जाता है। हास्य प्रत्याशित मे विलक्षण एक सुखद वैचित्र्य को उत्पन्न कर हमारी एकान्तता सम्बन्धी ऊब को किसी अश में दूर करता है। हास्योक्ति चुटकुला और परिहासमय अनुकरणो मे पिटी हुई लकीर मे कुछ हटी हुई बात होती है इसीलिए इनके सुनने से प्रसन्नता होती है।'[1] हास्य रस के द्वारा मानव को आनन्द की प्राप्ति होती है।

हास्य रस का स्थायी भाव :—

हमारे चित्त में जो भाव चिरकाल तक स्थित रहते है और जो विभावादि से सम्बन्धित होकर रस मे परिणत होने की क्षमता रखते हैं वही स्थायी भाव कहलाते हैं। आचार्य भरत ने नाट्यशास्त्र में स्थायी भाव की परिभाषा इस प्रकार बतलाई है :—

'यथा नाराणा नृपति. शिष्यना च यथा गुरु.।
एवहि सर्वं भावना भाव स्याय महानिह्॥'[2]

अर्थात् जैसे मनुष्यों मे राजा, शिष्यों में गुरु, वैसे ही सब भावो मे स्थायी भाव श्रेष्ठ होता है।

हास्य रस का स्थायी भाव हास माना है। साहित्य दर्पणकार के कथनानुसार, 'वागादिवैकृते श्वेतोविकासो हास इष्यते[3]।' अर्थात् वाणी, वेशभूषा, आदि की विपरीतता से जो चित्त का विकास होता है वह 'हास' कहलाता है। देवजी के 'शब्द रसायन' में स्थायी भावो के वर्णन में एक दोहा है, जिसमे 'हँसी' को हास्य रस का स्थायी भाव माना है :—

रति हासी अरु सोक रिस, अरु उछाह भय जानु।
निन्दा विसमय शान्त मे नव स्थिति भाव बखानु॥'[4]

---

१. सिद्धान्त और अध्ययन—डा० गुलाबराय—पृ० १४०

२. भरतमुनि—नाट्यशास्त्र—पृ० २०५

३. साहित्यदर्पण—विश्वनाथ—परिच्छेद ३, पृ० १७५

४. हिन्दी साहित्य मे हास्य रस—डा० बरसानेलाल चतुर्वेदी, पृ० २१

हास्य के विभाव :—

हास्योत्पादन के कारण वस्तु-मात्र में देखी हुई विकृति, व्यंग्य वाक्य कहना, ओठ नासिका तथा कपोल का स्फुरित होना, परचेष्टा अनुकरण आदि है। साहित्यदर्पणकार ने लिखा है :—

'विकृताकार वाक्चेष्ट ममालोक्य हंसज्जनः ।
तदनालम्बन प्राहुस्तच्चेष्टोद्दीपन मतम्[1] ।'

अर्थात् जिसकी विकृति आकृति, वाणी, वेश तथा चेष्टा आदि को देख कर लोग हँसें, वह यहाँ आलम्बन और उसकी चेष्टा आदि उद्दीपन विभाव होते है।

भरत मुनि का कथन है कि विभाव कारण निमित्त और हेतु पर्याय है।

हास्य रस के अनुभाव :—

जो भाव स्थायी भावों का अनुभत कराने मे समर्थ हो उन्हे अनुभाव कहते है। वास्तव मे अनुभाव शारीरिक चेष्टाएँ है। अनुभावों के द्वारा ही स्थायी भाव नाटको में आश्रय की चेष्टाओ द्वारा तथा काव्य मे शब्दो द्वारा प्रकट होते रहते है और रसों की पुष्टि करते है। आचार्य विश्वनाथ ने हास्य रस के अनुभाव इस प्रकार बतलाये है :—

'अनुभावो क्षि संकोच वदन स्मैर तादयः[2] ।'

अर्थात् नयनो का वन्द होना और वदन का विकसित होना इसके अनुभाव है।

हास्य रस के संचारी भाव :—

साहित्य मे आचार्यों ने सचारी भावो की संख्या तेंतीस बतलाई है किन्तु महाकवि देव ने चौतीसवां 'छल' सचारी भाव बतलाया है जिसका उल्लेख हमे नाट्यशास्त्र मे मिलता है। साहित्यदर्पणकार ने संचारी भावो की परिभाषा इस प्रकार बतलाई है— विशेषतया जो भाव अनियमित रूप से चलते है उनको व्यभिचारी कहते है। व्यभिचारी भाव, स्यायी भाव मे समुद्र की लहरों की भाँति आविर्भूत तथा तिरोभूत होकर विपरीतता से व्याप्त रहते है। संचारी भावो को व्यभिचारी भाव भी कहते है क्योंकि एक ही भाव विभिन्न रसों के साथ पाया जाता है। सचारी भावो को मन.सचारी तथा अन्तर संचारी भी कहते है। साहित्य दर्पणकार का कथन है कि 'निद्रा आलस्य तथा अवहित्थ आदि

१—साहित्य दर्पण—विश्वनाथ, परिच्छेद ३, पृ० १५१

२—वही—वही—वही, पृ० १५८

हास्य के संचारी भाव होते हैं।[1] अश्रु, रोमांच, कम्प, हर्ष, स्वेद, चंचलता आदि भी माने जाते हैं।

आचार्य शुक्ल जी ने निद्रा, आलस्य आदि को त्याज्य बताया है। प्रश्न यह है कि हास्य के आलम्बन में निद्रा, आलस्य आदि का होना तो स्पष्ट ज्ञात होता है किन्तु आश्रय में आलस्य, निद्रा आदि की संचारी-स्थिति कैसे होगी? वास्तव में यह शंका निर्मूल है। प्रो० जगदीश पाण्डे ने व्यवहार तथा प्रभाव के दृष्टिकोण से हास्य के संचारियों का वर्गीकरण इस प्रकार किया है —

१—*स्नेहन*—जहाँ करुणा संचारी होकर आलम्बन के प्रति हास्य को सरल तथा स्वीकार्य बनाती है।

२—*उपहासक*—जहाँ संचारी आकर हास्य आलम्बन को तिरस्कार्य भी बना देता है।

३—*विभाव संक्रमिति*—जहाँ संचारी आश्रम को भी स्वतंत्र आलम्बन बना देता है। लाड प्यार से बिगड़ा हुआ लड़का बाप की दाढ़ी-मूँछ उखाड़ता है। बाप का ऐसे बेटे पर प्यार आना उस (बाप को) आश्रय से आलम्बन बना देता है।

४—*परिहासक*—खरस्वर संगीतकार के गाने पर धीरे धीरे लोगों का सो जाना, अरुचि से उत्पन्न, यह निद्रा संगीत के माधुर्य पर व्यंग्य है।

५—*रेचक*—लक्ष्मण की उग्रता तथा अमर्ष से परशुराम हास्यास्पद भी हो जाते हैं। उनके प्रति प्रतिशोध की भावना का भी रेचन होता चलता है।

६—*उहामूलक*—जैसे वितर्क, पहेलिका, विमूढ़ता आदि।[2]

हास्य रस का पूर्ण रूप से विवेचन करने के पश्चात् यह स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है कि हास्य रस की अपनी सत्ता तथा उसका स्वतंत्र व्यक्तित्व है और उसका नवरसों में महत्वपूर्ण स्थान है। इस संदर्भ में आगे 'हास्य' की विवेचना आवश्यक है।

हास्य का सामाजिक महत्व—

मनुष्य सामाजिक प्राणी है, वह समाज में ही रहता है और समाज के बनाए हुए नियमों का वह पूर्ण रूप से पालन करता है। मानव के मन से ही समाज का मन बनता है। इस कारण यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि समाज से अलग मनुष्य का कोई अस्तित्व नहीं है। समाज में ही रह कर मानव का प्रत्येक दृष्टिकोण से विकास होता है। हास्य विनोद भी एक सामाजिक गुण है। इसका प्रचार एक दूसरे के सम्पर्क में आने

१—साहित्य दर्पण—विश्वनाथ—परिच्छेद ३—पृ० १५९

२—हास्य के सिद्धान्त और मानस में हास्य—प्रो० जगदीश पाण्डे—पृ० ६४

से ही बढता है। उदाहरण के लिए जैसे एक व्यक्ति जब अकेले बैठ कर रामायण का पाठ करता है तो केवल उसे ही लाभ होता है और किसी अन्य को नही। यदि यही व्यक्ति दस आदमियो के बीच मे बैठ कर पाठ करे ता सबको लाभ होगा और ज्ञान की वृद्धि हागी तथा उनमें सब की भावना उत्पन्न होगी एव आनन्द की प्राप्ति होगी।

वर्गसा ने अपनी पुस्तक 'लाफ्टर' में यह लिखा है कि हास्य कुछ इस प्रकार का होना चाहिए, जिसमे सामाजिकता की झलक हो। उसके द्वारा जो भय उत्पन्न होता है उससे सनकीपन पर रोक लगती है, वह मनुष्य को सदैव अपने पारस्परिक आदान-प्रदान के निम्नस्तरीय कार्यों के प्रति सचेत रखता है, सक्षेप में वह यान्त्रिक क्रिया के फलस्वरूप किए जाने वाले व्यवहार को मृदुल बनाता है[1]।'

हास्य रस ही हमारे समाज की आत्मा का सकेत है। इन सकेतो द्वारा ही मानव अपने आचार-विचार तथा दैनिक आचरण की रक्षा करता है। असगतियो की ओर भी समाज सकेत करता है जिसके कारण व्यक्ति सचेत रह कर अपने कार्यों मे सफलता प्राप्त करता है। हास्य समाज का सरक्षक है और मानव जाति का सुधारक भी है। हास्य मनुष्य के चारित्रिक, मानसिक तथा शारीरिक गुणो का पर्यवेक्षक है। हास्य के द्वारा ही समाज में फैली हुई कुरीतियो का निराकरण किया जाता है। हास्य ही समाज की सगठित शक्ति तथा भावना का निर्माता है।

सामाजिक तटस्थता मे भी हास्य का प्रकाश सम्भव है क्योकि जब कभी कोई व्यक्ति समाज से अलग होकर अपना कार्य मशीन की भांति करता चला जाता है तो वह कभी कभी हास्य का भाजन बन जाता है। अत हास्य का यह कर्तव्य है कि वह इस व्यक्ति की विमुखता तथा समाज के प्रति जो उसका उत्तरदायित्व है उसकी विस्मरणशीलता का परिष्कार कर उसे सच्चे मार्ग पर लाये। हास्य ही एक सुन्दर अस्त्र है जो मानव को सामाजिक उत्तरदायित्व के प्रति जागृत करता है। यह तो प्रमाणित है कि हास्य मानव समाज से ही सम्बन्धित है। जब कभी मानव ने समाज के प्रतिकूल आचरण किया और समाज मे किसी भी प्रकार की असगति उत्पन्न हुई कि हास्य की सृष्टि हो जाती है।

वास्तव में समाज की आत्मा, सजग, सजीव तथा गतिशील रहती है और सदैव प्रतिकूल आचरण करने वाले के प्रति सजग रहती है। हास्य के सफल सहयोग द्वारा उसमें विश्रृखलता उत्पन्न नही होने देती। हास्य सामाजिक जीवन की विश्रृखलनाओ का एक सफल हथियार है। समाज मे उत्पन्न हुई बाधाओ को तथा कठिन समस्याओ को ही हम हास्य द्वारा सुलझाते हैं। उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि हास्य

१—लाफ्टर—हेनरी वर्गसा—पेज न० २०

का सामाजिक महत्त्व अधिक है ।

समाज ने जिस प्रकार न्यायप्रियता, धैर्य, दया, दृढता आदि गुणों को महत्त्व दिया है इसी प्रकार हास्यप्रियता को भी विशेषरूप मे ग्रहण किया है । सामाजिक जीवन के आवेश, दम्भ, मितव्ययी, ईर्ष्या, गर्व, विफल आशाएं तथा तर्कहीन व्यवस्थाएँ आदि सभी हास्य के सफल आधार हैं । सामाजिक जीवन म हास्यप्रियता का अधिक महत्त्व रहा है । क्योंकि हास्य के द्वारा ही समाज के जटिल प्रश्नो को सुलझाया जा सकता है । हास्य अद्भुत कल्पनात्मक स्वप्नो का निर्माण करता है जिस पर समाज का श्रद्धा रहती है एव समाज के सामूहिक कल्पनात्मक विचारो पर प्रकाश डाल कर हमारी सामाजिक चेतना को जागृत करता है । अत इससे यह ज्ञात होता है कि हास्य और समाज का चोली-दामन का सम्बन्ध है । हास्य की आत्मा वास्तव में अत्यधिक व्यापक है । समाज में ही वह अकुरित, पल्लवित एव पुष्पित होता है ।

मूलत हास्य एक सामाजिक गुण है । बिना सामाजिक पृष्ठभूमि के इसका कोई महत्त्व नही है । हास्य की प्रमुख विशेषता यह है कि जहाँ कही भी किसी मनुष्य ने इस गुण का प्रदर्शन किया, वहाँ अनेक व्यक्ति इस गुण के वशीभूत होकर हास्य प्रकट करने लगते है । जिस प्रकार एक कोयल पाँच-दस आस पास बैठी हुई कोयलो का मधुर कठ स्वरित कर देती हैं उसी प्रकार हास्य भी अपनी प्रतिध्वनि द्वारा सबको प्रभावित करता है । यह सामाजिक भावना को पुष्ट बनाता है और इसके द्वारा मानवता अपना प्रसार करती है ।

हास्य का व्यक्तिगत महत्त्व—

हास्य मानवी सुख है और हास्य की आत्मा में ही एक दैवी विचित्रता है । हास्य मे जितना आकर्षण है उतना अन्य किसी भावना म नही है, किसी प्रेरक शक्ति मे भी नही है । यही एक ऐसी मानवी भावना है जिसे हम बिना किसी सकोच के प्रकट करते है । जिस प्रकार चुम्बक के समीप आते ही लोहा चिपक जाता है उसी प्रकार हँसमुख व्यक्ति को देखते ही हम आनन्दित हो उठते है । हास्य की आत्मा ही मानवी सम्बन्धो की परिधि में पुष्पित होती है ।

हास्य का महत्त्व विविध क्षेत्रो म व्याप्त है । यही एक ऐसा गुण है जो मानव को अन्य जीवों से अलग करता है । एक्सरे की किरणें जिस भाँति शरीर म प्रवेश कर उसका यथार्थ चित्र उपस्थित कर देती है, उसी भाँति हास्य मानस पटल के आडम्बरपूर्ण आवरण को दूर कर यथार्थ भावना को हमारे समक्ष उपस्थित करता है । हास्य ही मनुष्य की बहुत बडी शक्ति है जो मनुष्य की जटिल गुत्थियो को सुलझाने में सहायक सिद्ध होता है ।

हास्य ही हमारे जीवन को मधुर तथा सगीतमय बनाता है। निराशा रूपी अधकार में पडे हुए व्यक्ति को हास्य प्रकाश प्रदान करता है। असहाय-अवस्था मे पडा हुआ व्यक्ति हास्य का आश्रय लेकर ही अपनी कठिन परिस्थितियो का सामना करता है। हास्य वह गोवर्द्धन पर्वत है जिसके नीचे मनुष्य सभी प्रकार के सकटो से बचता रहता है। थके मांदे व्यक्तियो के लिए हास्य घने वृक्ष की शीतल छाया है। हास्य केवल मानवी पृष्ठभूमि पर ही आधारित है, बिना मानवी सकेत के यह सम्भव नही है। हास्य के द्वारा ही मानव में नवीन भावनाओं का विकास होता है।

वास्तव में हास्य एक ऐसी शक्ति है जो मानव जगत् म प्रकाश उत्पन्न करके उसके निराशा-रूपी अन्धकार का नष्ट कर देता है। मनुष्य-जीवन में जहाँ कठिन से कठिन समस्यायें उत्पन्न हो जाती है वहाँ हास्य मखमली गद्दे की भाँति काम देता है। हास्य मानव की चिन्ताओ को दूर कर मन को प्रफुल्लित कर देता है। हास्य से हमारा मानसिक बचाव होता है तथा एक प्रकार की हमारे चित्त म शक्ति उत्पन्न हो जाती है जो कि जीवन को स्वस्थ बनाए रखती है।

हास्य का धार्मिक तथा राजनीतिक महत्त्व—

जिस प्रकार हास्य का सामाजिक एव व्यक्तिगत महत्त्व है उसी प्रकार हास्य की धार्मिक तथा राजनीतिक उपादेयता भी कम नही है। धार्मिक जीवन मे ही हमे पाखण्डा की चतुराई के अनेक रूप मिलते है। धर्माध्यक्षो के आदर्शो तथा उनके क्रिया-कलाप की विपरीतता एव विषमता पर हम सतत हँसी आ ही जाती है और तभी तो धर्माध्यक्षो की छोटी-मोटी दुर्बलताओ तथा उनके आचार-विचार के अवगुणो के प्रकट होने पर हास्य की उत्पत्ति हो जाती है। जब कभी धर्माध्यक्षा का जीवन धर्माचरण से विमुख हो जाता है तो असत्य, दम्भ, पाखण्ड आदि का बोलबाला हो जाता है। और तभी हास्य की सृष्टि हो जाती है। अधिकाश रूप से धर्मात्माओ की सज-धज एव उनकी भावभगिमा को देख कर ही हँसी आ जाती है। अत धार्मिक क्षेत्र के पुरोहितो एव पण्डितो ने हास्य की मर्यादा की रक्षा की है।

राजनीति की भी अनेक जटिल परिस्थितियाँ हास्य के माध्यम द्वारा सुलझाई गयी हैं। राजनीति के विवादग्रस्त विषयो पर विचार विमर्श करते हुए और अन्य व्यक्तियों पर व्यग्य कसते हुए व्यक्ति हास्य रूपी लहर मे अवगाहन करते हुए देखे गए हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि हास्य का प्रत्येक क्षेत्र मे महत्त्वपूर्ण स्थान है।

जीवन मे हास्य की उपयोगिता—

बाह्य जगत् की घटनाएँ चित्रपट की भाँति चित्त पर अपनी छाप डालती रहती

है और विभिन्न प्रकार के प्रभाव इस पर पड़ते रहते है। वस्तुत मानव जीवन मे परिवर्तन होना सम्भावित है। जब कभी हम दीन दुखी व्यक्ति को भूख से तड़पता हुआ देखते है तब हमारे हृदय मे दया के भाव जाग्रत हो उठते है, कभी किसी अबला को दुष्ट के हाथो में फँसता हुआ देख कर हमारा हृदय क्रोध से भर जाता है। जब कभी हम वन में जाते है तो वहाँ पर किसी सिंह को देख कर हम भयभीत होने लगते हैं, और कभी मिट्टी में सने हुए बालक को देखते है तो नाक-भौ सिकोडने लगत है। पेड से दबे हुये व्यक्ति को जीवित बाहर निकलता हुआ देखते है तो आश्चर्य सागर मे डूब जाते है। कभी वृक्षो मे कूकती हुई कोयल की मधुर ध्वनि सुनते है तो हमारा मन पुष्प की भाति खिल उठता है। जब फैशनेबिल व्यक्ति को गिरता हुआ देखते है तो हम ठहाका मारकर हँसने लगते है। इस प्रकार मानव हृदय-सागर का विभिन्न परिस्थितियो मे मथ कर उसमें भाव-लहरें उत्पन्न करता है।

इस प्रकार हास परिहास की उपयोगिता मानव जीवन मे अधिक है। हास्य क्रिया ही मनोरजन का एक सुन्दर साधन है। हास्य ही हमारे जीवन मे सुख सचार करता है तथा जीवन को सरस बनाता है। मानव कितना ही चिन्तित एव शोकाकुल क्या न हो हास्य की फुहार उसके कानो में पडते ही वह प्रसन्नचित्त हो उठता है, चाहे वह क्षण भर के लिए ही क्या न हो ? उसकी चिन्ताएँ भाग जाती है। हास्य एक ऐसी शक्ति है जो मानव को स्वस्थ बनाती है। निराशा रूपी अन्धकारमय जीवन म हम हँसी रूपी प्रकाश के सहारे अपनी यात्रा पूर्ण करते है। हास्य से ही जीवन मे मधुरिमा का सचार होता है।

वस्तुत यदि हमे हास्य से वचित कर दिया जाए और हमे जीवन मे हसने के लिए कोई विशेष अवसर प्राप्त न हो तो हमारा जीवन नीरस एव बोझिल बन जाता है, मानव चिड़चिडे स्वभाव का हो जाता है, उसमे कटुता की भावना उत्पन्न हो जाती है। इस कारण यह स्पष्ट है कि मानव के लिए हँसना अत्यन्त आवश्यक है जिससे उसमें कोई रोग उत्पन्न न हो। हास्य द्वारा हमारे फेफडो का व्यायाम होता है। हँसमुख व्यक्ति को कभी डाक्टर का दरवाज़ा खटखटाने की आवश्यकता नही पडती। क्योंकि वे सदा निरोग रहते है। हँसिन व्यक्ति सदा हृष्टपुष्ट रहते है। इस कारण यह अनिवार्य है कि हम हास्ययुक्त साहित्य का अध्ययन कर अपने स्वास्थ्य को बनाए रखें।

जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे हास्य ने अपना विलक्षण प्रभाव दिखलाया है। हास्य रस द्वारा मानव को शारीरिक एव मानसिक थकान दूर होती है। हास्य ही मानव के अवगुणो को दूर भगाता है। हास्य रस में ही जादू जैसा प्रभाव है जो मानव की कुरीतियो का बहिष्कार कर कष्टमय स्थिति से मुक्त करता है।

हास्य की इतनी उपयोगिता होते हुए भी इसकी अवधिर यमी है। इसका

प्रमुख कारण यह है कि जब से हिन्दी साहित्य का प्रारम्भ हुआ तब से जातियाँ परतन्त्रता की जजीरो मे बधी रही और उन पर विभिन्न प्रकार के अत्याचार होते रहे। अत: इन परिस्थितियो के बीच रोने के अतिरिक्त हँसना कहाँ ? ईश्वर की असीम कृपा से हमें स्वतत्र वायु मण्डल मे सास लेने का सुयश प्राप्त हुआ, फिर भी कुछ ऐसी परिस्थितिया हैं जो बीच मे अब तक बाधा उपस्थित करती हैं। एक ओर दीन-हीन व्यक्तियो की कष्टपूर्ण गाथाएँ हैं और दूसरी ओर विभिन्न पार्टियो की जटिल समस्यायें है। भविष्य मे यही आशा है कि हमारा भारत इन समस्याओ पर शीघ्र ही विजय प्राप्त करेगा।

हमारे साहित्य म जितनी भी हास्य-सामग्री प्रस्तुत है वह अधिक रुचिपूर्ण नही है। साहित्यकारो के लिए विशेष कर इस बात की अनिवार्यता है कि वे जनता के समक्ष शिष्ट एव उच्च श्रेणी का हास्य उपस्थित करें, जिससे उनमें सुरुचि का निर्माण हो। वर्तमान युग में यह प्रसन्नता की बात है कि हमारे अनेक साहित्यकार हास्य के आकर्षक तथा उत्कृष्ट रूप को निखारने में सलग्न हैं। साहित्य के विकास मे हास्य की अधिक महत्ता है, इसे अवश्य ही प्रोत्साहन मिलना चाहिए।

नाटक में हास्य का महत्व :—

भारतीय विद्वानो ने साहित्य में रस का स्थान महत्वपूर्ण माना है। यह स्पष्ट है कि रस नाटक का अनिवार्य तत्व है। नाटको का प्रमुख उद्देश्य है सामाजिको के हृदय मे बीज रूपी स्थित भावो का अकुरित करना, जिससे शृगारादि रसो में निमग्न सामाजिक साधारणीकरण की अवस्था प्राप्त कर सकें। नाटको के प्रसग मे शान्त रस को छोड कर शेष आठ रसो का वर्णन किया है पर प्रधान दो ही रस माने गये हैं—शृगार अथवा वीर। अन्य रसो की व्यजना गौणरूप में होती है। शान्त रस का प्रयोग नाटको में इसलिए नही होता कि अभिनेता निर्वेद के कारण शान्तरस का अभिनय नही कर पाते हैं और सामाजिक भी प्राय. इस रस को पाने के लिए तत्पर नही होते हैं। अत नाटककार को इस बात का सर्वदा ध्यान रखना पड़ता है कि विरोधी रस असगति भाव से उत्पन्न न होने पाए। देशपाण्डे जी का कथन है कि नाटक मे रसोद्रेक होना अनिवार्य है यदि अग्नि जलाता नहीं, जल भिगाता नहीं, हिम शीत देता नही, और शर्करा मधुर आस्वाद देती नही, तो वे नही के बराबर है। वैसे ही यदि नाटक के दर्शन से रसोत्पत्ति नही तो वह नाटक ही नही।[1]

वस्तुत: हास्य रस का उपयोग नाटककार अपने नाटको को रोचक बनाने के

१—प्रो० मो० गा० देशपाण्डे आलेख 'मराठी नाटक' का० ना० प्र० सभा के हीरक जयती ग्रन्थ में, पृ० ३९०

हेतु करते है, और इसका प्रयोग आवश्यक भी है। यदि नाटक मे हास्य रस का प्रयोग न हुआ तो परिस्थिति चाहे करुण हो अथवा सुखान्त हो वह सर्वदा मनोरजक नही बनी रह सकती। दर्शकगण उद्विग्न होकर उस नाटक की समाप्ति के समय की प्रतीक्षा करते है। बात यह है कि सामाजिक भी बीच-बीच मे विश्राम चाहते हैं। दर्शकों के समक्ष एक ही प्रकार की मनोवृत्ति उपस्थित होने से उन्हे उचाट-सा लगने लगता है। इसी कारण पाठको का ध्यान नाटक की ओर आकृष्ट करने के हेतु यह अत्यन्त आवश्यक है कि हास्य रस का प्रयोग किया जाये।

नाटको मे रस का प्रयोग न करने से उसमें नीरसता आ जाती है और पाठकों को उतना आनन्द प्राप्त नही होता जितना कि रसपूर्ण नाटको के द्वारा प्राप्त होता है। इस प्रकार नाटको के अन्तर्गत हास्य रस का विधान आवश्यक है जिससे पाठकगण को आनन्द की प्राप्ति हो। यह स्पष्ट है कि रस नाटक का अनिवार्य तत्व है और साहित्य मे इसे बहुत ऊँचा स्थान प्राप्त हुआ है।

हिन्दी मे हास्य रसपूर्ण नाटको के विभिन्न उदाहरण मिलते है। प्रसाद कृत 'विशाख' मे एक सुन्दर उदाहरण है जो डरे हुए बौद्ध भिक्षु का है, जैसे—

भिक्षु : अच्छा बैठ जाऊँ! (बैठता है प्रेमानन्द नाक बजाता है जिसे सुनकर भिक्षु चौंक कर खड़ा हो जाता है) भिक्षु—नमोतस्य—नमो—न न में नही भगवती—(भग जाता है। कांपता है, शब्द बन्द होता है, भिक्षु फिर डरता हुआ बैठता है और कांपता हुआ सूत्रपाठ करने लगता है, लोमड़ी दौड़ कर निकल जाती है भिक्षु घबड़ाकर जय चक्र फेंक मारता है।)

प्रेमानन्द : (स्वगत) वाह, जयचक्र तो सुदर्शन चक्र का काम दे रहा है। देखू इसकी क्या अभिलाषा है।

भिक्षु : (टूटा हुआ जय चक्र लेकर, बैठकर)—यहाँ तो भगवान लोमड़ी के रूप मे आकर भाग जाते है और मुझे भी भगाना चाहते है क्या करूँ।[१]

उपर्युक्त उदाहरण मे हमे भिक्षु के कार्य पर हँसी आती है। यद्यपि चरित्र का हास शब्दावली द्वारा प्रकट किया जाता है फिर भी वह शब्दो पर आश्रित न होकर अपनी असम्बद्धता पर आधारित है।

प्रसाद जी के नाटकों में उपहास एव व्यंग्य का प्रयोग, भी मिलता है। 'विशाख' नाटक में महापिंगलक का उपहास है। तीसरे अंक के प्रथम दृश्य मे नर-देव के कहने पर कि 'क्या तू मेरे प्रेम की अवहेलना करना चाहता है, अभी उसको आज्ञा से यह कटार अपने वक्षस्थल पर उतार सकता हूँ।' महापिंगलक कहता है—

१—जयशंकर प्रसाद—विशाख—पृ० ६४

'और क्या प्रेम इसे कहते हैं, हाँ जी, प्रेम भी तो राजाओं का है।'[1]

कहीं कहीं पर उनके नाटकों में व्यंग्य मार्मिक बन कर लक्ष्य पर प्रहार करता है। इसका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण वसन्तक के अन्तिम वाक्य में है—

'वसन्तक—महाराज ने एक दरिद्र कन्या से विवाह कर लिया है।

जीवक—तुम्हारे ऐसे चाटुकार और चाट लगा देंगे, दो चार और जुटा देंगे।

वसन्तक—श्वसुर ने दो व्याह किये तो दामाद ने तीन। कुछ उन्नति ही हो रही है।'[2]

जी० पी० श्रीवास्तव के नाटकों में शुद्ध हास्य का भी विधान हुआ। उनके पात्रों में मनुष्य की आदतों का चित्रण करके हास्य का उद्रेक किया गया है। उदाहरण के लिए 'मरदानी औरत' में सम्पादक वटाधार 'स' के स्थान मे 'श' का उच्चारण करते है। जब पेटूमल साश्चर्य उनसे पूछते है—'तुम तो कुछ पढे नही हो खत तक लिखना नही जानते हो' तब वण्टाधार उत्तर देते है—'तभी तो शम्पादक बन गए। लेखक बनते तों लेख लिखना पड़ता, कवि बनते तो कविता करनी पड़ती और शम्पादक बनने मे मजे शे बैठे-बैठे धन-लूट कर तोंद फुलानी पड़ती है, और यों मुफ्त के साहित्य के शपूत कहलाते हैं। जब शे सम्पादक बने है तब शे शाढ़े सत्रह इंच तोंद बढ़ गयी है। चाहे नाप के देख लो।'[3]

हास्य रसपूर्ण नाटकों में घटना के साथ ही साथ जब चरित्र-चित्रण भी होता है तो वे नाटक उच्च समझे जाते हैं। दर्शक कौतूहलवर्धक घटना का विधान चरित्र की सीमा में देख कर प्रसन्न हो उठते हैं। चरित्र चित्रण की अभिव्यक्ति के प्रति वे सजग हो जाते है और हास्यपूर्ण अभिनयों में नाटककार के कौशल की प्रशंसा करते है।

□

---

१. विशाख—जयशंकर प्रसाद—अंक ३, दृश्य १ पृ० ५६

२. अजातशत्रु—वही—पृ० ६२

३. मर्दानी औरत—जी० पी० श्रीवास्तव—पृ० ३६

तृतीय अध्याय : नाटक का हास्य-पात्र : विदूषक

१—विदूपक
२—अंग्रेजी साहित्य में विदूपक की स्थिति
३—विदूपक की कोटियाँ
४—विदूपक का वर्ण
५—विदूपक का नामकरण
६—विदूपक की अवस्था
७—पात्र के रूप में विदूपक की महत्ता
८—विदूपक की वाणी एवं भाषा
९—विदूपक का चरित्र
१०—विदूपक के लक्षण
११—विदूपक के पेटूपन के उदाहरण
१२—हिन्दी नाटकों में विदूपक की स्थिति एवं महत्व
१३—निष्कर्ष

विदूषक

हास्य रस के सम्बन्ध में नाटकों में विभिन्न पद्धतियाँ प्रचलित है। यथार्थ रूप से हास्य रस ही नाटक का महत्वपूर्ण तत्व है क्योंकि इसके अभाव में साधारणतः नाटक नीरस हो जाता है। अतः प्राचीन भारतीय नाटकों को सफल बनाने के लिए उसमे हास्य रस का प्रयोग किया गया है। सामान्य रूप से नाटको मे विदूषक ही हास्योत्पादन का एक मात्र साधन-पात्र होता है।

प्रायः देखा गया है कि कुछ नाटकों मे विदूषक को स्थान नही दिया जाता, वरन् किसी पात्र द्वारा हास्योत्पादन का कार्य करा दिया जाता है। विदूषक तथा उस पात्र में केवल इतना अन्तर है कि जहाँ विदूषक अपने विचित्र वेश विन्यास से सहज ही हास्य की सृष्टि करता है वहाँ सामान्य पात्र वाग्विलास अथवा किसी मनोरंजक संकेत के द्वारा हास्य की स्थिति उत्पन्न करता है। भले ही उसमें विदूषक जैसी चंचलता और चपलता न हो। हिन्दी नाट्य प्रणाली इन दोनो प्रकार के हास्योत्पादन की प्रक्रिया के लिए संस्कृत नाट्य शास्त्र की ऋणी है।

संस्कृत के नाटकों पर दृष्टिपात डालने से यह ज्ञात होता है कि हास्य-पात्र विदूषक का निवेश श्रृंगार रस द्वारा आप्लावित एवं प्रेम-कथा पर आधारित नाटको मे ही होता है। इस प्रकार नाटको में नायक नायिका एक दूसरे में अवद्ध रहते है। श्रृंगारिक नाटको के अन्तर्गत श्री हर्ष कृत 'रत्नावली' कालिदास कृत 'अभिज्ञान शाकुन्तल', शूद्रक कृत 'मृच्छकटिक' आदि रूपक होते है। गम्भीर तथा वीर रसपूर्ण नाटकों में विदूषक का साधारणतः अभाव रहता है क्योंकि गम्भीर नाटको मे विविध प्रकार की समस्याओ का आरोहावरोह हास्य के लिए कोई अवकाश नही देता।

प्रेममूलक नाटकों मे ही विदूषक का समावेश न्यायोचित है क्योंकि प्रेममूलक नाटको मे ही श्रृगार रस निहित रहता है। श्रृंगार रस को 'रसराज' की संज्ञा प्रदान की गई है और सब रस श्रृंगार रस के ही आश्रित होते है। वस्तुतः हास्यादि रस श्रृंगार रस को प्रेरित करने के लिए होते हैं। अतः विदूषक का हास्योत्पादन नाटक के रस को

चरमावस्था तक पहुँचाने मे सहायक होता है। नाट्यशास्त्र में आचार्य भरत ने विदूषक की महत्ता पर प्रकाश डाला है। भरत के मतानुसार विदूषक एक उत्कृष्ट कोटि का पात्र है। स्वत यह पात्र नाटक के कार्य व्यापार, वाक्य चातुर्य, आदि को सरसता प्रदान करता है तथा नाटक के उद्देश्य की पूर्ति में भी सहायक सिद्ध होता है।

अंग्रेजी साहित्य मे विदूषक की स्थिति :—

अंग्रेजी साहित्य में विदूषक का रूप कुछ स्थिर हो गया है किन्तु उसकी प्रारम्भिक छाया हमे प्राचीन नाटक 'मौरेलिटीज' तथा 'मिरेकिल्स' मे स्पष्ट झलकती है। वस्तुत इस प्रकार का प्रयोग सस्कृत नाटको में नही हो पाया है। कुछ विद्वानो के कथनानुसार महाव्रत अनुष्ठान मे जो पात्र ब्रह्मचारी के रूप में राज्य दरबार की विलासिनी से अश्लील एव अशिष्ट वार्तालाप करता है कदाचित् वह विदूषक का मूल रहा होगा। महाकवि शेक्सपियर के नाटको का विदूषक नायक के चरित्र के विकास की कसौटी बन जाता है और उसके अन्तर्द्वन्द्व को तीव्रता प्रदान करता है तथा हृदय को अधिक रागात्मक बनाने मे सहायक होता है।

पाश्चात्य नाटको में विशेषत शेक्सपियर के महान् नाटको मे विदूषक अधिकतर दुखान्त भावना की तीव्रता का शमन करता है और उसका प्रतिरोध भी उपस्थित करता है। विदूषक अपने जीवन को न दुखमय और न सुखमय समझता है बल्कि दोनो को प्रस्तुत करना उसका ध्येय होता है। सस्कृत नाटक प्रणाली के विदूषक की वेषभूषा तथा अंग्रेजी साहित्य के प्राचीन नाटको में प्रयुक्त विदूषक की रुचि की विशेषताएँ समान दृष्टिगत होती है। 'मोरेलिटीज' तथा 'मिरेकिल्स' नाटको आदि में जो पात्र है वे मानव के गुणो एव अवगुणा के मानवीकरण की भावना के रूप है। वे उसका प्रतीकात्मक रूप धारण कर रगस्थल पर आते है, उसी भाँति सस्कृत नाटको मे जहाँ विदूषक अपने मुख पर कोई विचित्र एव मनोरजक चेहरा लगाकर रगस्थल पर आता है तो वह पश्चिमी प्रतिरूप से समानान्तर स्थापित कर लेता है। कीथ महोदय ने विदूषक के नाम की व्युत्पत्ति और उसकी भूमिका पर विवेचन करते हुए कहा है कि विदूषक के नामकरण में ही विद्वता, विचित्रता, विलक्षणता आदि गुणो का सम्मिश्रण दृष्टिगत होता है और वह नायक का निरन्तर विश्वसनीय पात्र होता है। जब कभी विपरीत और विषम परिस्थितियो में नायक चिन्तित और उदास होता है तब विदूषक ही एक मात्र पात्र है जो नायक से परिहास करता हुआ उसकी चिन्ताओं का बोझ हल्का करता है और उसे दैनिक जीवन के कार्यों में प्रवृत्त करता है तथा विनोद और परिहास को यह स्वय अपने ऊपर घटित कर लेता है। इस प्रकार नायक को चिन्ता मुक्त करते हुए उसका मानसिक सन्तुलन स्थिर करता है।

विदूपक की कोटियाँ—

विदूपक न केवल एक स्वतंत्र रूप में रगमच पर हमारे समक्ष उपस्थित होता है वल्कि नायक के मित्र रूप म भी कार्य करता है। अत विदूपक नाटक के नायक का विश्वसनीय पात्र होता है। 'मृच्छकटिक' मे मैत्रेय चारुदत्त का, 'विक्रमोर्वशीय' मे माणवक राजा पुरुरवा का, 'मालविकाग्निमित्र' मे गौतम अग्निमित्र का, 'शकुन्तला' में माणवक दुष्यन्त का, 'अविमारक' में सन्तुष्ट अविमारक का, 'स्वप्नवासवदत्ता' में विदूपक राजा उदयन का, कुन्दमाला मे विदूपक राजा का अन्तरग मित्र है। अत इन उदाहरणो से यही ज्ञात होता है कि विदूपक राजा का विश्वसनीय पात्र होता है। यह नायक की दुर्वलताओ तथा अन्य महत्वपूर्ण कार्यों का ज्ञान कराता है।' प्रेम व्यापार म विदूपक ही नायक का सहायक होता है। इसलिए विदूपक को 'कामसचिव' शब्द से सबोधित किया गया है।

विदूपक का वर्ण :—

विदूपक प्राय ब्राह्मण अथवा उच्च कुल का होता है। पाश्चात्य सस्कृत विद्वानो ने जैसे 'कीथ' और 'विलसन' आदि ने भी इस वात पर अपने विचार प्रकट किए हैं कि विदूपक ब्राह्मण ही क्यो रखा जाए ? क्योकि राजा का अन्तरग मित्र होने के कारण यह अनिवार्य है कि विदूपक ब्राह्मण अथवा उच्च कुल का महान् व्यक्ति हो तथा प्रत्येक वात का उत्तर देने में समर्थ हा। उच्चवश का इसलिए कहा है कि धार्मिक वातो में किसी प्रकार की मलिनता का आवरण न आ जाय। भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र में विदूपक को 'द्विजन्मा' शब्द से अभिहित किया है। श्रीहर्ष कृत नाटको में बसन्तक तथा गौतम माणवक के ब्राह्मण कार्य का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। कुछ स्थलो में विदूपक को 'महाब्राह्मण' एव 'ब्रह्म-बन्धु' नाम से भी सम्बोधित किया गया है। जैसे मालविकाग्नि-मित्र मे गणदास ने विदूपक को, विक्रमोर्वशीय में निपुणिका ने माणवक को, प्रिय दर्शिका मे उदयन ने बसन्तक को 'महा ब्राह्मण' शब्द से सम्बोधित किया है। इन उदाहरणो से यह स्पष्ट होता है कि विदूपक के लिए 'ब्रह्म-बन्धु' तथा 'महा ब्राह्मण' शब्द भी प्रयोग म आते है। अत इन शब्दो का प्रयोग वह अपनी प्रशसा प्राप्त करने के लिए करता है। यही कारण है 'मृच्छकटिक' नाटक में विट द्वारा ही मैत्रेय को 'महा ब्राह्मण' कहलाया गयाहै जिससे वह प्रसन्न हा जाता है। इसी प्रकार का एक स्थल स्वप्न वासवदत्ता में भी है। क्रुद्ध विदूपक को उदय द्वारा 'महा ब्राह्मण' शब्द स हर्षित करने का स्पष्ट वर्णन है।

विदूपक का नामकरण—

विदूषक के नामकरण के विषय में भी अनेक मत प्रचलित है परन्तु आचार्य भरत ने इस विषय मे अपने विचार प्रकट नही किए। साहित्य दर्पण मे विश्वनाथ जी का कथन है कि विदूपक का नाम वसन्त ऋतु या किसी पुष्प से सम्बन्धित होना चाहिए। अश्व-घोष के अप्राप्त नाटको के विषय मे कीथ महोदय का कहना है कि अश्वघोष के वसन्तक का नाम कौमुदगध था और विदूपक का नाम भास ने वमन्तक ही रखा है। कुछ सीमा तक इन उदाहरणो से यह स्पष्ट होता है कि साहित्य दर्पणकार के नियमो का पालन हुआ है किन्तु कुछ नाटककारो ने लेशमात्र भी इन नियमो का पालन नही किया है। रमार्णव सुधाकर म विदूपक के नामकरण के विषय मे भी यह नियम उपस्थित किया है कि विदूपक का नाम वसन्तक कपिलेय होना चाहिए और शारदातनय जी के कथनानुसार विदूपक का नाम शाकल्य, मौदगल्य वात्सायन, वसतक आदि होना चाहिए। यद्यपि पूर्ण रूप से इस परिपाटी के विषय मे ज्ञात नही है किन्तु इतना अवश्य है कि नाटककारो के द्वारा उपर्युक्त नियम का सामान्य रूप से पालन नही हुआ है।

विदूपक की अवस्था :—

विदूपक की अवस्था के सम्बन्ध मे कुछ भी निश्चित रूप से नही कहा जा सकता है क्योकि कुछ नाटको में उसे 'वटुक' शब्द की सज्ञा से अभिहित किया गया है। 'प्रिय दर्शिका' मे वसन्तक को मूर्ख बटुक शब्द से सम्बोधित किया है और 'रत्नावली' में ब्राह्मण बालक तथा 'कौमुदी महोत्सव' में 'वडर बटुक' कहा गया है। 'विद्धशालभजिका' में चारायण अपने को बच्चो का बाप कहता है इसीलिए यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता कि वह बटुक, वृद्ध या युवक ही था। वटुक होने के विषय मे यह कहा जा सकता है कि मृच्छकटिक नाटक में कुम्भिलक और शकार मैत्रेय को दुष्ट बटुक से अभिहित किया गया है।

उपर्युक्त विवरण से यही ज्ञात होता है कि विदूपक को कई एक नामो से सम्बो-धित किया गया है। 'प्रतिज्ञायोगन्धरायण' के तृतीयाक में यह स्पष्ट वर्णन है कि विदूपक एक ब्रह्मचारी की वेशभूषा में मिष्ठान पात्र की खोज करता है। इस समय वह भिक्षुक के रूप में प्रकट नही होता है वरन् एक ब्रह्मचारी के रूप में उपस्थित होता है क्योकि उसका स्वय का कहना है कि वह इस मिष्ठान पात्र को लेकर गुरु के पास जायेगा। कुन्दमाला के पचमाक मे राम विदूपक को बालमित्र नाम से सम्बोधित करते हैं। कौमुदी महोत्सव में सूत्रधार के दो व्यक्ति सहायक के रूप में हैं, जिनमें से तपस्वी एक बालक है। इन परिपार्श्वका में से अभिनवगुप्त के कथनानुसार एक विदूपक है।

उपर्युक्त उद्धरणो से यह सिद्ध होता है कि सस्कृत साहित्य मे वर्णित विदूषक की अवस्था कुछ नाटका मे बाल्य तथा कुछ में युवा एव कुछ नाटको म वृद्ध है। राजशेखर द्वारा रचित विद्धशालभजिका मे वर्णित है कि विदूषक चारायण अपनी पत्नी को शयन-शैय्या से यह कह कर उठाने का प्रयत्न करता है कि 'ओह मेरे बच्चो की माँ उठो, सध्या समय पूजन का है।'[1] यदि यह कथन यथार्थ है तो यह विदूषक एक वृद्ध पुरुष है। लक्षणग्रन्थो के विद्वान् विदूषक की अवस्था के विषय म मौन है। 'वेणीसहार' 'महावीर चरित्र' मे जो बटुक का प्रयोग है वह एक व्यग्यात्मक रूपक म हुआ है। 'अभिज्ञान शाकुन्तल' मे दो विरोधी प्रयोग है। एक स्थल पर बटुक का प्रयोग है तथा दूसरे स्थल पर रामानुज होने का वर्णन है, अत यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि वह एक युवक है और साज सज्जा के कारण ही वृद्ध रूप मे भी प्रतीत होने लगता है।

पात्र के रूप में विदूषक की महत्ता—

विदूषक एक स्वतन्त्र पात्र है। यह किसी अन्य पात्र पर निर्भर नही रहता वरन् अपने कार्यों की पूर्ति स्वय करता है। अत उसके महान् कार्य नाटक में एक महत्त्वपूर्ण लक्ष्य की पूर्ति कराते है। इसलिए आचार्य भरत ने नाटक के पात्रो की सूची मे विदूषक को सर्वोपरि स्थान दिया है और शारदातनय ने भी अपने ग्रथो मे विदूषक के स्थान को महत्व दिया है। हास्योत्पादन मे यह विशेष रूप से सहायक सिद्ध होता है। 'अभिनव भारती' में अभिनव गुप्त ने सूत्रधार के दो सहायको का वर्णन किया है जिसम से एक विदूषक है। यथार्थ रूप से विदूषक के कार्यकलाप नाटक तक ही सीमित रहते है, किन्तु कुछ विद्वानो के कथनानुसार विदूषक समाज में भी अपने कार्यो को प्रदर्शित करता है, जैसे कामसूत्र म इस कथन की पुष्टि होती है। कौटिल्य में भी माणवक नायक पात्र को नाटक के लिए विशेष पात्र माना है। इस प्रकार यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि पात्र के रूप मे भी विदूषक की अपनी महत्ता है। यह नायक का सहचरी पात्र भी होता है जो कि समय समय पर नायक की सहायता करता है।

विदूषक की वाणी एव भाषा—

नाट्यशास्त्र के अनुसार विदूषक नायक का सहचर और सखा होता है। यह भी निर्दिष्ट किया गया है कि वह शास्त्रज्ञ और विद्वान होते थे साथ ही साथ जीवन के विविध कार्यकलापो में अपनी दृष्टि रखते थे। इस मान्यता से यह निष्कर्ष सहज ही निकाला जा सकता है कि उसकी भाषा अत्यन्त परिष्कृत और साहित्यिक धरातल की होनी चाहिए।

---

१ हिन्दी अनुशीलन-अक १—जनवरी, मार्च १९५९, पृ० २३

विदूषक से यह भी आशा की जाती है कि वह हास और परिहास में अपनी विशिष्ट प्रतिभा का प्रयोग करने में कुशल होता है। ऐसी स्थिति मे साहित्यिक भाषा में तभी हास एव परिहास का प्रयोग हो सकता है जब कि श्लेष एव यमक का आश्रय लिया जाये एव अभिधा के साथ लक्षणा तथा व्यजना का प्रयोग भी किया जाए। इस प्रकार विदूषक की भाषा साहित्यिक चमत्कार से परिपूर्ण होनी आवश्यक है। सस्कृत साहित्य मे भाषा का विधान यह है कि राजा एव पण्डित वर्ग के द्वारा सस्कृत, सामान्यवर्ग तथा स्त्रियो द्वारा प्राकृत तथा निम्नवर्ग एव विदेशियो द्वारा अपभ्रश अथवा स्थानीय प्राकृत बोली जानी चाहिए। विदूषक राजा या नायक का सहचर होने के कारण सामान्य रूप से सस्कृत ही बोलता है और यह सस्कृत इतनी साहित्यिक होनी चाहिए जिसमे उसकी विद्वता और सूक्ति चमत्कार के लिए पर्याप्त अवसर मिल सके।

विदूषक के हास्योत्पादन में वाणी का भी प्रमुख स्थान है। विदूषक अश्लील वाक्य, असम्बद्ध प्रलाप और व्यग्य कटाक्ष द्वारा दर्शक वर्ग का पर्याप्त मनोरजन करता है। शारदातनय, आचार्य भरत एव रामचन्द्र आदि ने विदूषक की वाणी के सम्बन्ध मे भी प्रकाश डाला है। विदूषक की वाणी असम्बद्ध, विकृत, अशिष्ट, निरर्थक आदि होती है। इससे यह प्रतीत होता है कि शारीरिक कुरूपता से उसकी भिन्न विकृता शक्ति भी हास्योत्पादन मे विशेष सहायक सिद्ध होता है। इस मत के लिए हमें विशेष उदाहरण मिलते है जैसे—मृच्छकटिक के नवमाक मे मैत्रेय साकार को कुटिनीपुत्र एव कुलटा-पुत्र से अभिहित किया है और 'मालविकाग्निमित्र' नाटक मे गौतम इरावती को दासी की दास सुता के नाम से सम्बोधित किया है। अत यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि विदूषक विकृत वाणी का प्रयोग कर स्वत की उद्देश्य पूर्ति मे सफलता प्राप्त करता है। यह एक विद्वान् तथा अनुभवी व्यक्ति होता है और नायक को उचित परामर्श देने के लिए सदैव तत्पर रहता है। वाणी का सम्बन्ध स्वर से है। भाषा को आधार मानकर वाणी जो परिहास के लिए अग्रसर होती है वह वक्रोक्ति का आश्रय ग्रहण करती है। यह वक्रोक्ति काकु से भी सम्पन्न होती है। इस प्रकार विदूषक के मनोभावो को व्यक्त करने में भाषा और वाणी का सम्मिलित चातुर्य अपेक्षित है।

विदूषक का चरित्र—

विदूषक का चरित्र सश्लिष्ट तथा दुरूह कहा जा सकता है क्योंकि एक ओर तो वह हास्योत्पादन के कार्य में रत रहता है और दूसरी ओर वह नायक के विश्वासपात्र के रूप म कार्य करता है। राजा के प्रेम व्यापार मे विदूषक प्रमुख पात्र होता है। कुछ विद्वानो के मतानुसार विदूषक एक विशेष जाति का व्यक्ति माना गया है जिसने उदरपूर्ति ही जीवन का लक्ष्य बना रखा है, इन्ही कारणो से विदूषक का चरित्र दुरूह प्रतीत

होता है ।

विदूषक हास्योत्पादन मे विशेष सक्रिय पात्र है । इस कार्य मे उसकी शारीरिक कुरूपता विशेष रूप से सहायक होती है । भावप्रकाश मे स्पष्ट रूप से यह प्रदर्शित होता है कि विदूषक वह है जो स्वत की शारीरिक कुरूपता, स्वत के अनर्गल प्रलाप तथा असगत वस्त्र पहन करके जन-साधारण का मनारजन करता है । आचार्य भरत का नियम भी इसी प्रकार का है । इनके अनुसार विदूषक एक ब्राह्मण होता है और उसके दात बहुत बडे हाते है तथा नेत्र कुछ लाल होते है, कुब्ज एव विकृतानन होता है । इन कथनो से यह स्पष्ट है कि शारीरिक कुरूपता या असु दरता ही हास्योत्पादन मे विशेष रूप से सहायक हाती है । शारीरिक कुरूपता विदूषक रगमच पर इसलिए उपस्थित करता है कि क्षण भर के लिए हास्योत्पादन हो सके । विदूषक स्वत की साज-सज्जा आदि के द्वारा ही कुरूपता को उत्पन्न करता है यद्यपि यह कुरूपता उसकी स्थायी नही होती है ।

सस्कृत नाटको मे हास्योत्पादन का कार्य विदूषक, विट आदि करते है । विदूषक हास्योत्पादन के लिए वेशभूषा, वाणी आदि का आश्रय लेता है । प्राय हास्योत्पादन के अतिरिक्त विदूषक अनेक कार्य करता है । नाट्यशास्त्र म भरतमुनि ने विदूषक को 'कलदे विभूषित वदन' पुकारा है । शारदातनय ने भी भावप्रकाश म यही विचार प्रकट किये हैं । अत यह स्पष्ट है कि विदूषक कृत्रिम कुरूपता से मनोरजन करने में सफल हाता है । विट का कार्य व्यापार विदूषक की भाँति व्यापक तो नही है तथापि वह परिस्थिति को इस प्रकार मोड देता है कि वह हास्यास्पद हो जाता है । विट का क्रियाकलाप नाटक की मुख्य सवेदना म कोई विशिष्ट योग तो नही रहता किन्तु विनोद या परिहास की परिस्थितियो में उसका सयाजन अवश्य हो जाता है ।

विदूषक के लक्षण :—

विदूषक के सम्बन्ध मे एक महत्वपूर्ण एव विचारणीय बात यह है कि प्राय सस्कृत के सभी नाटककारा ने विदूषक को पेटू तथा भुक्खड एव लालची प्रदर्शित किया है । यही छाप विदूषक की हमारे हिन्दी नाटका पर भी पडी है । क्या कारण है कि नाटककारा ने इस पेटूपन के गुण को विशेष रूप से महत्व दिया है । नाटक में जीवन सग्राम के विशिष्ट भाग के चित्रण में पेटूपन की पुकार, जगत् की मधुर भाषा के ऊपर मानव का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लेती है । ससार में केवल प्रेम या सग्राम सत्यता की महत्ता नही है किन्तु पेट भी एक अनिवार्य सत्य है । समाज के अधिकाश वर्गों में पेटपूर्ति का साधन अन्य साधना से कही अधिक रोचक एव आग्रहपूर्ण है । हास्य के उत्पादन म जहाँ अनेक परिस्थितियाँ सहायक हाती है वहाँ पेट की पुकार से चिल्लाना तथा प्रत्येक बात मे रूपक का आरोप करना वास्तव में हास्य का कारण हा जाता है ।

राजा अनेक प्राणियो का अन्नदाता होता है और उसे किसी भी वस्तु की कमी नही होती। अपनी समृद्धि में राजा सब प्रकार से आश्वस्त है। उसकी पाकशाला में अनेक प्रकार के व्यंजन प्रत्येक समय उपलब्ध रहते है। जहाँ भोजन के अनेकानेक भेद और उपभेद प्रस्तुत है वहाँ यदि राजा का मित्र विदूषक पेट पर हाथ फेर कर लड्डुओ को तृष्णा की दृष्टि से देखे तो आश्चर्य क्या! और यही परिस्थिति संभवतः विदूषक को पेटूपन की ओर प्रेरित करती है जिससे हास्य अनेक प्रकार से उत्पन्न होता है। विदूषक नायिका के पास जाकर नायक का सन्देश पहुँचाता है और उसकी उदासी दूर करता है। प्रसन्नता के वातावरण का निर्माण करने के लिए विदूषक को अपनी साज-सज्जा तथा वेशभूषा का सहारा लेना पड़ता है। वह अपनी तिलक-मुद्रा एवं टोपी तथा चाल-ढाल के द्वारा ही हास्य को उत्पन्न करता है। वह अपनी काया की दुहाई देकर अपनी भोजन-प्रियता तथा पेटूपन की ओर इंगित करके पाठको एव दर्शको को हंसाने का प्रयत्न करता है। इसी दृष्टिकोण को उभारने के लिए हिन्दी नाटको में भी विदूषक को महत्व दिया गया है।

विदूषक के पेटूपन के उदाहरण :—

विदूषक के पेटूपन के अनेक उदाहरण हमे सस्कृत एवं हिन्दी नाटकों में मिलते है। संस्कृत नाटककार भास के 'प्रतिज्ञायोगन्धरायण' मे विदूषक वासवदत्ता की याद करता है। यह याद इसलिए है कि वह उसकी मिठाई की चिन्ता रखती थी, उसके लिए मिठाई का प्रबन्ध करती थी।

मृच्छकटिक का विदूषक भी पेटूपन के आग्रह से मुक्त नही है। यद्यपि वह सकट के समय में भी राजा से पृथक् नही होता सर्वदा उसके हितार्थ जान पर खेल जाने के लिए तत्पर रहता है, तथापि इसमे भी उसकी भोजन लिप्सा जाग्रत रहती है। बसन्तसेना की पाँचवी ड्योढ़ी मे पहुँच कर वह कहता है—'यहाँ बसन्तसेना का रसोई गृह मालूम होता है क्योकि अनेक प्रकार के व्यंजनो मे हींग और जीरे की महक से हम जैसे दरिद्रों की लार टपकी पड़ती है—एक ओर लड्डू बंध रहे हैं दूसरी ओर मालपुआ बनता है जहाँ कदाचित् कोई मुझसे खाने को भूळे ही पूछ ले तो पाँव धो भोजन के लिए तुरन्त बैठ जाऊँ।'[1] कालिदास का माडव्य भी इस पेट-पीड़ा से आक्रान्त है। नागानन्द और रत्नावली में भी विदूषक को इसी लक्षण से संयुक्त किया गया है।

यही पेटूपन का गुण हिन्दी नाटको में प्रसाद जी के विदूषक में भी है। अजातशत्रु में उदयन का विदूषक जीवक से बात करते हुए कहता है :

---

१. 'माधुरी' वर्ष १० खण्ड २, १९३२ पृ० ३६१, ३६२

'जीवक—तुम लोग जैसे चाटुकारो का भी कैसा अधम जीवन है।

वसन्तक—और आप जैसे लोगो का उत्तम ! कोई माने चाहे न माने टाँग उड़ाये जाते है। मनुष्यता का ठेका लिए फिरते है।

जीवक—अच्छा भाई तुम्हारा कहना ठीक है जाओ किसी प्रकार से पिंड तो छूटे।

वसन्तक—पद्मावती देवी ने कहा कि आर्य जीवक से कह देना कि अजान का कोई अनिष्ट न होने पावेगा, केवल शिक्षा के लिए ही यह आयोजन है और माता जी से विनती से कह देंगे कि पद्मावती बहुत शीघ्र उनका दर्शन श्रावस्ती मे करेगी।

जीवक—अच्छा तो क्या युद्ध होना आवश्यक है ?

वसन्तक—हा जी, प्रसेनजित भी प्रस्तुत है। महाराज उदयन से मन्त्रणा ठीक हो गयी है, आक्रमण ही चाहता है। महाराज बिम्बसार की सेना ठीक रखना अब वहाँ आया ही चाहते है पत्तल परसा रहे समझा न !

जीवक—अरे पेटू, युद्ध में तो कौवे गिद्ध पेट भरते है।

वसन्तक—और हम इस आपस के युद्ध में ब्राह्मण भोजन करेंगे ऐसी तो शास्त्र की आज्ञा ही है क्योकि युद्ध से प्रायश्चित लगता है फिर तो बिना ह ह ह ह—(पेट पर हाथ फेरता है।[1])

उसका व्यग्य और हास्य भोजन को लेकर जीवक की हँसी उड़ाने तक ही सीमित रह जाता है। इस भाँति प्रत्येक बात मे पेट का रूपक परिहास का पूरा परिचय प्रदान करता है।

अग्रेजी, फ्रान्सीसी, सस्कृत एव हिन्दी के हास्य लेखको के हास्योत्पादन के सिद्धातो में समानता दृष्टिगत होती है यद्यपि प्रत्येक देश की परिस्थितियाँ तथा समस्याएँ विभिन्न प्रकार की होती है। अग्रेजी नाटको मे पारिवारिक समस्याओ की मात्रा का प्रयोग अधिक हुआ है। सभी देशों में हास्य के आलम्बनो मे सामाजिक कुरीतियाँ एव असगतियाँ मिलती है। अग्रेजी साहित्य मे विदूषक प्रधान नाटको की भोजन-प्रियता के अनेक उदाहरण मिलते हैं।

हिन्दी नाटकों मे विदूषक की स्थिति एवं महत्व :—

हिन्दी नाटको मे हास्य का प्रयोग दो रूपो में हुआ है :—

१—हास्य, जो विदूषक के द्वारा प्रयुक्त हुआ है।

२—हास्य, जिसके उत्पादन के लिए विदूषक के अतिरिक्त परिस्थिति अथवा

---

१ अजातशत्रु—जयशकर प्रसाद—अक दूसरा, नवम दृश्य पृ० ९७-९८

किसी अन्य पात्र का प्रयोग किया गया है।

विदूषक द्वारा हास्य का प्रयोग भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ने अपने नाटकों मे अत्यधिक मात्रा मे किया है। हास्य जिसके उत्पादन के लिए विदूषक के अतिरिक्त परिस्थिति अथवा किसी अन्य पात्र का प्रयोग किया गया है। सर्वप्रथम इसका प्रयोग जयशंकर प्रसाद जी एव मिश्रबन्धु जी ने अपने नाटको मे किया है। इस श्रेष्ठ विधि ने एक नवीन प्रणाली को जन्म दिया। अतः इस विधि को हम आधुनिक युग का परिवर्तित रूप कह सकते है। साम्य कोटि के नाटककारो मे पात्र बारम्बार हँसाते है, ऐसे पात्र सख्या मे एक दो से अधिक होते है। इस कोटि के नाटको के उदाहरण श्री मिश्रबन्धु के नाटक इशान वर्मन, पूर्व भारत तथा उत्तर भारत रामचरित्र आदि मे मिलते है। शिवा जी के नाटक के पात्रो द्वारा उत्कृष्ट रूप से हास्योत्पादन हुआ है। सस्कृत नाट्य शास्त्र का अत्यधिक अनुकरण रायदेवी प्रसाद पूर्ण जी ने 'चन्द्रकला भानुकुमार' नाटक मे किया है।

इस विषय के दृष्टिकोण से भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी का स्थान महत्वपूर्ण है। इन्ही के नाटकों में सर्वप्रथम हम विदूषक को पाते है। अतः इनके नाटको मे हमें विदूषक प्रायः उसी रूप मे दृष्टिगत होता है जिस रूप में संस्कृत नाटको के विदूषक कार्य करते है। यह अवश्य है कि उनके विदूषक कार्य निर्वाह मे अधिक सचेष्ट और कौतुकप्रिय होते है। साहित्यिक हास्य को प्रस्तुत करने में उनके विदूषको की भाव-भूमि वैसी ही उर्वर है जैसी संस्कृत नाटककारो के विदूषको की हो सकती है।

उदाहरण के लिए 'वैदिकी हिंसा-हिंसा न भवति' का उदाहरण देखिए—

विदूषक—हे भगवान, इस बकवादी राजा का नित्य कल्याण हो, जिससे हमारा नित्य पेट भरता है। हे ब्राह्मण लोगो! तुम्हारे मुख में सरस्वती हंस सहित बास करे और उनकी पूंछ मुँह मे न अटके। हे पुरोहित नित्य देवी के सामने भराया करो और प्रसाद खाया करो।

विदूषक—क्यो वेदान्ती जी, आप मास खाते है या नही?

वेदान्ती—तुमको इससे क्या प्रयोजन है?

विदूषक—नही कुछ प्रयोजन तो नही है हमने इस वास्ते पूछा है कि आप तो वेदान्ती अर्थात् बिना दांत है सो कैसे भक्षण करते होगे।[१]

इस कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतेन्दु के विदूषक कितने वाक्पटु और संवाद कुशल है। इन सवादो में कही-कही उत्कृष्ट कोटि का हास्य प्रयुक्त होता है।

नाटक की कथावस्तु को दृष्टि मे रखते हुए, विदूषक की दो कोटियाँ हो जाती है—

---

१. वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति भारतेन्दु हरिश्चन्द्र—द्वितीय अंक—पृ० ११४

१—ऐसे नाटक, जिसमे विदूषक नायक से सम्बन्धित होता है। इस कोटि के अन्तर्गत प्रसाद जी के 'स्कन्दगुप्त' और 'विशाख' तथा श्रीनिवास दास जी के 'रणधीर' और 'प्रेममोहिनी' आते है।

२—दूसरी श्रेणी ऐसे नाटको की है जिनमे नायक विदूषक से प्रत्यक्ष रूप से सबधित नही रहता है। जैसे प्रसाद जी का 'अजातशत्रु' नामक नाटक इस कोटि के अन्तर्गत आता है।

विदूषक पर दृष्टिपात करते हुए तथा उन भेदो को ध्यान में रखते हुए हम विदूषक का अध्ययन सरलतापूर्वक कर सकते है।

प्रथम : करुण अथवा शान्त रस की तीव्रता का अवरोध :—

नाटक मे ऐसी अनेक स्थितियाँ आती है जहाँ पर करुण या वैराग्य का इतना बोझ दर्शकों के हृदय पर पडता है कि सामान्य स्थिति मे वह उसे वहन नही कर सकते। ऐसी स्थिति में नाटक की मुख्य सवेदना के अग्रसर करने के हेतु रसोमय विविधता लाने के लिए विदूषक के प्रवेश की आवश्यकता समझी जाती है। इससे परिस्थितियों और भावो की आवश्यक्ता से अधिक परिणति नही होने पाती, हम मनोवैज्ञानिक ढग से भावो के अत्यधिक बोझ से मुक्त हो जाते है। अभिज्ञान शाकुन्तल मे दुष्यन्त को विरह के अवसाद से मुक्त करने का कार्य नाटक द्वारा ही होता है। प्रसाद के अजातशत्रु मे राजनीति विद्रोहो की अशान्ति से जो मुक्ति प्राप्त होती है उसमे वसन्तक का बहुत बडा हाथ है। अत नाटक के अन्तर्गत विविध रसो के सन्तुलन का कार्य विदूषक के द्वारा बडी सरल्ता से हो सकता है।

द्वितीयः गम्भीर वातावरण में विनोद :—

नाटक में अनेक परिस्थितियाँ ऐसी उपस्थित हो जाती हैं जिसका हल प्रत्यक्षतः दृष्टिगत नही होता है। अनेक समस्याएँ ऐसी आती हैं जिनका समाधान बुद्धि के प्रयोग से सम्भव नही होता है, ऐसी परिस्थिति मे विदूषक का विनोद अनेक परिस्थितियो को हल कर देता है। उदाहरण के लिए श्री माखनलाल चतुर्वेदी रचित कृष्ण-अर्जुन मे महर्षि गालव की अभिशापमयी मुद्रा का समाधान शख के हाथ से हो जाता है।

तृतीयः परिस्थिति विपर्यय से मनोरंजन :—

नाटक मे जब कोई चिन्तापूर्ण अथवा भय-सकुल परिस्थिति आती है तो उसके समानान्तर परिस्थिति को उल्ट देने से नाटक में मनोरजन की सृष्टि हो जाती है। उदाहरण के लिए स्कन्दगुप्त के प्रथम अक के दूसरे दृश्य में जहाँ पृथ्वी सेना और भट्टार्क-सौराष्ट्र पर आक्रमण की बात कर रहे है वहाँ मुद्गल कहता है जय हो देव! पाकशाला

किसी अन्य पात्र का प्रयोग किया गया है।

विदूषक द्वारा हास्य का प्रयोग भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ने अपने नाटका मे अत्य-धिक मात्रा में किया है। हास्य जिसके उत्पादन के लिए विदूषक के अतिरिक्त परिस्थिति अथवा किसी अन्य पात्र का प्रयोग किया गया है। सर्वप्रथम इसका प्रयोग जयशकर प्रसाद जी एव मिश्रबन्धु जी ने अपने नाटका म किया है। इस श्रेष्ठ विधि ने एक नवीन प्रणाली को जन्म दिया। अत इस विधि को हम आधुनिक युग का परिवर्तित रूप कह सकते है। साम्य कोटि के नाटककारा मे पात्र बारम्बार हँसाते है, ऐसे पात्र सख्या में एक दो से अधिक होते है। इस कोटि के नाटका के उदाहरण श्री मिश्रबन्धु के नाटक इशान वर्मन, पूर्व भारत तथा उत्तर भारत रामचरित्र आदि म मिलते है। शिवा जी के नाटक के पात्रा द्वारा उत्कृष्ट रूप से हास्योत्पादन हुआ है। सस्कृत नाट्य शास्त्र का अत्यधिक अनुकरण रायदेवी प्रसाद पूर्ण जी ने 'चन्द्रकला भानुकुमार' नाटक में किया है।

इस विषय के दृष्टिकोण से भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी का स्थान महत्वपूर्ण है। इन्ही के नाटको म सर्वप्रथम हम विदूषक को पाते है। अत इनके नाटका मे हमें विदूषक प्राय उसी रूप में दृष्टिगत होता है जिस रूप मे सस्कृत नाटको के विदूषक कार्य करते है। यह अवश्य है कि उनके विदूषक कार्य निर्वाह में अधिक सचेष्ट और कौतुकप्रिय होते है। साहित्यिक हास्य को प्रस्तुत करने में उनके विदूषको की भाव-भूमि वैसी ही उर्वर है जैसी सस्कृत नाटककारो के विदूषको की हो सकती है।

उदाहरण के लिए 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' का उदाहरण देखिए—

विदूषक—हे भगवान, इस बकवादी राजा का नित्य कल्याण हो, जिससे हमारा नित्य पेट भरता है। हे ब्राह्मण लोगो! तुम्हारे मुख मे सरस्वती हस सहित वास करे और उनकी पूंछ मुँह म न अटके। हे पुरोहित नित्य देवी के सामने भराया करो और प्रसाद खाया करो।

विदूषक—क्या वेदान्ती जी, आप मास खाते है या नही?

वेदान्ती—तुमको इससे क्या प्रयोजन है?

विदूषक—नही कुछ प्रयोजन तो नही है हमने इस वास्ते पूछा है कि आप तो वेदान्ती अर्थात् बिना दाँत है सो कैसे भक्षण करते होगे।[१]

इस कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतेन्दु के विदूषक कितने वाक्पटु और सवाद कुशल है। इन सवादो म कहीं-कहीं उत्कृष्ट कोटि का हास्य प्रयुक्त होता है।

नाटक की कथावस्तु को दृष्टि मे रखते हुए, विदूषक की दो कोटियाँ हो जाती है—

---

१ वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति भारतेन्दु हरिश्चन्द्र—द्वितीय अ०—पृ० ११४

१—ऐसे नाटक, जिसमे विदूषक नायक से सम्बन्धित होता है। इस कोटि के अन्तर्गत प्रसाद जी के 'स्कन्दगुप्त' और 'विशाख' तथा श्रीनिवास दास जी के 'रणधीर' और 'प्रेममोहिनी' आते है।

२—दूसरी श्रेणी ऐसे नाटको की है जिनमे नायक विदूषक से प्रत्यक्ष रूप से सबधित नही रहता है। जैसे प्रसाद जी का 'अजातशत्रु' नामक नाटक इस कोटि के अन्तर्गत आता है।

विदूषक पर दृष्टिपात करते हुए तथा उन भेदो को ध्यान मे रखते हुए हम विदूषक का अध्ययन सरलतापूर्वक कर सकते है।

प्रथम : करुण अथवा शान्त रस की तीव्रता का अवरोध :—

नाटक मे ऐसी अनेक स्थितियाँ आती है जहाँ पर करुण या वैराग्य का इतना बोझ दर्शको के हृदय पर पडता है कि सामान्य स्थिति मे वह उसे वहन नही कर सकते। ऐसी स्थिति मे नाटक की मुख्य सवेदना के अग्रसर करने के हेतु रसोमय विविधता लाने के लिए विदूषक के प्रवेश की आवश्यकता समझी जाती है। इससे परिस्थितियां और भावों की आवश्यक्ता से अधिक परिणति नही होने पाती, हम मनोवैज्ञानिक ढग से भावो के अत्यधिक बोझ से मुक्त हो जाते है। अभिज्ञान शाकुन्तल मे दुष्यन्त को विरह के अवसाद से मुक्त करने का कार्य नाटक द्वारा ही होता है। प्रसाद के अजातशत्रु मे राजनीति विद्रोहो की अशान्ति से जो मुक्ति प्राप्त होती है उसमे वसन्तक का बहुत बड़ा हाथ है। अत नाटक के अन्तर्गत विविध रसो के सन्तुलन का कार्य विदूषक के द्वारा बडी सरलता से हो सकता है।

द्वितीय: गम्भीर वातावरण में विनोद :—

नाटक मे अनेक परिस्थितियाँ ऐसी उपस्थित हो जाती हैं जिसका हल प्रत्यक्षत: दृष्टिगत नही होता है। अनेक समस्याएँ ऐसी आती हैं जिनका समाधान बुद्धि के प्रयोग से सम्भव नही होता है, ऐसी परिस्थिति मे विदूषक का विनोद अनेक परिस्थितियो को हल कर देता है। उदाहरण के लिए श्री माखनलाल चतुर्वेदी रचित कृष्ण-अर्जुन में महर्षि गालव की अभिशापमयी मुद्रा का समाधान दांस के हाथ से हो जाता है।

तृतीय: परिस्थिति विपर्यय से मनोरंजन :—

नाटक में जब कोई चिन्तापूर्ण अथवा भय-सकुल परिस्थिति आती है तो उसके समानान्तर परिस्थिति को उलट देने से नाटक में मनोरंजन की सृष्टि हो जाती है। उदाहरण के लिए स्कन्दगुप्त के प्रथम अंक मे दूसरे दृश्य में जहाँ पृथ्वी सेना और भट्टार्क-सौराष्ट्र पर आक्रमण की बात कर रहे है वहाँ मुद्गल कहता है जय हो देव ! पाकशाला

पर चढ़ाई करनी हो तो मुझे आज्ञा मिले। मै अभी उसका सर्वस्वान्तर कर डालूं।[1] विदूषक द्वारा पाकशाला पर आक्रमण करने की बात विनोद उत्पन्न करने के लिए ही प्रस्तुत की जाती है।

चतुर्थः परिहास :—

किसी दार्शनिक सिद्धान्त या समस्या पर विचार करते समय जब उस समस्या के समानान्तर किसी विनोदात्मक भाष्य या टीका की अवतारणा की जाती है तो इस कार्य मे विदूषक का विशेष हाथ रहता है। इस प्रकार की व्याख्या से सिद्धान्त की अवहेलना तो नही होती किन्तु हास्य की सरणियाँ प्रस्तुत हो जाती है। उदाहरण के लिए स्कन्दगुप्त के प्रथम अंक के छठे दृश्य में मातृगुप्त एवं मुद्गल के वार्तालाप मे यह झलक देखी जा सकती है।

मातृगुप्त—हाँ तुमने गीता पढ़ी होगी ?

मुद्गल—हां अवश्य, ब्राह्मण और गीता न पढ़े ?

मातृ०—उसमें तो लिखा है कि 'न त्वे वाहं जातु ना सौ न त्व नेने नहम' है, न तुम हो, न यह वस्तु है न तुम्हारी है, न हमारी। फिर इस छोटी-सी गठरी के लिए इतना झगड़ा ?

मुद्गल—ओ हो ! तुम नही समझ।

मातृ०—क्या !

मुद्गल—गीता सुनने के बाद क्या हुआ ?

मातृ०—महाभारत।

मुद्गल—तब भइया इसी गठरी के लिए महाभारत का एक लघु सस्करण हो जाना आवश्यक है। गठरी में हाथ लगाया कि डंडा लगा।[2]

इसी प्रकार श्री माखनलाल चतुर्वेदी के 'कृष्णार्जुन युद्ध' नाटक में शशि जब अमरकोष का श्लोक पढ़ता है—'यस्य ज्ञान दयासिन्धो'
तो शंख उसी के आधार पर व्याख्या करता है—

'पुस्तक पढ़ हुआ अन्धो'

पंचम : साहित्यिक विनोद :—

किसी परिस्थिति को मनोरंजक या सहज बनाने के लिए श्लेष या यमक के सहारे अथवा किसी लोकोक्ति के माध्यम से विनोद उपस्थित किया जाता है। उदाहरण के लिए

---

१. जयशंकर प्रसाद—स्कन्दगुप्त—प्रथम अंक, छठा दृश्य—पृ० ३८

२—स्कन्दगुप्त—जयशंकर प्रसाद—प्रथम अंक, छठा दृश्य, पृ० ३८

अजातशत्रु के तीसरे अंक के छठे दृश्य में वसन्तक का कथन देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए 'ब्रह्मा भी कभी भोजन करने के पहिले मेरी ही तरह भाग पी लेते होंगे, तभी तो ऐसा उलट फेर...ऐ किन्तु, परन्तु तथापि वही कहावत 'पुनर्मूषिको भव'। एक चूहे को किसी ऋषि ने दया करके व्याघ्र बना दिया, वह उन्ही पर गुर्राने लगा, जब झपटने लगा तो चट से बाण जी बोले—'पुनर्मूषिको, भव'...जा बच्चा, फिर चूहा बन जा। महादेवी, वासवदत्ता को यह समाचार चल कर सुनाऊँगा। अरे उसी के फेर में मुझे देर हो गई। महाराज ने वैवाहिक उपहार भेजे थे, सो अब तो मैं पिछड़ गया। लड्डू तो मिलेंगे। अजी बासी होगा तो क्या मिलेगा तो। ओह, नगर में तो आलोक माला दिखायी देती है। सम्भवतः वैवाहिक महोत्सव का अभी अन्त नही हुआ, तो चलूँ[1]।'

इस प्रकार विदूषक के अध्ययन मे हमें पाँच तत्वों का सरलता से परिचय मिल जाता है।

अब हम विदूषक विहीन नाटको पर विचार करेंगे—

यह देखा जा चुका है कि विदूषक प्रायः ऐसे नाटको मे स्थान पाते है जहाँ नायक राजा अथवा अभिजात्य वर्ग के व्यक्ति होते है। जहाँ नाटक की कथा-वस्तु सामान्य कोटि के पात्रो द्वारा ही निर्मित होती है वहाँ विदूषक के लिए कोई आश्रयदाता ही नही होता। ऐसी स्थिति में विदूषक के बदले किसी अन्य पात्र द्वारा ही हास्य की सृष्टि होती है। ऐसे विदूषक-विहीन नाटको को हम निम्नलिखित भेदों मे बाट सकते है—

१—प्रहसन—ऐसे नाटको मे कथावस्तु स्वयं ही हास्योत्पादक और उनमें भ्रान्त होता है। ऐसे नाटक प्रहसन के अन्तर्गत आते है। इस कोटि में जी० पी० श्रीवास्तव का 'कुर्सी मेज़' और बदरीनारायण भट्ट का 'घोघा बसन्त' तथा श्री सुदर्शन जी का 'आनरेरी मजिस्ट्रेट' आदि है।

२—उपहासात्मक—इस कोटि में वे नाटक आते है जिनमें उपहास का प्रयोग हुआ है अतः ये उपहासात्मक नाटक कहे जा सकते हैं। श्री जी० पी० श्रीवास्तव का 'साहित्य का सपूत', भट्टजी का 'मिस अमेरिकन' और डा० रामकुमार वर्मा का 'पृथ्वी का स्वर्ग' इनके उदाहरण है।

प्रायः इस भाँति हम देखते हैं कि विदूषकविहीन नाटको के अनेक भेद हो सकते है। इन भेदो के अन्तर्गत हास्यात्मक अथवा परिहासात्मक नाटक भी हो सकते है। उदाहरण के लिए—डा० गोपीनाथ तिवारी द्वारा लिखित 'मिस्टर जी० एम० वर्मा—कालिज में' परिहासात्मक नाटक के अन्तर्गत बुद्धिचन्द जब बी० ए० प्रथम वर्ष में प्रवेश करने के लिए मि० वर्मा से बात करता है तो मि० वर्मा बुद्धिचन्द से १०० रुपये लेकर

१—अजात शत्रु—तीसरा अंक, छठा दृश्य, पृ० १६५

तीन पत्र लिखने की बात कहता है जो हास्य उत्पन्न करते है ।

मि० वर्मा—मै तीन पत्र दूँगा । १—महाशय प्रतापनारायण एम० ए० को । उनकी तूती बोलती है । पैसा ऐंठना खूब आता है । डी० एस० पी० वगैरा सब डरते है चूं तक नही करते । पक्का नेता है । बस केवल सच बोलने की कसम खा रखी है । प्रिंसिपल उन्ही की सृष्टि है, चूं न करेगा वे एक पत्र आपको देंगे । मेरे रिश्तेदार है । २—वाइस प्रिंसिपल को एक बडी मछली रोहू, सौगात में आप ही दे दो । मेरे मित्र मिस्टर मुखर्जी साथ जायेंगे । मछली देखते ही मुँह में पानी भर आयेगा फिर चाहे जो कुछ करा लेना । ३—हेड क्लर्क को एक बोतल । बस काम बना समझो[१] ।'

प्रहसन की कथा अतिरंजित होती है और प्रहसन के पात्र भी दर्शकों को हँसाते है । उपहासात्मक नाटका में सुधार की भावना निहित रहती है । प० बदरीनारायण भट्ट के उपहासात्मक नाटक 'मिस अमेरिकन' मे अंग्रेजी नरेशो तथा सेठो पर आक्षेप किए गए है ।

आधुनिक युग मे साहित्यिक हास्य का उत्कृष्टतम प्रयोग महान् नाटककार श्री जयशंकर प्रसाद जी ने अपने नाटको में किया है । विदूषक की हास्य-परम्परा के स्थान पर उन्होने अनेक प्रसगो पर हास्य की सृष्टि अन्य पात्रो द्वारा भी कराई है । इस क्षेत्र में 'प्रसाद' के बाद मिश्रबन्धुओं ने भी विदूषक-रहित हास्य के प्रयोग अपने नाटको मे किए है । इनके हास्योत्पादक पात्रो में कोई सिपाही है तो कोई नागरिक है । कही-कही अनेक ग्रामीण पात्र, जो विविध बोलियो के प्रयोग से हास्य की सृष्टि करते है । मिश्रबन्धुओ के नाटकों से यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने भी सफल हास्य का सृजन किया है । पात्रों ने भी खूब चतुराई के साथ अपनी कला एव कुशलता प्रदर्शित की है ।

विदूषक युक्त नाटको मे एक उल्लेखनीय बात जो प्राय. खटकती है वह यह है कि विदूषक एक मशीन की भाँति प्रत्येक अक मे उपस्थित होता है और दर्शकों को बिना किसी तात्पर्य के हँसाने का घोर प्रयत्न करता है । मिश्रबन्धुओ ने सदैव ही इस बात का ध्यान रखा है कि कही हास्य का विधान अनुचित एव अस्वाभाविक न हो जाए । जो पात्र हास्योत्पादन कराते है वे हमें किसी ठीक समय एव निश्चित रूप से नही मिलते हैं, वे यत्र तत्र उपस्थित होकर दर्शको का सुरुचिपूर्ण मार्मिक मनोरजन करते है ।

१—'अभिनय'—डॉ० गोपीनाथ तिवारी—पृ० ११३
सरस्वती मन्दिर जतनबर वाराणसी—प्रथम सस्करण १९६१

निष्कर्ष—

हिन्दी नाटको मे प्रारम्भ से ही विदूषक सहित और विदूषक रहित दोनो प्रकार के रूप नियोजित किये गये है। भारतेन्दु हरिश्चन्द ने विदूषक की मान्यता सस्कृत नाट्य-शास्त्र के आधार पर रखी है। यह विदूषक सामान्य रूप से उन नाटको में है जिनका नायक राजवर्ग का व्यक्ति है। 'वैदिकी हिंसा-हिंसा न भवति' मे विदूषक है किन्तु सत्य हरिश्चन्द्र नाटक मे करुण रस का प्रधान्य होने के कारण किसी विदूषक की सम्भावना नही हो सकी है। चन्द्रावली नाटिका मे विदूषक की स्थिति सम्भव नहीं हुई है। उनके शेष मौलिक नाटको में जिनमें' विपस्य विषमौषधम्', 'भारतदुर्दशा,' 'अन्धेरनगरी', और 'नीलदेवी' मे स्पष्टतया किसी विदूषक का उल्लेख नही है यद्यपि 'विपस्य-विषमौषधम्' में भण्डारचार्य एव अन्धेर नगरी मे स्वय राजा तथा उसके सहयोगी पात्र विदूषक का कार्य-निर्वाह हास्य की परिस्थितियो को उत्पन्न करते हुए करते है। इस भाँति दोनो प्रकार के हास्यो का प्रयोग भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी के नाटको में मिलता है।

भारतेन्दु युग के नाटककारो ने हास्य और व्यग्य के लिए विविध पात्रो एव परिस्थितियो को ही कथावस्तु मे नियोजित किया है क्योंकि उस काल के नाटक अधिकतर सामाजिक भ्रष्टाचार का दूर करने के लिए लिखे गए थे।

सस्कृत नाट्य परम्परा मे विदूषक का स्पष्ट रूप से प्रयोग करने में प्रसाद जी अग्रगण्य है। इसका कारण यह है कि प्रसाद के सभी नाटक ऐतिहासिक है जिनके नायक राजवर्ग के व्यक्ति है। इतना होते हुए भी नाटक की सवेदना की दृष्टि से प्रसाद अपने सभी नाटकों मे विदूषक का नही रख सके है। उदाहरण के लिए चन्द्रगुप्त नाटक, यद्यपि तीन-तीन नरेशो को प्रमुखता प्रदान करता है फिर भी उसमे कोई विदूषक नहीं है। चन्द्रगुप्त, नन्द और सिकन्दर—तीनो राजन्य वर्ग के है किन्तु इनके पास काई विदूषक नही है। अजातशत्रु एव स्कन्दगुप्त नाटका मे जहाँ विदूषक की स्थिति है वहाँ पर सस्कृत नाट्यशास्त्र का भी पालन किया गया है। प्रत्येक में भोजन-भट्टता का सकेत मिलना है। इस सन्दर्भ मे मिश्र-बन्धुओ ने भी विदूषक के प्रयोग मे सस्कृत नाट्यशास्त्र की परम्परा का प्रयोग किया है। दोनो की विदूषक-प्रणाली में अन्तर यह है कि प्रसाद के विदूषक नाटक की मुख्य सवेदना से भी सलग्न हो जाते है जहाँ मिश्र-बन्धुओ के विदूषक एक मात्र हास्य के ही प्रतीक रहते है। इस दृष्टि मे प्रसाद के विदूषक मिश्रबन्धुओ के विदूषक मे अधिक सजग एव क्रियाशील है। यह बात अवश्य ही स्वीकार की जा सकती है कि प्रसाद के विदूषक का हास्य साहित्यिक एव सप्रयास है।

□

चतुर्थ अध्याय : लोक-नाट्य

१. लोक नाट्य

२. लोक नाट्य की विकास-परम्परा

३. लोक नाट्य के विभिन्न रूप :

(क) जानवरों के खेल (ख) रास लीला (ग) रामलीला
(घ) नौटंकी (ङ) भवाई (च) जात्रा
(छ) गम्भीरा (ज) कीर्तनियाँ (झ) अंकिया
(ञ) कठपुतली (ट) तमाशा (ठ) ललित
(ड) गोंधल (ढ) ख्याल (ण) वीथी भागवन्तुम
(त) मांच (थ) जातीय लोक नाट्य

४. लोक नाटकों की विशेषताएँ—

(क) भाषा तथा संवाद (ख) कथानक
(ग) पात्र (घ) चरित्र-चित्रण
(ङ) संगीत का प्रयोग (च) रंगमंच
(छ) हास्य रस (ज) लोक वार्ता
(झ) उद्देश्य

५. धार्मिक महत्त्व

६. सामाजिक एवं राजनीतिक महत्त्व

लोक नाट्य—

लोक में अभिनय के आधार पर ही नियम बनाए जाते है और लोक द्वारा आरोपित नियमों को अपनाकर ही विशिष्ट कलाओं का विकास होता है। मानव सभ्यता के विकास के साथ ही लोक नाट्य का भी विकास हुआ है। लोक की अनुरागी भावना ने ही जड़ चेतन को मानव का साथी बना दिया है। लोक नाट्य में निर्जीव पदार्थ तथा पशु, पक्षी ने भी सहयोग दिया है। प्रारम्भिक लोकनाट्य आदिम प्रवृत्तियों के आधार पर सर्प, बन्दर, भालू आदि के नृत्य के रूप में मिलता है।

सभ्यता के विकास के पूर्व जब मानव वनों में रहा होगा तभी उसने साँप, बन्दर, भालू आदि को अपना साथी बनाकर कुटुम्ब का मनोरंजन किया होगा और पक्षियों की चहचहाहट से उसने बोलना सीखा होगा। इस प्रकार मानव का जीवन नाटकीय ढंग से विकसित हुआ होगा अर्थात् मानव में यह गुप्त जीवन चेतना ही लोक नाट्य का उद्गम है। मानव जीवन ने बच्चों की भाँति संकेतों को ही अपने भाव व्यक्त करने का माध्यम बनाया होगा। वस्तुतः यही संकेत माध्यम ही अभिनय का आरम्भिक रूप है जो कि मानव जीवन के साथ ही साथ विकसित होता आया है। आधुनिक युग मे मानव ने इसी अभिनयात्मक प्रवृत्ति को नाट्य कला का रूप दिया है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि लोक नाट्य भी मानव जीवन की भाँति प्राचीन है। आज भी प्रसन्नता के मारे 'नाच उठना' मुहावरे के रूप में प्रयोग होता है, यही नृत्य नाटक का आदि रूप है। मनुष्य ने पक्षियों की चहचहाहट का अनुकरण किया और इसी अनुकरण की प्रवृत्ति ने अभिनय को जन्म दिया है। पाश्चात्य विद्वानो तथा संस्कृत विद्वानों ने सभी कलाओं में अनुकरण की प्रवृत्ति को प्रधानता दी है। वेदों की रचना के पूर्व ही लोकनाट्य के तत्त्व विद्यमान थे।

डा० बैरेडील कीथ संस्कृत नाट्य साहित्य के साथ लोक नाट्य का वर्णन करते हुए कहते है कि 'संस्कृत साहित्य में जो नाटक प्राप्त हैं उनकी भाषा साधारण जनता की भाषा से बहुत भिन्न थी। इस भाषा को पूरी तरह समझ पाना जन-साधारण जनता

के लिए कठिन था। शिष्ट वर्ग ही, जो संस्कृत भाषा को लिख-पढ़ और समझ सकता था उन नाटको का पूरा रसास्वादन कर सकता था। इसी अल्पसंख्यक पठित समाज के लिए ही साहित्यिक नाटको की रचना होती थी। फलत: संस्कृत के नाटक केवल विशेष वर्ग, कलाभिरुचि और मनोरंजन के साधन रहे है, सामान्य जन समाज से उनका कोई सम्बन्ध न था।''[1].

डाक्टर कीथ के इस कथन को हम निराधार तो नही कर सकते है परन्तु जहाँ तक जन-साधारण तथा शिष्ट वर्ग में कलाभिरुचि एव सस्कारो का सम्बन्ध है उस समय तक इतनी लम्बी-चौड़ी खाई नही थी जितनी कि आधुनिक समय मे है। यह तो मानव सभ्यता के विकासक्रम के साथ हुआ है इसलिए इसे स्वीकार करने में कोई आपत्ति नही उठती है। जिस भाँति पठित समाज तथा शिष्ट वर्ग ने अपने ज्ञानवर्द्धन और मनोरंजन के लिए इन नाटको को महत्त्व दिया है उसी भाँति जन समाज के पास भी अपने ज्ञान प्रसार और मनोविनोद के लिए साधन थे।

लोकनाट्य की विकास-परम्परा—

लोकनाट्य सभी कलाओं में प्राचीन है। लोकनाट्य के प्रारम्भिक रूप 'कठपुतली' के सम्बन्ध में हमें प्राचीन ग्रन्थों से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि लोकनाट्य की अपनी सत्ता रही है। भारतीय दृष्टिकोण के आधार पर नाटको का विकास वेदो से माना जाता है। वेदों में सरमा, यम, यमी का आधार लेकर अभिनय या नाटक का निर्माण किया है। अभिनय (नकल अथवा अनुकरण) शब्द की उत्पत्ति के आधार पर चित्रांकण का सूत्रपात हुआ। तनदन्तर मूर्ति रचना और पुत्तलिका-कौतुक (गुड़ियों का खेल) का उद्‌भव हुआ। तदनन्तर पुत्तलिका कौतुक ने धीरे-धीरे विकास प्राप्त कर काष्ठ पुत्तलिका कौतुक का रूप धारण किया। उसी काष्ठ पुत्तलिका (कठपुतली) को लोकप्रियता प्राप्त हुई।

भारतीय लोक मानस की उर्वरा शक्ति का परिचय हमे कठपुतलियों के खेल मे मिलता है। पुराण तथा महाभारत आदि से लेकर महाकाव्य काल तक कठ-पुतलियो का क्रमबद्ध इतिहास उपलब्ध है। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के समय तक यह परम्परा वर्तमान थी। विदेशियों द्वारा आक्रमण होने के कारण अन्य कलाओ की भाँति इस कला का भी लोप हो गया किन्तु स्मृति रूप मे आज भी राजस्थान मे कठपुतलियों की क्षीण परम्परा हमें मिलती है और गाँवो मे भी कठपुतलियो के नृत्य देखने की प्रथा है। सशोधन, परिष्कार तथा परिमार्जन के फलस्वरूप आगे चल कर नाटक जन-साधारण

१—हिन्दी नाटक का उद्‌भव और विकास—डा० ओझा—पृ० ४२

का जीवन साहित्य बन गया है। वस्तुत यदि विचार किया जाए तो यह प्रतीत होता है कि नाटक मे पुतलियो का स्थान नट, नटी और सस्थापक तथा सूत्रधार का स्थान सूत्रधार ने ले लिया है।

उपर्युक्त वर्णन से यह ज्ञात होता है कि नाटक के प्राचीन रूप का प्रादुर्भाव लोक-नाट्य से ही हुआ था। इस मत का परिणाम भरत के नाट्यशास्त्र मे भी मिलता है। भरतमुनि ने कहा है कि नाटक रचना का लक्ष्य जनसाधारण की ज्ञानवृद्धि तथा मनोविनोद के लिए ही था। भरतमुनि के अनुसार ब्रह्मा ने भी नाटक की रचना पचम वेद के रूप मे शूद्रो की ज्ञानवृद्धि और मनोरजन के लिए की थी। यहाँ पर 'शूद्र' शब्द का प्रयोग अशिक्षित लोक समाज के लिए हुआ है। ऋग्वेद मे इन्द्र, मारुत की ओर से जिन पन्द्रह मत्रो मे वार्तालाप हुआ है वे लोक नाट्य के आदितम रूप माने जाते हैं।

लोकनाट्य का दूसरा उद्‌गम रूप महाभारत तथा रामायण के 'पाठक' और 'धारक' सज्ञा से विभूषित होने वाले गायकों से माना जाता है। यह स्पष्ट है कि रामलीला और रासलीला की प्रेरणा इन्ही गायको से मिली होगी।[1] इस भाँति दो प्रकार के दल थे। एक दल तो कृष्ण का एव दूसरा कस का अनुयायी था। इस प्रकार महाभारत और पौराणिक चरित्रो की कथा को अभिनय मे प्रदर्शित किया जाता था। अब इससे ही अनुमान लगाया जा सकता है कि लोकनाट्यो का सभी कालो तथा देशों मे सामान्य रूप से विकास हुआ। सस्कृत नाटकों मे कृष्ण की अवतारणा इस बात का साक्षात् प्रमाण है कि सस्कृत नाटका के उद्‌भव एव विकास मे लोकमच तथा लोकनाट्य का महत्वपूर्ण स्थान था। आरम्भ के जितने भी संस्कृत नाटक है उनमें शौरसैनी प्राकृत का प्रयोग लोक प्रभाव का प्रमाण है।

कुशान युग मे मध्य एशिया में प्राचीन पुरालेखो से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि भारतीय नाटको का पूर्णरूप से प्रचार वहाँ पर था। रामायण की लोक शैली के अभिनय ने मलाया, स्याम, बर्मा, कम्बोडिया आदि देशो की नाट्य कला पर अपना प्रभाव डाला। यदि पात्रो के दृष्टिकोण से विचार किया जाये तो नाटक मे विदूषक लोक शैली का ही प्रतिनिधित्व करता है। यही कारण है कि विद्वानो ने विदूषक को लोक नाट्य की देन के रूप में स्वीकार किया है। इसमे नारद, विभीषण आदि लौकिक पात्रो के नाम लिए जा सकते हैं जो आज भी विभिन्न रूपो में मिलते हैं। शैली के दृष्टिकोण से भाण, प्रहसन आदि भी लोक नाट्य के ही विकसित रूप है।

ऐतिहासिक दृष्टि से यदि लोकनाट्य के विकास की परम्परा पर विचार किया जाये तो १६वी शताब्दी के पूर्वार्द्ध में वल्लभाचार्य जी ने प्राचीन ग्रन्थों से सम्बन्धित कृष्ण-

---

१, लोकसाहित्य की भूमिका—भागवत शास्त्री—पृ०२९२

कथा के अभिनय का रासलीला के रूप मे प्रचारित कर लोक मच पर गीति नाट्य की परम्परा को स्थापित किया था। रासधारियो द्वारा अभिनय कला को जीवित रखने के लिए गुजरात मे भी अनेक प्रयत्न किए गए। मध्य युग मे रामचरित्र की भी प्रधानता रही है। जनश्रुति है कि वल्लभाचार्य की भाँति गोस्वामी तुलसीदास ने भी रामनगर (काशी) मे रामलीला करने वालो की मण्डली स्थापित की थी। यह जनश्रुति कहाँ तक प्रामाणिक है, यह कह सकना कठिन है, फिर भी यह कहा जा सकता है कि रासलीला की ही भाँति रामलीला की स्थापना इसी युग मे हो चुकी थी। इस विषय मे अंग्रेज विद्वानो प्रिन्सेस द्वारा १८वी शताब्दी के अन्त में काशी मे होने वाली रामलीला के प्रदर्शन का विवरण मिलता है। रामलीला की इसी विकास परम्परा ने दक्षिण मे कथकलि के अभिनयात्मक रूप मे लोकप्रियता प्राप्त की थी, जिसकी परम्परा आज तक भी जीवित है।[1]

मध्ययुग मे कृष्ण तथा राम सम्बन्धित कथानक के अतिरिक्त सामाजिक कथानको का विकास भी आरम्भ हुआ है। मौलाना गनीमत ने औरगजेब के समय मे होने वाले स्वाग तथा सगीत के अभिनय का वर्णन किया है। अठारह सौ सत्तावन (१८५७) के पश्चात् अंग्रेजो के प्रभाव से यह कलाएं धीमी पडकर लुप्त सी हो गई और १६वी शताब्दी के आरम्भ में ही लोक नाट्यो की ओर से कलाकार उदासीन होने लगे। किन्तु फिर भी विभिन्न प्रान्तो एव क्षेत्रो मे लोकनाट्य के रूप लोक-रजन के लिए विद्यमान है।

लोकनाट्य के विभिन्न रूप :—

सामान्य जनता का ज्ञानबोध अधिकाधिक विस्तृत बनाने तथा धर्म, समाज, और नीति को हास और परिहास के माध्यम से अनुभवगम्य बनाने की दृष्टि से लोक-नाटकों की सस्था कल्पित की गयी। ऐसी स्थिति में यह उचित ही है कि प्रत्येक लोकनाट्य अपनी विशिष्ट शैली मे मनोरजन के उपकरण प्रस्तुत करे। प्रसगो के अनुसार तथा लोक-नाट्य के प्रस्तुतीकरण की शैली के अनुरूप हास्य की विविध शैलियाँ निर्धारित की जाती रही है। लोकनाटको की विशिष्ट रूप सज्जा मे भी इस बात का ध्यान रखा जाता है कि हास्य को किस कौशल से प्रस्तुत किया जाए। अत लोकानुरजन के लिए तथा गभीर प्रसगों को सरलता के साथ प्रस्तुत करने के लिए प्रत्येक लोकनाट्य को हास्य रस का आश्रय लेना पडता है।

जब लोकनाट्य पशु-पक्षियो के क्रियाकलापो मे जीवन की प्रतिकृति उपस्थित करता है तब पशु-पक्षियो का कौतुक ही हास्योत्पादन में सहायक होता है। उदाहरण के

१—लोकसाहित्य की भूमिका—सत्यव्रत अवस्थी—पृ० १९३

लिए मदारी जब बीन बजाता है तो सर्प का नृत्य जहाँ नेत्रो के लिए अनुरंजन कार्य होता है वहाँ बीन की ध्वनि श्रवणेन्द्रिय के लिए आकर्षित होती है। किन्तु जब इस लोकनाट्य का रूप सामान्य व्यक्तियो द्वारा उपस्थित होता है तो उसमें वाणी का स्वर और अर्थ दोनो ही विशेष प्रकार से नियोजित होते है। इस प्रकार लोकनाट्य के विविध रूपों मे हास्य का प्रयोग परिस्थिति एव पात्रों को लेकर सदैव ही किया जाता है। उपर्युक्त संदर्भ के आधार पर लोकनाट्य के दो वर्ग निर्धारित किए जा सकते है—एक तो पशु-पक्षियो, गुड़ियों तथा कठपुतलियों के खेलों में देखने को मिलता है और दूसरा रूप वह है जिसमें केवल मनुष्य ही भाग लेते है। सपेरा बीन बजाकर साप को नृत्य करवाता है। सांप के नृत्य में संगीत का ही विशेष महत्व होता है और बीन की ध्वनि से लोगो का मनोरंजन होता है।

जानवरों के खेल :—

बन्दरों तथा भालू आदि के नृत्य में हमें मानव कार्यों का अनुकरण मिलता है। मदारी के सकेतों द्वारा भालू तथा बन्दर नाच दिखाते है। मदारी को निदेशक तथा सूत्रधार के नाम से सम्बोधित कर सकते है। यह जानवर अभिनेता के रूप में खुले रंग-मंच पर अभिनय प्रस्तुत कर लोगों का मनोविनोद करते है। और सूत्रधार (मदारी) सामने बैठकर उनकी मुद्राओ की व्याख्या करते है क्योंकि इस प्रकार के लोकनाट्य में अभिनेता बोलने में असमर्थ रहते है। जो अन्तर अवाक् तथा सवाक् चलचित्रो में है वही अन्तरलोक नाट्य के इस रूप में तथा दूसरे रूप में है। घोड़ा, कुत्ता, बकरा, तोता आदि इसी लोकनाट्य के अन्तर्गत आते है। इन अभिनेताओं की कला की चातुरता प्रायः आज भी देखने को मिलती है। लोकनाट्य का यह अवाक् रूप ही आगे सवाक् रूप धारण कर लेता है।

रासलीला—

लोकनाट्य के दूसरे रूप के अन्तर्गत रासलीला का प्रमुख स्थान है। 'रसानो समूहो रासा' के अनुसार रास रसो का समूह है। डा० ककड के कथनानुसार 'रास' शब्द की उत्पत्ति रस से नही अपितु 'रास' से है जैसे नृत्य के मध्य में जोर से चिल्ला उठना। जैसा कि आजकल ग्रामीण लोकनृत्य अथवा आदिवासी नृत्य में देखा जाता है[1]।

डा० दशरथ ओझा का मत है कि 'रास' शब्द संस्कृत भाषा का नहीं है प्रत्युत देशी भाषा का है, जो संस्कृत बन गया और देशी नाट्यकला, जो रास के नाम से प्रसिद्ध

१—टाइप आफ संस्कृत ड्रामा—डी० आर० मुकुन्द—पेज न० १४३

थी, उसको रास के नाम से ही सस्कृत ग्रन्थो मे उद्घृत कर दिया। रास के देशीय होने का अनुमान इस बात से होता है कि रासा और रासक नाम से राजस्थानी मे भी इसका प्रयोग मिलता है और वह रास जिसका सम्बन्ध विशेष रूप से गोपियो से है। ग्वालो में प्रचलित कोई देशीय नाटक हो सकता है जो सस्कृत नाटक से अपहृत नही माना जा सकता है[1]। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के मतानुसार, वीरगाथा काल मे 'रासो' का सम्बन्ध रासक से बताते है। 'रस' तो रास का मूल तत्व है। शुक्ल जी का कथन है कि 'बीसलदेव रासो' में काव्य के अर्थ में रसायण शब्द बार बार आया है। हमारी समझ में इसी रसायण शब्द से रासो हो गया है[2]।

रास की यह परम्परा प्रथम शताब्दी के पूर्व विद्यमान थी। मध्यकालीन उत्तर-भारत में कृष्णलीलाएं लौकिक रगमच का विषय बनी। भरत मुनि के नाट्यशास्त्र मे रासक एक उपरूपक है। उन्होने रासक के तीन भेद बताए है, जैसे—

१—ताल रासक

२—दण्ड रासक

३—मण्डल रासक

एक किंवदन्ती के अनुसार रासलीला मणिपुरी नृत्य की उत्पत्ति का आधार मानी जाती है। एक बार शिवजी रासलीला का आयोजन कर रहे थे। तभी पार्वती ने नृत्य और घुघरू की ध्वनि सुनी और उसके पश्चात् शिवजी से रासलीला के दर्शन कराने का अनुरोध किया। श्रीकृष्ण ने यह स्वीकार नही किया किन्तु पार्वती के अनुरोध का अनुमान कर किसी गुप्त स्थान पर वह आयोजन पुन करने की स्वीकृति दे दी। शिव जी ने बडे यत्न के साथ एक स्थान खोज निकाला। उन्होने देवी-देवताओ, गन्धर्वों, अप्सराओ आदि को रासलीला म सम्मिलित होने का निमन्त्रण भेजा। नदी, मृदग ब्रह्मा शख लेकर और इन्द्र वेणु लेकर उपस्थित हुए। नागराज की कृपा से सम्पूर्ण स्थान आलोकमय हो गया। गन्धर्वों ने अपना स्वर्गीय सगीत आरम्भ किया, रासलीला आरम्भ हुई।[3]

रास खुले रगमच का एक लघु अभिनय है, जिसमें नृत्य, साहित्य, सगीत तथा ब्रज सस्कृति का समावेश है। रास का प्रथम अभिनय सम्वत् १५५०-१६०० विक्रमी में मथुरा में हुआ था। भागवत का प्रचार श्रीवल्लभाचार्य जी ने सवत् १५४८ विक्रमी मे ब्रज में किया था। रास में कथोपकथन काव्यमय होते हैं। और गद्य का प्रयोग कविता के अर्थों के रूप में ही रहता है। सस्कृत के श्लोको मे जयदेव की पदावली भी कभी

१—हिन्दी नाटक का उद्भव और विकास—डा० दशरथ ओझा—पृ० ७५, ७६

२—हिन्दी साहित्य का इतिहास—रामचन्द्र शुक्ल—पृ० ३२

३—लोकधर्मी नाट्य परम्परा—डा० श्याम परमार—पृ० १२

सुनने को मिलती है। रास मे विभिन्न मुखाकृतियो, मुद्राओ द्वारा शरीर का अंग परि-चलित अभिनय से परिपूर्ण हो जाता है। रास की परम्परा ने सैकड़ो वर्ष तक हमारे हिन्दी के आदिकाल को संवारा है। 'भागवत महापुराण' में श्रीकृष्ण लीला की जो परम्परा अभिव्यक्त हुई है, उससे भिन्न एक और भी परम्परा थी जिसका प्रकाश जयदेव के गीतगोविन्द परम्परा का रास वसन्तक काल में है—सूरदास आदि परवर्ती भक्त कवियो मे यह दोनो परम्पराएँ एक-सी हो गई है।[१] मानलीला, माखनचोरी, दानलीला, ग्वालवालो के साथ ठिठोली आदि के अभिनय तथा अष्टछाप के कवियों की कृतियो पर, प्राय: सूर के पदो का आधार लेकर, विभिन्न प्रकार की लीलाएँ होती रही है।

१५ वी तथा १६ वी शताब्दी मे व्रज मे यह परम्परा नवीन प्रवृत्तियो के साथ प्रकट हुई। व्रजवासी दास, एवं नंददास आदि भक्तो ने रासो की रचना कर रास परम्परा में पूर्णरूप से योग दिया। घमण्डी देव, नारायण भट्ट, स्वामी हरिदास तथा हितहरिवंश राय आदि (१५५६ वि०) भी श्रीवल्लभाचार्य के साथ रास के संस्थापको में है। १७ वी शताब्दी के मध्य से लेकर नन्ददास द्वारा परिष्कृत लीला और श्रीवियोगी हरि द्वारा रचित छन्दायोगिनी लीला (संवत् १९७८ वि०) तक पूर्ण रूप से बनी रही। रासलीला की यह परम्परा हिन्दी साहित्य तक ही सीमित नही—बल्कि उत्तर भारत और उसके निकटवर्ती एवं सुदूर प्रान्तो तक इसका प्रचार था। लोकनाटको की परम्परा मे रास-लीला के अनेक रूप दृष्टव्य है। एक ओर रास ने नृत्य की भूमिका प्रस्तुत की है तथा दूसरी ओर नाट्य सामग्री के दृष्टिकोण से लीलाओ मे अभिनय सम्बन्धी उपकरण भी प्रस्तुत किए है।

डा० ओझा जी ने रास लीला की निम्नलिखित विशेषताएं प्रस्तुत की है—जैसे :—

१—नाटक छन्दोवद्ध एवं गेय होते है।

२—गद्य भाव प्राय: उपेक्षित होता है।

३—नाटक के पात्र आरम्भ से अन्त तक मंच पर ही रहते है। प्रवेश और निष्क्रमण का संकेत नही होता है।

४—नृत्य और गीत की प्रधानता होती है।

५—मंगलाचरण और प्रशस्ति पाठ स्वाग नाटको की तरह होता है।

६—अन्त मे नाटक रचना का प्रयोजन घोषित किया जाता है।

७—भाषा तत्सम शब्दो से बोझिल और देशज उक्तियो से युक्त होती है।

रासको के विकासक्रम की साधारण स्थिति प्रथम तीन भागों में विभाजित की

१—मध्यकालीन धर्म साधना—डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी—पृ० १३५

जा सकती है[१] :—

१—जैन रासकों की परम्परा जो व्रज से प्रचलित रासलीला के प्रारम्भ से चली आ रही थी। १६ वीं शताब्दी तक इस जैन-परम्परा का प्रभाव बना रहा।

२—वैष्णव धर्म के प्रचार के साथ ही कतिपय आचार्यों ने श्रीमदभागवत के विविध प्रसगों से कथानक लेकर नाट्य शैली का आश्रय लिया। यह परपरा नन्ददास तक अपने अनगढ स्वरूप मे चलती रही।

३—१७वीं शताब्दी के मध्य से लेकर नन्ददास द्वारा परिष्कृत रासलीला श्री वियोगी हरि चरित छन्दयोगिनी लीला (सवत् १९७८ वि०) तक सतत रूप से बनी रही।

४—इसके आगे रास लीला विभिन्न लीलाओं के प्रयोग का आधार बनी। इसका गीति नाट्य वाला स्वरूप धीरे-धीरे गद्य की ओर झुकने लगा। परिणाम स्वरूप विकृतियों का समावेश हुआ। पारसी थियेट्रिकल कम्पनियों का प्रभाव भी इस परिवर्तन का कारण हुआ[२]।

ग्रामीण जीवन मे रासलीला का जो आज महत्व है इसके प्रति भक्ति एव श्रद्धा है इसमे कई शताब्दियो से पोषित लगाव भी द्रष्टव्य है। लोक नाट्यो मे जात्रा, भवाई तथा कीर्तनिया के ढग रास की भाँति प्रतीत होते है। कृष्णलीला यद्यपि भक्तिपरक है, तथापि कृष्ण के लौकिक रूप से की जाने वाली लीलाओं मे पर्याप्त मनोविनोद है। कृष्ण के सहचरो मे एक विशिष्ट पात्र है 'मनसुखा।' शब्द के अनुरूप ही मन को सुख पहुँचाने वाली क्रियाएँ और मनोरजन की बातें इस पात्र की मर्यादा के लिए आवश्यक है। मनसुखा के मनोविनोद मे ही कृष्णलीला या रासलीला का रूप अधिक लोकरजक बनता है, यही रासलीला में हास्य की सृष्टि हुई है।

रामलीला—

राम काव्य पर आधारित रामलीला लोक नाट्य का प्रचलित रूप है। यह समस्त भारतवर्ष एव इसके निकटवर्ती देशो का धार्मिक मच है। श्री जगदीशचन्द्र माथुर के अनुसार तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' नाटकीय वर्णन है। नाटकीय वर्णन इस अर्थ में है कि रामचरितमानस केवल पाठ करने की कथा मात्र नहीं, अपितु वह मच पर अभिनेय भी है। महाभारत तथा रामायण के 'पाठव' और 'धारक' गायकों में रामलीला के अभिनय सूत्रों का मिश्रण है। ५०० ई० पू० रामलीला पर आधारित एक नाटक

१—लोकधर्मी नाट्य परम्परा-डा० श्याम परमार—पृ० २२

२—वही—वही पृ० २२

अभिनीत किये जाने का उल्लेख हरिवंश पुराण मे है। वाल्मीकि के समय वीर पूजा के समय गाने वाले गीतों का और अभिनय मे रामकथा का प्रभाव था। लवकुश भी रामकथा का ही गायन करते थे। इसी कारण पूर्वकाल में 'कुशीलव' शब्द मे गायक तथा अभिनेता के पर्याय रूप को माना गया था। इसमें यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि रामकथा को लिपिबद्ध करने के पूर्व ही लोकमच पर रामलीलाएँ आरम्भ हो चुकी थी। यह भी सम्भव हो सकता है कि तुलसीदास जी ने इसी दृष्टिकोण स रामचरित मानस की रचना की हो।

१८ वी तथा १९ वी शताब्दी म भी हम रामलीला का प्रचार मिलता है। उत्तर भारत में ही नही, वल्कि दक्षिण के छोर तक इसका प्रचार था। वर्मा म कवि भूतो रचित 'रामायागम' (रामायण) मच की रचना नही है फिर भी यह 'धामप्वे' नामक नाट्य के नाम से प्रचलित है। 'स्याम मे कठपुतलिया द्वारा रामकथा वर्णित की जाती है। रामलीला लोगा में भा प्रख्यात है। कम्बाडिया के 'रयामकेर' अथवा स्याम के 'रामकीन' ग्रन्था के अतिरिक्त राम के जीवन सम्बन्धी घटनाए दोना देशा के प्राचीन मन्दिरा में उत्कीर्ण पायी जाती है।[1]

मध्यकालीन परिस्थितिया म मुख्य रूप स उत्तर तथा मध्यवर्ती भारत म रामलीला और रासलीला को पनपने का पूर्ण रूप से अवसर प्राप्त हुआ। रास म कृष्ण चरित्र के साथ गीतो का प्रयोग होता था। माधुर्यमयी शृगार चेष्टाओ के प्रयोग के लिए किसी भी प्रकार की बाधा नही थी। राजदरबारी नाट्य कला पूर्वकाल म अकिया और कीतनिया के नाम स नेपाल, आसाम, मिथिला म प्रचलित थीं और ये सब कृष्ण चरित्र पर ही अवलम्बित था। रामलीला म शृगार की भावना लेशमात्र भी नही थी। पुरुषोत्तम राम के प्रति जहाँ लोगा म श्रद्धा है वहा श्रीकृष्ण के प्रति अनुरक्ति और आकर्षण। आदिम प्रवृत्तियों का जो तृप्ति रास म होती है वह रामलीला में सम्भव नही है।

१९ वी शताब्दी में कुछ रामलीला सम्बन्धित नाटको की रचना हुई। जैसे— 'रामलीला विहार', मधुकर दामोदरशास्त्री द्वारा रचित रामलीला और देवकीनन्दन त्रिपाठी द्वारा रचित सीता-स्वयवर आदि प्रमुख हैं। रामलीला की परम्परा को बनाए रखने के लिए भारतेन्दु जी के पश्चात् श्रीमाधवशुक्ल जो ने तथा उनके मित्रो ने १८९८ ई० में रामलीला नाटक मण्डली की स्थापना की थी किन्तु पूर्णरूप से यह मण्डली सफल न हो सकी।

रास लीला की भाँति रामलीला का भी स्वतत्र विकास हुआ। मानस पाठ की परम्परा ही रामलीला की उत्कृष्टता का पोषक है। रामलीला प्रस्तुत करने की निम्न-

---

१—लोक नाट्य परम्परा—डा० श्याम परमार—पृ० २६

लिखित शैलियाँ प्रचलित है। 'कथकली नृत्य' की कतिपय भाव-भंगिमाओ का आधार ही राम कथा है। १७ वी शताब्दी में केशव वर्मा और राम ब्रह्मा ने इस शैली में राम कथा को प्रथम बार अभिनीत किया था। आगे चल कर १८ वी शताब्दी मे राजा रामनाथ ने रामायण की कुछ मुख्य घटनाओं को लेकर कथकली शैली की कुछ भाव-भंगिमाओ का परिष्कार किया।[1]

कितने वर्ष समाप्त हो गये है फिर भी श्रीराम, सीता, लक्ष्मण, रावण आदि लोक-मानस में बसे हुए है। आज भी राम लीला को लोग बडे चाव से देखते हैं। राम लीला का प्रभाव देश मे कुछ नृत्य मण्डलियो पर भी पड़ा है। दर्शकगण को आकर्षित करने के लिए रामलीला में कुछ ऐसे पात्र भी मनोरंजक चेहरा लगा कर बीच-बीच में रंगमंच पर उपस्थित होते रहते है जिससे कि हास्य की सृष्टि होती है।

नौटंकी :—

नौटंकी की चर्चा करते हुए जयशंकर प्रसाद ने कहा है—'नौटंकी' नाटको का अपभ्रंश रूप है। नौटंकी और भाडो मे शुद्ध मानव सम्बन्धी अभिनय होते है। भाडो के परिहास की अधिकता संस्कृत भाण मुकुन्दानन्द और रससदन आदि की परम्परा है और नाटकी की अधिकता प्राचीन राग, काव्य अथवा गीति नाट्य की स्मृतियाँ है।'[2] राजशेखर ने'कर्पूरमंजरी' में सूत्रधार द्वारा 'सट्टक' को नाटिका के लक्षणो से युक्त बताया है। नौटंकी की भाँति यह भी एक प्रकार का लौकिक तमाशा है। पंडित हजारीप्रसाद द्विवेदी ने भी यह स्वीकार किया है कि 'लोक मे इन मनोरंजक विनोदो को देख कर संस्कृत के नाट्यशास्त्रियो ने इन्हे (सट्टक एवं रासक) रूपको और उपरूपकों में स्थान दिया। इन शब्दो के अर्थ विशेष प्रकार के विनोद और मनोरंजन थे।'[3] रामबाबू सक्सेना का कथन है कि नौटंकी का आरम्भ लोक गीत तथा उर्दू कविता से हुआ है। इनके विचारो का समर्थन करते हुए कालिकाप्रसाद दीक्षित के मतानुसार नौटंकी 'हीर रांझा' की कथा थी, जो आज भी पंजाब के लोकगीतो में महत्व रखती है। अतः नौटंकी का जन्मकाल ११वी, १२वी शताब्दी ही मानना चाहिए। अमीर खुसरो ने नौटंकी को आगे बढ़ाने का प्रयत्न किया। खुसरो स्वयं जिस भाषा का प्रयोग अपनी रचनाओं में करते थे उन्हीं के ढंग के छन्दो का प्रयोग नौटंकी के कथानकों में बढ़ने लगा।[4] इस प्रकार १८वी शताब्दी तक

---

१. लोकधर्मी नाट्य परम्परा—डा० श्याम परमार—पृ० २६
२. हिन्दुस्तानी—त्रैमासिक—जुलाई, १९३७—पृ० २५५
३. हिन्दी साहित्य का आदिकाल—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी—पृ० ९९, १०१
४. साप्ताहिक हिन्दुस्तान—६ सितम्बर, सन् १९५७, पृ० २५

नौटकी पूर्णरूप से उत्तर भारत मे विस्तृत हो चुकी थी। नौटकी को 'भगत' या 'स्वाग' भी कहते है। महाराष्ट्र मे स्वागो का प्रचार अधिक था। १६वी शताब्दी मे सिद्धकवियो मे से कण्हपा और कबीरदास जी ने एक साखी मे स्वाग का प्रयोग किया है। डोमजाति द्वारा भी स्वाग की परम्परा उत्तर भारत मे प्रचलित है, जायसी ग्रन्थावली मे अलाउद्दीन द्वारा चित्तौड मे एक वेश्या जोगिन का स्वाग धारण करके भेजी जाती है—

'पातुरि एक हुति जोगी सवागी
साह अखोरे हुत ओहि मागी ॥'[1]

डा० दशरथ ओझा ने दीपचन्द स्वागकार का उल्लेख किया है। इन्होने शृगार सम्बन्धी स्वागो का बहिष्कार कर वीररसपूर्ण स्वागो की रचना की है जो कि रोहतक तक प्रचलित है। नौटकी मे आल्हा-छन्द का प्रयोग वीर रस की उत्कृष्टता बढाने के लिए किया जाता है। नौटकी का मच खुले स्थान पर ही होता है। इसम नगाडा की ध्वनि विशेष प्रकार की होती है। वीर हकीकत राय, राजा गोपीचन्द भरथरी और पूरन भक्त इत्यादि के स्वाग लोकप्रियता प्राप्त कर रहे है। राजा गोपीचन्द का स्वाग आज भी राजस्थान में प्रसिद्ध है।

नौटकी पर आधारित प्रतियाँ भी उपलब्ध है जो कि उर्दू शायरी तथा रीति-कालीन प्रवृत्तियो से प्रभावित है। इन कृतियो मे प्राचीन भाषाओ का प्रभाव अभिनय के समय से स्पष्ट होता है। स्वाग, नौटकी या भगत .तीनो एक ही वस्तु है। नौटकी रीतिकालीन तथा इसके कुछ पूर्व की प्रवृत्तियो की मिश्रित एक धारा है और अमीर खुसरो की भाषा नौटकी में स्पष्ट झलकती है। भगत मध्यकाल की वस्तु है और स्वाग प्राचीन है। नौटकी का कथानक पद्य, गद्य दोनो में चलता है। किन्तु पदात्मक सवादो की विशेष रूप से प्रधानता रहती है। नौटकी मे विदूषक एक आवश्यक पात्र के रूप मे माना जाता है, जो मच पर उपस्थित होकर स्त्री पुरुष पात्रो के साथ भोडा हास्य कर दर्शको का मनो-रजन करता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि नौटकी का भी अपना महत्वपूर्ण स्थान है।

भवाई :—

लोक नाट्य का यह रूप गुजरात में प्रचलित है जिसे भवाई कहते हैं। यह लोक नाटक सस्कृत नाटको की भाँति अनुबद्ध नहीं होते है, और न ही इनमें व्यवस्थित कथा का तारतम्य रहता है। भवाई की विशेषता उसके दैनिक जीवन से सम्बन्धित घटनाओ का अभिनय, वेशभूषा तथा धार्मिक कथाओ के विश्वास पर निर्धारित है। सस्कृत नाटको का विदूषक गुजराती भाषा में 'रगलो' 'कहलाता है। भवाई नाटको की सफलता इसी

---

१ जायसी ग्रन्थावली—बादशाह, द्वितीय खण्ड—पृ० ५८१

रंगलो पर ही अवलम्बित होती है। भारतीय लोक नृत्यो के विद्वान देवीलाल सामर ने भवाई को मालवा तथा राजस्थान की उत्पत्ति बताई है। इसके सम्बन्ध मे एक कथा का भी वर्णन किया है, जैसे—

'आज से ४०० वर्ष पूर्व जब राजस्थान के गाँवो मे भी साम्प्रदायिक और जातीय भेदभाव के अंकुर उत्पन्न हुए, ऊँच-नीच के भेदभाव बढ़े, पारिवारिक जीवन में विश्रृंखलता उत्पन्न हुई, कला विलास और व्यभिचार का साधन समझी गई, ऊँची जाति के लोगों ने उसे तिरस्कार के योग्य समझकर अपने से दूर ही रखा तो यह भावना गाँवो मे सबसे अधिक राजपूतो और जाटो मे देखी गई। यह लड़ाकू जाति थी। नृत्य और गान को ये लोग शौर्य और वीरता का शत्रु समझते थे। खेती करना और पशु पालन इनका मुख्य व्यवसाय था। इन्ही जाटो में नागाजी नाम का एक जाट था जो केकड़ी नामक स्थान मे रहता था। इसे बचपन से ही नाचने गाने का शौक था। यह बात जाटो को अच्छी नही लगी, उन्होने नवकाडा भाला, भूगल और जाजम देकर अपनी जाति से निकाल दिया और कहा कि तू आज से ही हमारी जाति का भाड़, भवाई है और तुझे समस्त जाटो के मनोरंजन का अधिकार दिया जाता है और तब से नागाजी जाट और उसके परिवार वाले भवाई कहलाने लगे[१]।' तभी से अनेक जातियो ने इस पद्धति का अनुकरण किया।

भवाई साधारण स्तर का लोक नाट्य है। अभिनय आरम्भ होने के पूर्व गणपति तथा अम्बा की स्तुति होती है तत्पश्चात् हास्यास्पद कथा प्रस्तुत की जाती है। इसमे मच की आवश्यकता नही पड़ती है और कथानक का अभाव रहता है। इसमें अनेक पुरुष मिल कर गीत गाते है। ऐसे लोक नाटको मे प्रायः अश्लीलता का भी समावेश मिलता है। प्रहसन के रूप मे यह अभिनय को प्रस्तुत करते है।

गुजराती नाटको में भवाई का अपना महत्वपूर्ण स्थान है। गुजरात मे एक अन्य साधन भी मनोविनोद के लिए प्रचलित है जिस पर मथुरा के रासो का प्रभाव है। वैष्णवों के प्रभाव के कारण ही अम्बा माता की पूजा तथा राधा कृष्ण की लीलाओं का प्रचार हुआ।

जात्रा (यात्रा)—

बंगाल, उड़ीसा, पूर्वी बिहार आदि में इस लोक नाट्य का रूप प्रचलित है। 'जात्रा' शब्द का अर्थ है उत्सव या जुलूस। भवभूति द्वारा रचित 'मालती माधव' मे भी इस शब्द का प्रयोग हुआ है। 'बंगला साहित्येर कथा' में श्री सुकुमार सेन ने यात्रा शब्द

१—लोक कला (राजस्थान अंक, पहला भाग) पृ० ३

का अर्थ देवपूजा के निमित्त आयोजित मेला, जुलूस और नाट्यगीत बताया है।[1] जनपदों के नाट्यो में कृष्ण-लीलाओं का प्रचार रहा है, इसलिए यात्रा शैली में इन नाटको का खूब विकास हुआ है। विद्वानों का विश्वास है कि बीच में संस्कृत नाट्यों की परम्परा जहाँ टूटी है वहाँ बंगाल की यात्रा शैली ने अपने उत्कृष्ट स्वरूप को लोक प्रचलित बनाये रख कर महत्वपूर्ण कार्य किया है[2]। डा० कीथ ने यह भी कहा है कि नाटको में तत्कालीन लोक नाट्य की शैली जीवित है किन्तु यह वह शैली नही है, जिसका हम वैदिक नाटक से सम्बन्ध जोड़ें[3]।

यात्रा लोक नाटक के अतिरिक्त बंगाल में कथकला, पांचाली कीर्तन, कवि-गान आदि शैलियाँ प्रचलित रही है। लोक नाट्य की कोटि में यात्रा का महत्वपूर्ण स्थान है। डा० सेन ने यात्रा के विषय में लिखा है कि यात्रा के अभिनय का सर्वप्रथम उल्लेख सोलहवी शताब्दी के आरम्भ में प्राप्त होता है। इस समय चैतन्य महाप्रभु (१४८६-१५३३) का बंगाल पर पूरा प्रभाव था। कहते है चैतन्यदेव ने स्वयं अपने मौसा के घर में रुक्मिणीहरण का अभिनय यात्रा की ही शैली में किया था। चैतन्यदेव रुक्मिणी बने थे और उनके साथी गदाधर राधा। इस प्रकार यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि यात्रा नाट्य का प्रचार करने का श्रेय चैतन्य महाप्रभु को ही प्राप्त है। अतः १६वी शताब्दी तक राधा, कृष्ण यात्रा के विषय रहे है। विद्यापति, जयदेव, चण्डीदास आदि की कृतियाँ भी यात्रा की पृष्ठभूमि में प्रश्रय पाती रही। एक ओर वैष्णव धर्मावलम्बियों को यात्रा द्वारा विकसित होने की प्रेरणा प्राप्त हुई और दूसरी ओर यात्रा नाट्य कृष्णलीला का पर्याय बन गया।

पटुवा जाति के लोग उड़ीसा में अपने इष्टदेव की आराधना करते समय यात्रा का आयोजन करते हैं। श्री दत्त ने पटुवा संगीत पर लिखते हुए एक वृद्ध पटुए से सुनी हुई कहानी का वर्णन किया है। इनका कथन है कि 'पटुए विश्वकर्मा की सन्तान है। दुर्भाग्यवश आज उनकी अवनति हो गई है, क्योंकि एक बार उनके किसी पूर्वज ने शिव की अनुमति के बिना उनका एक चित्र बनाया था। शिव ने क्रुद्ध होकर शाप दिया। तभी से पटुए मुसलमानों की भाँति प्रार्थना करते है और हिन्दू देवताओं के लिए चित्र बनाते है।[4] इस कथा के वर्णन से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि पटुए शिल्पी जाति के हैं।

कृष्णमल गोस्वामी के प्रयत्नो द्वारा १९वी शताब्दी में यात्रा परम्परा का परिष्कार हुआ। डा० डे के कथनानुसार यात्रा के प्रारम्भिक रूप में संगीत की ही

१—संस्कृत ड्रामा—ए० बी० कीथ—पृ० ४०

२—वही—वहीं पृ० १६

३—बंगला साहित्येर कथा—डा० सुकुमार सेन—पृ० १४०

४. ए स्टडी आफ ओरिसन फ़ोक्लोअर—कुंजविहारी दास—पृ० ८१

प्रधानता थी और नाटकीय तत्वो में ग्रामीणता स्पष्ट झलकती थी। कथोपकथन भी साधारण कोटि के थे। गीतो का अनावश्यक प्रयोग गद्य के सवादो मे भद्दा प्रतीत होता था। यात्रा का अभिनय मृदग और खेल के साथ गायको के सामूहिक गीत के साथ चलता है। जिस प्रकार उत्तर भारत मे लोक नाट्यो के आरम्भ होने के पूर्व देवताओ की स्तुति एव गुरु-वन्दना होती है और पौराणिक नाटको मे नान्दीपाद होता है उसी प्रकार यात्रा लोक नाट्य का अभिनय गौर चन्द्रिका के गायन के साथ आरम्भ होता है। गौर चन्द्रिका का सम्बन्ध महाप्रभु चैतन्य से ही है। इस परम्परा से यह प्रतीत होता है कि वास्तव मे चैतन्य महाप्रभु ने यात्रा का विकास किया था। गोपाल स्वामी द्वारा रचित 'विदग्धमधुवा' तथा प्रेम द्वारा रचित 'चैतन्य चन्द्रोदय कौमुदी' आदि नाटको का महाप्रभु चैतन्य द्वारा प्रेरणा प्राप्त हुई।

२०वी शताब्दी मे मुकुन्ददास ने यात्रा शैली, अपना कर विदेशी शासन तथा समाज की कुरीतियो पर रचनाएँ लिखना आरम्भ किया और गाँव मे यह चारो ओर फैल गई। गाँव के मनोविनोद के माध्यम के लिए यात्रा की परम्परा आज भी उपलब्ध है। बगाल में आज भी यात्रा शैली पर अनेक नई रचनाएँ निकलती रहती है।

गम्भीरा :—

गम्भीरा लोक नाट्य भी बगाल में प्रचलित है। शैव मतावलम्बियो के मच को ही गम्भीरा नाम की सज्ञा दी है। शिव की आराधना करते समय यह मुख पर आवरण पहन कर ही अभिनय करते है जिसमे विभिन्न स्वागो का समावेश होता है। गम्भीरा लोक नाट्य मे मच की कोई आवश्यकता नही होती है। इसमे अभिनेताओ को पूर्ण रूप मे स्वतन्त्रता होती है। जमीन पर ही कुछ कपड़ा बिछा दिया जाता है और दर्शकों के बीच एक कपड़ा तान दिया जाता है। फिर अभिनय आरम्भ होता है, गम्भीरा नाम होने पर भी इस शैली में गभीरता नही झलकती।

कीर्तनिया :—

कीर्तनिया भी लोक नाट्य का रूप है। कीर्तनिया नाटक मे धर्म की प्रधानता होती है। इसमे भावुकतावश भक्त लोग हरिलीला का भजन करते है। इस नाटक की मूल भावना हरि लीला के कीर्तन मे ही है। मिथिला तथा बगाल में जब चैतन्य महाप्रभु ने अपनी वाणी द्वारा कृष्णलीला को उत्कृष्टता प्रदान की थी तभी नेपाल मे राजदरबारो की गीति नाट्य परम्परा के साथ कीर्तनिया नाटको का आरम्भ मिथिला प्रदेश मे हुआ था। कीर्तनिया नाटको मे नृत्य की प्रधानता होती है। इसमे गद्य तथा कथानक का प्रयोग बहुत कम मात्रा में होता है। यह नाटक रात में ही खुले मचो पर उपस्थित किये

जाते थे। शिव या कृष्ण चरित्र ही इन नाटको मे अभिनीत किए जाते है। नारदीय सगीत का प्रयोग भी इसमें किया जाता था जो आज भी मालवा के लोक नाट्य में मिलता है।

अंकिया :—

१६वी तथा १७वी शताब्दी में कीर्तनिया नाटक ही अकिया नाटक के नाम से आसाम में प्रचलित हुआ। इसमें पद्य की अपेक्षा गद्य का विकास अधिक हुआ। इस नाटक मे एक ही अक होता है इसलिए इसे अकिया नाम से सम्बोधित किया गया है। इन नाटको में वैष्णव धर्म का प्रचार अधिक था। गोपाल देव और शकर देव अकिया के प्रसिद्ध नाटककार हुए हैं। व्रज की कला के पश्चात् मिथिला, बगाल आदि निकटतम क्षेत्रों में लोक कला अधिक सफल और सहायक सिद्ध हुई है। जयदेव एव विद्यापति कवियो की पदावली ने लोक सगीत को प्रेरणा प्रदान की है।

कठपुतली .—

कठपुतली लोक रगमच का प्राचीन काल से महत्वपूर्ण अग रही है। भारतीय नाट्यशास्त्र मे सूत्रधार का प्रयोग जो होता है वह कठपुतली से ही आया है। यह लोगो के मनोरजन के लिए सर्वप्रिय साधन रहा है। कठपुतली के मच निर्माण में किसी विशेष वस्तु की आवश्यकता नही पडती है। इसमे केवल एक चारपाई खडी करके और रगीन पर्दा डाल कर ही नाटक प्रदर्शित किया जाता है। डा० श्याम परमार ने अपनी पुस्तक 'लोकधर्मी नाट्य-परम्परा' में चार प्रकार की कठपुतलियों का वर्णन किया है जैसे—१—भारतीय कठपुतली २—मौजो वाली कठपुतली ३—सलाई वाली कठपुतली तथा ४—चौडी पुतली आदि।

१—भारतीय कठपुतली :—जिसे सूत्र द्वारा सचालित किया जाता है—रूका और ब्रह्मा में भी इसी प्रकार की पुतलियों का प्रचार है। इन पुतलियो के अग एक दूसरे से जुडे हुए और लचकदार होते हैं। यह सबसे अधिक प्रचलित प्रकार है।

२—मौजो वाली कठपुतली :—(ग्लोव डाल) का प्रचार इगलैंड मे 'पच' और वुडी, फ्रान्स में 'गुगनाल' एव जर्मनी में 'केसपर' के नाम से पाया जाता है।

३—सलाई वाली कठपुतली :—नीचे की ओर से सलाई द्वारा सचालित की जाती है। तुर्किस्तान और चीन मे इसका प्रचलन है।

४—चौड़ी पुतली :—इसका भी एक प्रकार है जो सलाई द्वारा सचालित होती है पर मुख पुतली की अपेक्षा उसकी परछाई को ही परदे पर दिखाया जाता है। दक्षिण

भारत में 'पावाबुथू' के नाम से यह पुतली प्रसिद्ध है।[1]

कठपुतली के खेल मे प्रमुखत. मुग़लकालीन दरबारियो पर व्यग्य किया जाता था। आज भी भारतवर्ष में मालवा, महाराष्ट्र, राजस्थान, मलाबार आदि में यह परम्परा प्रचलित है। चीन, लका, जावा आदि में अभी तक लोक मनोरजन के माध्यम का साधन है। राजस्थान की कठपुतलियो में ऐतिहासिक वृत्तो तथा लोककथाओं का समावेश हुआ है। इस प्रकार कठपुतलियो का अपना महत्वपूर्ण स्थान रहा है। गाँव में भी आज इसकी प्रथा प्रचलित है। वात्स्यायन ने ६४ कलाओ के अन्तर्गत काष्ठपुत्तलिका की कला को भी महत्त्व दिया है।

तमाशा :—

तमाशा महाराष्ट्र का शताब्दिया प्राचीन लोक नाट्य है। तमाशा गणपति की स्तुति से ही आरम्भ किया जाता है। यह एक प्रकार का गीति नाट्य होता है जिसे कि बडे ही मनोरजन के साथ उपस्थित करते हैं। तमाशे में दो-तीन पुरुषो के साथ एक नर्तकी भी होती है जो कि साथ में गाती और नाचती भी है। इन्ही शृगारप्रधान लावनियो द्वारा ही तमाशा आकर्षकपूर्ण होता है। आध्यात्मिक विषयो की अपेक्षा लौकिक विषयों का समावेश अधिक होता है। तमाशा उपस्थित करने के लिए कोई विशेष मच की आवश्यकता नहीं होती है। इसमें अधिकाश कथा प्रधान अश ही प्रस्तुत किए जाते हैं। तमाशा उपस्थित करने वाली मडली, 'फड' कहलाती है।

साधारण जनता के लिए तमाशा अधिक प्रभावोत्पादक मनोरजन का साधन है, क्योंकि इसमें शृगारपरक, सामाजिक, ऐतिहासिक, लौकिक आदि भावनाओ के कथासूत्रों और पद्यात्मक कथनो की प्रधानता रहती है। तमाशे में दर्शको तथा पात्रो के बीच मे कोई विशेष दूरी नही होती है। नैकट्य की उष्मता दोनों पक्ष अनुभव करते है, और अनेक प्रकार की सामग्री दर्शको को तमाशाकारा से मिलती है। छोटे-छोटे पद्य तथा पद्यात्मक सवादो द्वारा अनेक कथानक एक ही समय उपस्थित किए जा सकते हैं। सामयिक प्रसगो की झाँकियाँ भी दर्शको का मनोरजन करती है।

गणेश रगनाथ दडवते जो मराठी के विद्वान हैं, का कथन है कि 'तमाशा कन्नड के लोक नाट्य का एक रूप है क्योंकि कन्नड का एक तमाशा महाराष्ट्र के तमाशे से बहुत मिलता है। कन्नड सस्कृति की प्राचीनता को ध्यान मे रखते हुए यह सम्भावना ग्राह्य हो सकती है। दूसरा इन्होने यह भी बताया है कि यह परम्परा गोघल नामक धर्म प्रणीत नाट्य से विकसित हुई प्रतीत होती है।'[2]

---

१ लोकधर्मी नाट्य परम्परा—डा० श्याम परमार—पृ० ८५

२—महाराष्ट्र नाट्य कला व नाट्य वाङमय—गणेश रगनाथ दडवते—पृ० १५

वस्तुत. यह स्पष्ट होता है कि १६ वी शताब्दी के पूर्व ही से 'तमाशा' की परम्परा प्रचलित रही है। महाराष्ट्र मे मुसलमानो के आने के पूर्व ही ग्रामीण नाट्य परम्पराएँ प्रचलित रहती है। महाराष्ट्र में यह जातीय परम्पराएँ आपस मे ऐसी घुलमिल गयी कि इन्हे विच्छिन्न नही किया जा सकता। १८ वी शताब्दी मे होनाजी बालाजी, परशुराम, अनदफंदी आदि लावनीकार शाहिर हुए है जिनकी शृगारिक रचनाओ द्वारा 'तमाशा' को अधिक पुष्टता मिली है। 'लावनी' की उत्पत्ति तमाशा के लिए हुई, ऐसा कहा जाता है। श्री सखदे ने लिखा है, 'मराठी का शाहीर शब्द मूलत अरबी के शायर, जिसका अर्थ कवि है, को मराठी पहनावा देकर उपलब्ध किया गया है। उसी प्रकार की 'लावनी' मराठी-कल्पनाओ, सस्कृत की उपमाओ एवं मधुरवृत्त के सयोग से सृजित हुई है।'[1] 'पवाड़ा' छन्द का भी लावनी के साथ प्रचार हुआ।

'तमाशा' लोक नाट्य का अपना महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह केवल महाराष्ट्र के गाँवों की ही वस्तु नही है। परन्तु शहरो मे चित्रपट मे आधुनिक मच की सुव्यवस्था को प्राप्त कर जनता के हृदयहारी मनोविनोद का साधन बन गया है। आज भी मेलो तथा उत्सवो के समय तमाशा आकर्षण का मुख्य विषय है। यह लोकरजन के लिए विशेष महत्त्वपूर्ण माध्यम रहा है।

ललित :—

महाराष्ट्र में ललित लोक नाट्य का रूप सर्वप्रिय रहा है। विभिन्न विद्वानो ने इसकी उत्पत्ति में मतभेद बताया है। श्री गणेशरगनाथ दडवते ने ललित की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे कहा है कि, '१६ वी शताब्दी में बम्बई निवासी दादापत मराठे ने ललित का अभिनय करना आरम्भ किया। दादापत ने पूना के प्रख्यात सावजी मल्लपा, बडोदा के बाघोजी बुवा और बम्बई के पटाली बुवा को अपने अपने ललित दल सगठित करने की प्रेरणा दी। इतना ही नही तीनो व्यक्ति दादापत के पास बहुत दिनो तक रहे और उन्होने ललित का यथोचित अभिनय सीखा है।'[2] इससे यह स्पष्ट होता है कि ललित बहुत प्राचीन है। मराठी शास्त्रीय कोष इसकी उत्पत्ति के विषय मे बताता है कि 'नव रात्रादि सम्बन्धी कीर्तन विशिष्ट जे उत्साह त्याचे अन्तिम दिवशी रात्रो उल्लास देवता सिंहासनारूढ झाली असें कल्पून, वासदेव, दडो गण। ईश्वर भवताची सागे त्यासोगानी स्व सम्प्रदायानुरूप देवा पाशी प्रसाद मागावा आणि तो सर्व समासदास वाटावा असा जो हरिदासजन कीर्तन-विशिष्ट समारभ करितात ते—' दिया है। इन पक्तिया से यह तात्पर्य है कि ललित

१—मराठी साहित्य समालोचना—श्री सरवटे—पृ० २०

२—महाराष्ट्र नाट्य कला व नाट्य वाङमय—श्री गणेश रगनाथ दडवते—पृ० ४, ५

नवरात्रि सम्बन्धी विशिष्ट कीर्तन है जिसमे अन्तिम दिन उत्साह देवता सिंहासन विराजे, यह कल्पना का ईश्वर भक्तों के स्वांग आदि किये जाते है तथा देवता से प्रसाद प्राप्त करने का अभिनय कर उसी प्रसाद को दर्शकों मे वितरित किया जाता है।'[1]

उपर्युक्त पंक्तियों से यह ज्ञात होता है कि इसमे स्वांग की विशेषता नाटकीय रूप मे बढ़ती गयी और कीर्तन की मात्रा कम होती गई। आरम्भ मे ललित केवल पौराणिक कथानकों से सम्बन्धित रहा है किन्तु तत्पश्चात् लोक जीवन मे सम्बन्धित चरित्रो को भी व्यंग्यात्मक शैली में प्रस्तुत किया जाने लगा। ललित लोक नाट्य मे गणपति तथा नान्दी का प्रवेश आवश्यक है। इसके कथानक में कथावस्तु की अपेक्षा गीत और अभिनय को विशेष रूप मे महत्त्व दिया जाता है। यह नाटक अधिकतर धार्मिक उत्सव पर ही अभिनीत किये जाते है।

गोंधल :—

गोंधल लोक नाट्य का मराठी नाटक के आदि रूपों में अपना निजी स्थान है। गोंधल का शाब्दिक अर्थ गड़बड़ी होना है। किन्तु प्रमुख हास्य अभिनेता को ही गोंधल की संज्ञा से अभिहित किया जाता है, अभिनय आरम्भ करने के पूर्व वह गोंधली पांच देवी देवताओं की स्तुति करते हैं तत्पश्चात् कथा आरम्भ कर किसी चरित्र का वर्णन करते है। अम्बा इनकी विशेष देवी है। इसके संवाद पवाड़े की धुन पर ही आधारित होते है। यह संवाद गीत कथा को विकसित करने में सहायक होते है। इस लोक नाट्य की शैली पर धार्मिक तत्त्वों के साथ तान्त्रिक भावों का प्रभाव भी स्पष्ट प्रदर्शित होता है। इसी से इस शैली में लोक तत्त्वो का समुचित प्रभाव परिलक्षित होता है। विवाह आदि के समय पर ही गोंधल की व्यवस्था की जाती है।

ख्याल :—

लोक नाट्य का प्रमुख रूप ख्याल है जो कि राजस्थान में प्रचलित है। इसका आरम्भ १८ वी शताब्दी से माना जाता है। 'ख्याल' लोक भाषा का शब्द है। अगर चन्द्र नाहटा ने श्री उदयशंकर शास्त्री के लेख का एक उदाहरण प्रस्तुत किया है—ऐसा कहा जाता है कि १८ वी शताब्दी के प्रारम्भ के आस-पास ही आगरे के इर्द-गिर्द एक नई कविता शैली प्रचलित हो चली थी, आगे चल कर जिसका नाम 'ख्याल' पड़ा। ख्याल निश्चित ही उर्दू और फारसी के मसाले से तैयार चीज़ है, उसको नये कथानकों में बाँधना सबका काम नही होता। इन ख्यालियो के कई दल थे जिनमें सभी प्रकार के

१—लोकधर्मी नाट्य परम्परा—डा० श्याम परमार—पृ० ६६

लोग थे और सभी प्रकार की वर्दिशें बाँधने वालो के गोल कभी-कभी होड भी लगाने लगते थे।[1] इस उदाहरण से भी यह स्पष्ट है कि इसका आरम्भ १८ वी शताब्दी से हुआ।

ख्याल मे धार्मिक तथा ऐतिहासिक कथाओ की अपेक्षा जनश्रुति पर आधारित धार्मिक एवं ऐतिहासिक घटनाओ से सम्बन्धित कथानको को ही अभिनीत किया जाता है। इसमें गीतो की प्रधानता रहती है। स्त्री-पात्रों के आधार पर पुरुष लोग ही अभिनय करते है। राजस्थान के गाँवो मे ख्यालो का प्रचार अधिक है।

वीथी माग वतुम् :—तेलुगु लोकमच के वीथी का अपना विशिष्ट स्थान है। वीथी नाट्यम् का अर्थ है, जो नाटक मार्ग मे प्रदर्शित हो। इसका मच खुले स्थान पर ही बनाया जाता है जिस पर कचपुडी की ब्राह्मण कलाकर की मण्डिलियाँ अभिनय प्रस्तुत कर जनता को मुग्ध करती है। इस अभिनय मे स्त्रियाँ समूह बनाकर नृत्य करती हैं, और सामूहिक गायन का भी विशेष रूप से महत्व है। इस प्रदेश मे एक दूसरा लोक नाट्य का रूप भी प्रचलित है जिसे 'तोलुवीम्लाह्' कहते है इसका अर्थ है चमडे के चित्रो का खेल। यह लोक नाट्य का रूप कठपुतलिया का रूपान्तर मात्र है। 'वीथी भागवतुम्' लोक नाट्य को जनता के साथ ही इस शासन की ओर से भी सम्मान मिलता रहा है। आज भी गाँव मे इस रूप का प्रचार है।

माच :—माच शब्द का मालवी तद्भव रूप है। इस शब्द का प्रयोग मालवी मे मच बाँधने और अभिनीत किए जाने वाले ख्याल (खेल) दोनो अर्थों में है। नौटकी से माच का अधिक साम्य है। और नौटकी की भाति ही इसका रगमच भी साधारण ढग का होता है। माच म ढोलक को भी स्थान दिया जाता है। इसमें पद्य की प्रधानता रहती है, यही कारण है इसे गीति नाट्य की कोटि में रखा जाता है।

जातीय लोक नाट्य—उपर्युक्त नाट्य रूपो के अतिरिक्त लोक म विभिन्न जातियो मे भी लोक नाट्यो का प्रचार है। जिन्हे कि 'स्वाग' नाम की सज्ञा दी गई है। इन स्वागो मे गीत और नृत्य की प्रधानता होती है। इसमें मच की कोई विशेष व्यवस्था नही होती है। स्वागो में धनी वर्ग विशेष पर ही व्यग्य किया जाता है। इन व्यग्यो की व्यजना बडी ही मार्मिक तथा प्रभावोत्पादक होती है। दूसरा इन स्वागो में वाद्यो की प्रधानता होती है जिससे कि लोक जीवन की कला-कुशलता का परिचय मिलता है। यह स्वाग बडे ही मनोरजक तथा आकर्षक होते हैं जो कि साधारण जनता को अपनी ओर मुग्ध करते हैं। जातीय लोक नाट्यो की भी अपनी विशेषता तथा अपनी स्वतन्त्रता होती है।

१—लोक कला, भाग १, अक २, ख्यालों की पूर्व परम्परा—पृ० ९४

लोक-नाटकों की विशेषताएँ :—

युगों से चली आ रही इस लोक नाट्य परम्परा की अपनी स्वतन्त्र सत्ता और महत्व है। लोकनाट्य परम्परा विकसित होकर इस ढंग पर आ गयी है कि इसे रूढ़ कहा जा सकता है। इसलिए इसकी अपनी विशेषताएँ उभर सकती है। लघुनाटिकाओ तथा प्रहसनो मे भी कुछ व्यवस्था का रूप प्रदर्शित होता है। लोक नाट्यो की निम्नलिखित विशेषताएँ है :—

१—भाषा तथा संवाद :—इन नाटको की भाषा विशेष रूप से काव्यमयी होती है। गद्यात्मक संवादो की अपेक्षा इसमें पद्यात्मक संवादों की प्रधानता होती है। गद्य का प्रयोग केवल भाड़ो के हास्यास्पद अभिनय में किया जाता है। पद्यबद्ध संवादो द्वारा दर्शकगण शीघ्र ही आकृष्ट होते हैं और उसे इस भांति ग्रहण करते है जिस भांति संवेदनशील कलाकारो की रचनाओ के सुन्दर तथा आकर्षक भाव प्रवीण-कुशल पाठक ग्रहण करते है। मध्यकाल के पूर्व से ही पद्यबद्ध संवादों की परम्परा चली आ रही है। नाटको में पद्य की अधिकता प्राचीनता की द्योतक है जो कि अपने तक ही पर्याप्त नही रहा, बल्कि संस्कृत नाटको को भी प्रभावित किया।

कथानक :—प्राय: लोक नाट्यो मे विकृत कथानकों का प्रयोग किया जाता है। यह कथानक अधिकतर ऐतिहासिक, सामाजिक तथा पौराणिक विषयो से ही सम्बन्धित होते हैं। लोक नाट्यो मे कथानक के कई रूप हमें मिलते हैं—एक तो यह जो कथा के सहारे चलता है और दूसरा, जिसको लघुप्रहसनो में महत्व दिया जाता है। ग्रामों में मनोरंजन के समय प्रहसनों का अभिनय किया जाता है। जगदीशचन्द्र माथुर का कथन है कि 'लोक नाटकों में कथानक प्राय: ढीला-ढाला होता है और पूर्वार्द्ध में जितनी विलम्बित गति से कथा बढ़ती है, उत्तरार्द्ध में उतनी ही द्रुत और अस्वाभाविक गति से घटनाओ को ढकेला जाता है। किन्तु इससे अधिक कलात्मक वे लोकनाट्य होते है जिसमें घटनाओ के शिल्प विधान के स्थान पर जीवन की झाँकियों की लड़ी होती है अथवा जिनमें पौराणिक और धार्मिक कथाओ का पूर्व-परिचित दर्शन होता है। जो भी हो, लोक रंगमच के दर्शक कथानक के चमत्कारपूर्ण अंश अथवा घटनाओ के कुतूहलपूर्ण उद्घाटन की आशा नही करते। ये प्राय: पहले ही से परिचित होते है। और इसलिए कथा से प्राप्त मनोरंजन उनका लक्ष्य नही होता बल्कि रसानुभूति द्वारा प्राप्त तृप्ति[१]। कभी-कभी उच्च वर्गों तथा सम-सामयिक विषमताओ पर भी व्यंग्य किया जाता है किन्तु दर्शकों के मनोविनोद में कोई बाधा उपस्थित नही होती।

१—लोकधर्मी नाट्य परम्परा—डा० श्याम परमार—पृ० १०

पात्र :—लोक नाट्यो के पात्र विशिष्ट प्रकार के होते है जो कि अपनी विशेपताओ से विभूपित होते है। पात्र समाजगत प्रवृत्तियो से परिचित होते है। प्रत्येक अभिनेता अभिनीत होने वाली नाटक की घटना को कर सकता है। कभी निर्धारित सवादो के अतिरिक्त पात्र अपनी ओर से कुछ पक्तियाँ जोडकर रस सृष्टि करने मे सहायक होता है।

चरित्र-चित्रण —इसमें सूक्ष्म सवेदनाओ को प्रकट करने का अभाव है। जो कुछ भी सवादो द्वारा प्रकट किया जाता है वह पात्रो की वेशभूपा तथा चरित्र के दृष्टिकोण के हाव-भाव पर ही अवलम्बित है। विदूपक अपने हास्य द्वारा चरित्र के आतरिक भावो को प्रदर्शित करता है और दर्शको को अपने चरित्र की भाव भगिमाओ तथा अनेक प्रकार की मुद्राओ द्वारा आकर्पित करता है।

संगीत का प्रयोग :—लोकनाट्यो मे सगीत की प्रधानता है। नौटकी तथा माच मे ढोलक-नगाडे के बिना कार्य नही होता है। आँचलिकता से सगीत की शैली प्रभावित होती है। लोकनाट्य मे आरम्भ से लेकर अन्त तक ही वाद्य वजते रहते है।

रंगमंच :—लोकनाट्यो के रगमच साधारण ही होते है, चौराहो पर तथा आगन मे किसी ऊँचे एव खुले स्थान पर ही मच की व्यवस्था की जाती है। लोक नाटको में पर्दे बदलने की व्यवस्था नही होती है। इसमे प्रत्येक पात्र प्रत्येक कार्य करने की कला मे निपुण होता है और प्रत्येक पात्र अपने उत्तरदायित्व को समझना है।

हास्य रस :—हास्य लोक-नाटको का प्रमुख तत्व है। इसमें विदूपक को नाटक के प्रत्येक प्रसग मे प्रवेश करने की स्वतन्त्रता होती है। यह अपने हाव-भाव तथा हास्यात्मक सवादो द्वारा दूर बैठे हुए दर्शको का मन गुदगुदाने मे सफल सिद्ध होता है। विपय परिस्थितियो के उत्पन्न हो जाने पर भी विदूषक अपने हास्यात्मक कार्यो मे सफलता प्राप्त करता है।

लोक वार्ता :—लोकनाटको मे लोक-वार्ता का भी समावेश होता है। लौकिक आचारो के साथ मुहावरे, कथाएँ तथा लोकभापा आदि का प्रयोग पात्रो द्वारा मच पर प्रकट होता है। लोकनाटको में सगीत, सवाद, कथानक आदि अभिनय के साथ आवद्ध होते हैं।

उद्देश्य :—इन नाटको का प्रमुख ध्येय समाज का मनोरजन करना ही होता है। लोक जीवन सम्बन्धी तत्वो का भी प्रयोग किया जाता है। किन्तु कुछ नाटको का ध्येय लोक जीवन के रीति-रिवाजो तक ही सीमित होता है।

समस्त लोक नाटको पर दृष्टिपात करने से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचने है कि १७ वी शताब्दी के पश्चात् इन नाटको में जो स्थिरता आ गयी थी, वह सब रूढ हो गयी। क्योकि सामाजिक स्तर में काफी परिवर्तनशीलता उत्पन्न हो गयी थी। कथानकों

लोक-नाटको की विशेपताएँ :—

युगो से चली आ रही इस लोक नाट्य परम्परा की अपनी स्वतन्त्र सत्ता और महत्व है। लोकनाट्य परम्परा विकसित होकर इस ढग पर आ गयी है कि इसे रूढ कहा जा सकता है। इसलिए इसकी अपनी विशेपताएँ उभर सकती है। लघुनाटिकाओ तथा प्रहसनो में भी कुछ व्यवस्था का रूप प्रदर्शित होता है। लोक नाट्यो की निम्नलिखित विशेपताएँ है —

१—भापा तथा संवाद :—इन नाटको की भापा विशेप रूप से काव्यमयी होती है। गद्यात्मक सवादो की अपेक्षा इसमें पद्यात्मक संवादो की प्रधानता होती है। गद्य का प्रयोग केवल भाडो के हास्यास्पद अभिनय मे किया जाता है। पद्यबद्ध सवादो द्वारा दर्शकगण शीघ्र ही आकृष्ट होते है और उसे इस भाति ग्रहण करते हैं जिस भाँति सवेदनशील कलाकारो की रचनाओ के सुन्दर तथा आकर्षक भाव प्रवीण-कुशल पाठक ग्रहण करते है। मध्यकाल के पूर्व से ही पद्यबद्ध संवादो की परम्परा चली आ रही है। नाटको मे पद्य की अधिकता प्राचीनता की द्योतक है जो कि अपने तक ही पर्याप्त नही रहा, बल्कि सस्कृत नाटको को भी प्रभावित किया।

कथानक :—प्राय. लोक नाट्यो मे विकृत कथानको का प्रयोग किया जाता है। यह कथानक अधिकतर ऐतिहासिक, सामाजिक तथा पौराणिक विपयो से ही सम्बन्धित होते हैं। लोक नाट्यो मे कथानक के कई रूप हमें मिलते हैं—एक तो यह जो कथा के सहारे चलता है और दूसरा, जिसको लघुप्रहसनो में महत्व दिया जाता है। ग्रामो में मनोरजन के समय प्रहसनो का अभिनय किया जाता है। जगदीशचन्द्र माथुर का कथन है कि 'लोक नाटको में कथानक प्राय: ढीला-ढाला होता है और पूर्वार्द्ध में जितनी विलम्बित गति से कथा बढती है, उत्तरार्द्ध में उतनी ही द्रुत और अस्वाभाविक गति से घटनाओ को ढकेला जाता है। किन्तु इससे अधिक कलात्मक वे लोकनाट्य होते है जिसमें घटनाओ के शिल्प विधान के स्थान पर जीवन की झाँकियो की लड़ी होती है अथवा जिनमें पौराणिक और धार्मिक कथाओ या पूर्व-परिचित दर्शन होता है। जो भी हो, लोक रंगमच के दर्शक कथानक के चमत्कारपूर्ण अश अथवा घटनाओं के कुतूहलपूर्ण उद्घाटन की आशा नही करते। ये प्राय: पहले ही से परिचित होते है। और इसलिए कथा मे प्राप्त मनोरंजन उनका लक्ष्य नही होता बल्कि रसानुभूति द्वारा प्राप्त तृप्ति[१]। कभी-कभी उच्च वर्गों तथा सम-सामयिक विपमताओ पर भी व्यग्य किया जाता है किन्तु दर्शकों के मनोविनोद में कोई बाधा उपस्थित नही होती।

१—लोकधर्मी नाट्य परम्परा—डा० श्याम परमार—पृ० १०

पात्र :—लोक नाट्यों के पात्र विशिष्ट प्रकार के होते है जो कि अपनी विशेषताओं से विभूषित होते है। पात्र समाजगत प्रवृत्तिया से परिचित होते है। प्रत्येक अभिनेता अभिनीत हाने वाली नाटक की घटना को कर सकता है। कभी निर्धारित सवादो के अतिरिक्त पात्र अपनी ओर से कुछ पक्तियाँ जोडकर रस सृष्टि करने में सहायक होता है।

चरित्र-चित्रण —इसमें सूक्ष्म सवेदनाओ को प्रकट करने का अभाव है। जो कुछ भी सवादो द्वारा प्रकट किया जाता है वह पात्रो की वेशभूषा तथा चरित्र के दृष्टिकाण के हाव-भाव पर ही अवलम्बित है। विदूषक अपने हास्य द्वारा चरित्र के आतरिक भावो को प्रदर्शित करता है और दर्शको को अपने चरित्र की भाव-भगिमाओ तथा अनेक प्रकार की मुद्राओं द्वारा आकर्षित करता है।

सगीत का प्रयोग :—लोकनाट्यो मे सगीत की प्रधानता है। नौटकी तथा माच मे ढोलक-नगाडे के बिना कार्य नही होता है। आंचलिकता से सगीत की शैली प्रभावित होती है। लोकनाट्य मे आरम्भ से लेकर अन्त तक ही वाद्य बजते रहते है।

रगमंच :—लोकनाटयो के रगमच साधारण ही होते है, चौराहो पर तथा आगन में किसी ऊँचे एव खुले स्थान पर ही मच की व्यवस्था की जाती है। लोक नाटको में पर्दे वदलने की व्यवस्था नही होती है। इसमे प्रत्येक पात्र प्रत्येक कार्य करने की कला मे निपुण होता है और प्रत्येक पात्र अपने उत्तरदायित्व को समझता है।

हास्य रस :—हास्य लोक-नाटको का प्रमुख तत्व है। इसमे विदूषक को नाटक के प्रत्येक प्रसंग मे प्रवेश करने की स्वतन्त्रता होती है। यह अपने हाव-भाव तथा हास्यात्मक सवादो द्वारा दूर वैठे हुए दर्शको का मन गुदगुदाने में सफल सिद्ध होता है। विपय परिस्थितिया के उत्पन्न हो जाने पर भी विदूषक अपने हास्यात्मक कार्यों में सफलता प्राप्त करता है।

लोक वार्ता :—लोकनाटको मे लोक-वार्ता का भी समावेश होता है। लौकिक आचारो के साथ मुहावरे, कथाएँ तथा लोकभापा आदि का प्रयाग पात्रा द्वारा मच पर प्रकट होता है। लोकनाटको में सगीत, सवाद, कथानक आदि अभिनय के साथ आवद्ध हाते हैं।

उद्देश्य :—इन नाटका का प्रमुख ध्येय समाज का मनोरजन करना ही होता है। लोक जीवन सम्बन्धी तत्वो का भी प्रयोग किया जाता है। किन्तु कुछ नाटको का ध्येय लोक जीवन के रीति रिवाजो तक ही सीमित होता है।

समस्त लोक नाटका पर दृष्टिपात करने से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि १७ वी शताब्दी के पश्चात् इन नाटका में जा स्थिरता आ गयी थी, वह सब रूढ हो गयी। क्योकि सामाजिक स्तर में काफी परिवर्तनशीलता उत्पन्न हो गयी थी। कथानको

म नवीन भावो का प्रयोग एव नवीन शैली का समावेश होने लगा।

धार्मिक महत्व :—प्राचीन काल से ही धार्मिक भावना की प्रधानता रही है। धर्म को ही आधार मान कर उचित या अनुचित कार्य का निर्णय किया जाता था। समाज के अन्तर्गत किसी भी कार्य को आरम्भ करने के पूर्व धर्म को ही प्रश्रय दिया जाता था। यही कारण है कि इस समय ब्राह्मण लोग आदर की दृष्टि से देखे जाते थे। यज्ञो की प्रथा प्रचलित थी। इन्द्र, ब्रह्मा, अग्नि, विष्णु आदि की पूजा की जाती थी। देवी-देवताओ की उपासना होती थी और उन्हे प्रसन्न करने के लिए यज्ञादि किए जाते थे।

लोकनाट्य का धार्मिकता से घनिष्ठ सम्बन्ध है और इसका महत्व लोक धार्मिकता के स्वरूप मे ही निहित है। लोकवार्ता का विशेष रूप से अग होने के कारण लोकजीवन मे इन नाटको की अपनी स्वतत्र सज्ञा एव आकर्षण है। लोकनाट्य का लोक जीवन से अग-अगी का सम्बन्ध है। जन-जीवन की प्रतिक्रियाओ का स्वतत्र रूप तथा लोक मनोभावो का विकास लोक धार्मिक भावना में ही मिलता है। लोक नाट्यो की उत्पत्ति समारोहो, ऋतु पर्वो, मेला, आनन्द के क्षणो तथा विभिन्न अवसरो पर ग्रामीण क्षेत्रो में विशेष रूप से हुई है। सम्भवत यही सब देखते हुए भरत मुनि ने नाट्य शास्त्र के चौदहवें अध्याय में लोक धार्मिकता की ओर सकेत किया है।

हमारे प्रारम्भिक अभिनय धार्मिक ही थे। सास्कृतिक एव धार्मिक प्रेरणाओ से प्रेरित लोक नाट्य का सार्वजनिक तथा लोकप्रिय रूप शास्त्रीय नाटको मे भी धीरे-धीरे विकसित हुआ। अभिनय, सगीत, नृत्य आदि तीनो तत्त्व विलग न होकर सामूहिक इकाई के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित हुए, जो आज भी प्राचीन लोक नाट्यों मे प्रचलित है।

मानव हृदय की निगूढतम अनुभूतियो, काम-क्षुधा, आनन्दातिरेक, उत्साह, भय तथा धर्म भावना नृत्यो के रूप मे आदि ज्ञान प्रभात से आज तक भावनाओ की प्रत्यक्षीकरण माध्यम बन कर हमारे समक्ष आती रही है। नृत्य मानव की एक प्रबल उद्दाम प्रेरणा की कलापूर्ण अभिव्यक्ति है। नृत्यो का प्रयोग देवो की पूजा तथा प्राचीन धार्मिक पौराणिक उपाख्यानो की अभिव्यक्ति के लिए हुआ। आदि नर्तक के मूक अभिनय विविध हाव-भाव, कायिक, वाचिक क्रियाएँ मुख मुद्राएँ, स्वर साधन प्रारम्भिक अभिनयो के आदि रूप है[१]।

धार्मिक उपाख्यान अभिनय के रूप मे अभिनीत होनें के कारण अधिक प्रभावोत्पादक एव आकर्षक बने। धार्मिक कथानक को अभिव्यक्त करने के लिए विभिन्न नर्तक-नर्तकियो का समावेश किया गया। धार्मिक और आचार सम्बन्धी सिद्धान्तो को सामान्य

१—राजस्थानी लोक नाट्य—श्री देवीलाल (नया समाज) पृ० २१९ (मार्च १९५२)

जनना मे प्रचारित कर आस्तिक भावना को जाग्रत किया गया। प्राचीन देवी-देवताओ तथा पौराणिक महापुरुषो के चरित्रो का उल्लेख कर विशिष्ट धार्मिक आदर्शों की प्रतिष्ठा हुई। धार्मिक अभिनयो मे भजन और देवी-देवताओ की स्तुति को महत्व दिया। धार्मिक भावना ने ही विविध सम्प्रदायों मे फैले हुए अन्धविश्वास, रूढ़ियाँ एवं कुरीतियों को दूर कर धर्म को जीवन के स्वाभाविक धरातल पर लाकर उसे व्यावहारिक रूप दिया। मानव जीवन में धर्म सम्बन्धी प्रसंगो के प्रति अनुराग और अभिरुचि उत्पन्न की।

संस्कृत नाट्य साहित्य मे भी हमें लोक नाट्य के उदाहरण मिलते है—जैसे प्रहसन, भाण, सट्टक, व्यायोग, समवकार आदि को लोक शैली के नाट्य रूप कह सकते है। महाभारत, रामचरितमानस, श्रीमद्भागवत ग्रन्थो में धार्मिक भावना निहित है। इससे यह प्रतीत होता है कि लोक नाट्य का धार्मिक महत्व और अपनी स्वतंत्र सत्ता रही है।

सामाजिक एवं राजनीतिक महत्व—

सामाजिक तथा राजनीतिक दृष्टिकोण से लोक नाट्य का अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रहा है। ये नाटक लोक मानस की अनुकरणमूलक प्रवृत्तियों एवं क्रियात्मक अभिव्यक्तियों के ही रूप हैं। संगीत, नृत्य आदि की इन नाटको में प्रधानता रही है। मंच पर यह नाटक सामूहिक रूप में ही अभिनीत किए जाते हैं। नाटककारो ने नाटकों को प्रस्तुत कर सामाजिक कुरीतियो का बहिष्कार किया और महान् पुरुषो के व्यक्तित्वों का आदर्श उपस्थित कर जन-जीवन में राष्ट्रीय प्रेम, भक्ति एव श्रद्धा की भावना को उत्पन्न किया। श्रेष्ठ रीति-रिवाजो के प्रति मानव का ध्यान आकर्षित कर उनकी जड़ो को दृढ़ बनाया। सामाजिक नाटकों को प्रस्तुत कर बाल-विवाह और पर्दे की प्रथा का अन्त कर स्त्री-शिक्षा की ओर सकेत किया।

प्राचीन काल से इन लोकरक्षक नाटकों की परम्परा चली आ रही है। नट, नक्कालो आदि ने इस खाई को बनाए रखा। इन नाटकों के जन-जागरण को देश के प्रति तथा जाति पर बलिदान होने के लिए उत्तेजित किया और देश भक्ति की भावना के बीज बोये। महान आत्माओं को जन्म देकर उनके व्यवहारों, सदगुणो की प्रतिष्ठा की। नाटकों द्वारा पूजाओ को प्रदर्शित कर मानव हृदय के लुप्त भावो को भक्ति के प्रति जाग्रत किया। 'गासों द तासी' नामक फ्रान्सीसी इतिहासकार ने अपने ग्रंथ में लोकनाट्य के रूप का उदाहरण प्रस्तुत किया है :—

दृश्य में कचहरी दिखाई गई है जिसमें यूरोपियन मजिस्ट्रेट बैठे हुए हैं। अभिनेताओं में से एक गोल टोपी सहित अंग्रेजी वेशभूषा में सीटी बजाते और अपने बूटों में चाबुक मारते हुए सामने आता है। तब किसी अपराध का दोषी कैदी लाया जाता है,

किन्तु जज, जो एक नवयुवती भारतीय महिला जो ग्वाह प्रतीत होती है, के साथ व्यस्त रहता है, ध्यान नहीं देता। जब कि गवाहियाँ सुनी जा रही है, वह कनखिया से देखे बिना किसी अन्य बात की ओर ध्यान दिये रहता है और परिणाम के प्रति उदासीन रहता है। अन्त में जज का खिदमतगार आता है जो अपने मालिक के पास जाकर और हाथ जोड कर आदरपूर्वक और विनम्रता के साथ धीमे स्वर मे उससे कहता है 'साहब टिफिन तैयार है।' तुरन्त जज जाने के लिए उठ खड़ा होता है, अदालत के कर्मचारी उससे पूछते हैं कि कैदी का क्या होगा ? नवयुक सिविलियन कमरे के बाहर जाते समय एड़ी के बल घूमते हुए चिल्लाकर कहता है 'गो डैम फासी'।'[१]

इन छोटे लोकपरक नाटका म राजनीतिक तथा सामाजिक परिस्थितियो की प्रतिक्रिया खूब झलकी है। प्रत्येक बात धर्म, हास्य, व्यग्य, राजनीतिक, सामाजिक स्थिति में सुलझती हुई अत मे सुखान्त स्थिति तक पहुँच जाता है। अन्य व्यवस्था का अभाव होने के कारण भी इन नाटको ने समाज में अपने अस्तित्व को बनाए रखा। देश प्रेम, राष्ट्रीयता राजनीतिक सुधार और समाज सुधार के लिए पृष्ठभूमि तैयार की। उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि राजनीतिक तथा सामाजिक दृष्टि से इन नाटको की अपनी स्वतन्त्र सत्ता एव महत्व रहा है।

इन समस्त लोक नाटको की विशेषता इस बात म रही है कि उनके द्वारा जहाँ किसी विशिष्ट आदर्श के प्रचार और प्रसार के लिए सार्वजनिक मच का प्रस्तुतीकरण हो वहाँ दूसरी ओर जनता के मनोरजन की पर्याप्त मात्रा उपस्थित हो जाए। जनता का मनोरजन सदैव ही हास्य के विविध रूपका मे घटित किया जाता है। इसलिए हास्य का निरूपण करते समय इस बात को आवश्यकता है कि हम उन अभिनय के रूपों का भी अध्ययन करें जिनके द्वारा हास्य की कोटिया निर्धारित की जा सकती है। और उसका विशिष्ट अध्ययन किया जा सकता है। जिन लोक नाटका का विवेचन हुआ, उनम परिस्थिति और पात्र के अनुसार हास्य की अवतारणा हो जाती है। यह भी देखा गया है कि प्राचीन कथाओ पर आधारित लोक रूपका में हास्य उत्पन्न करने के लिए समसामयिक प्रसगो को जोड कर हास्य की सृष्टि कर दी जाती है—उदाहरण के लिए रामराज्य के उत्सव म ताश के खेल, या बाजीगरो के करतबो मे पुरस्कार पाने के दृश्य भी दिखला दिये जाते है, जिससे हास्य की सृष्टि हो।

☐

---

१ हिन्दुई साहित्य का इतिहास गार्सा द तासी। (अनु० डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय) पृ० ३६, ३७

पंचम अध्याय : प्रहसन

प्रहसन की पृष्ठभूमि :—

मानव जीवन मे हास्य का विशिष्ट उपयोग है। प्रीति, क्रोध, आदि भावो की क्रिया-प्रतिक्रिया तथा उल्लास पशुपक्षी एवं जीवो मे स्पष्ट परिलक्षित होता है, परन्तु हास्य का सीधा लगाव मानव जीवन से ही है। हास्य ही साहित्य का एक विशिष्ट साधन है जिसके प्रयोग से समाज में फैली हुई कुरीतियो एव दुराचारी व्यक्तियो पर साकेतिक आक्षेप किया जा सकता है जो बिना कोई बाधा उपस्थित हुए अपने अभीष्ट प्रयोजन की सिद्धि करता है। हास्य एव व्यग्य रूपी लेखनी तलवार से भी कही अधिक तीक्ष्ण हथियार है जिसका आघात बाहर से तो नही मालूम होता, पर उसकी चोट भीतर से मर्म को विद्ध करती है तथा अपने कार्यो की सिद्धि में पूर्ण रूप से सफलता प्राप्त करती है।

सामाजिक रूप से यदि उस पर दृष्टिपात किया जाय तो प्रहसनो की रचना उस समय हुई जब कि समाज का सास्कृतिक स्तर निम्नकोटि का रहा है। जैसा हम ऐतिहासिक दृष्टिकोण से देखते आ रहे है कि उन्नति तथा अवनति का चक्र सदैव मे चलता रहा है। जैसे ही समाज उन्नत अवस्था को प्राप्त हाता है वैसे ही समय मे ऐसा परिवर्तन होता है कि उन्नति अवनति मे परिवर्तित हो जाती है और प्राचीनतम सिद्धान्तो के मापदंड भी परिवर्तित होने लगते है। इस ऐतिहासिक परिवर्तन में भी हमे समाज के कुछ अग ऐसे मिलते हैं जिन पर प्रहसनो की रचना हो सकती है। जीवन की उन्नति के साथ हमें कुछ ऐसे भी सिद्धान्त मिलते है जिनको लेकर साहित्यकार प्रहसनो की रचना कर सकते हैं।

इन विचारो से यह ज्ञात होता है कि प्रहसन का समाज से घनिष्ठ सम्बन्ध है। समाज का आश्रय लेकर ही वह अपनी सत्ता को बनाए रखता है। साहित्यिक एवं ऐतिहासिक दृष्टि से यह सिद्धान्त अधिक मान्य है। सर्वदा प्रहसन समाज के आश्रय में ही फल फूल सकता है और अपनी मर्यादा को बनाए रख सकता है। समाज से तात्पर्य केवल सामूहिक रहन-सहन से ही नहीं है। समाज के अन्तर्गत अनेक विषयो का समावेश कर सकते हैं। जैसे दर्शन, अर्थशास्त्र, राजनीति आदि सभी का सम्बन्ध हमारे मानव समाज

से है। इन सभी विषयों पर प्रहसनो की रचना हो सकती है। एरिस्टाफेनीज़ यूनानी लेखक ने भी अनेक प्रहसन लिखे है जिसमे उन्होने नाटककारो एवं लेखको की हँसी उड़ाई है क्योकि उनमे तथा अनेक विद्वानो मे साहित्यिक एवं राजनीतिक वैमनस्य था। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि प्राचीन काल से ही नाटककार तथा प्रहसनकार समाज एवं उसके अनेक अंगो का प्रहसनात्मक प्रयोग करते आए है।

प्रहसन का इतिहास :—

हमारा भारत धर्मप्रधान देश है। अत. धार्मिक आचार्यों के हाथ मे सदैव नेतृत्व की बागडोर रही है, किन्तु इस समय राजनीतिको का बोलबाला है। कभी हमारे धार्मिक आचार्यों के अन्तर्गत समाज मे फैली रूढ़ियो एवं कुरीतियों को सुधारने की शक्ति रही है तो कभी धार्मिक जगत् के नेतृत्व का भार बौद्ध भिक्षुओं के ऊपर निर्भर था, किन्तु काल क्रम की गति के कारण भिक्षु मानवीय दुर्बलता के शिकार बन गए।

मध्ययुग मे मुसलमान शासको के समय मे विलासता की प्रधानता रही है अतएवं चारो ओर भोगविलास का ही बोलबाला था। इस कारण मुसलमान तथा हिन्दू, साधु-सन्त सभी नैतिक दृष्टि से अध.पतित होने लगे। सुरापान व्यापक रूप से हो रहा था और शीघ्रता से समाज में कुरीतियाँ फैल गयी, साथ ही धर्म मे भी शिथिलता आ गयी तथा अन्धविश्वास की मात्रा भी बढ़ गई। यवनो के इस चारित्रिक पतन का प्रभाव साधु संत, महाराजा और हिन्दू राजाओ एव अन्य लोगों पर भी पड़ने लगा। इसी पतन के कारण मध्ययुग के धार्मिक क्षेत्र मे दुराचार तथा भ्रष्टाचार की विशेष रूप से वृद्धि हुई। एक ओर तो इन सब विकृतियो का प्रभाव पड़ रहा था और दूसरी ओर हिन्दू अपने धर्म के पुनरुत्थान के लिए विशेष रूप से प्रयत्नशील थे। कुछ महान सुधारको का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ।

आज के युग की भाति उनके पास कोई ऐसे साधन नही थे जिससे वह समाज मे फैली कुरीतियो, अन्ध विश्वासो और सामाजिक दुराचारो को दूर कर सकते। किन्तु साहित्य में हास्य ही केवल ऐसा माध्यम था जिसके द्वारा उपर्युक्त विकृतियो का सुधार हो सकता था। हास्यात्मक रचनाएँ भी मानव मस्तिष्क को प्रभावित कर सकती थीं। इसी कारण साहित्य में प्रहसनो की रचना आरम्भ हुई। काव्य दृष्टि के कारण प्राचीन प्रहसन भी विशुद्ध हास्य के पोषक है। अश्लीलता की छाप जो मध्ययुग में झलकती है वह तत्कालीन विलासी एवं विकृत समाज की प्रतिच्छाया है।

प्रहसनों की परम्परा तथा उसकी प्राचीनता :—

प्राचीन काल के प्रहसनो में वैदिक धर्म को मानने वाले चार्वाक तथा जैन, बौद्ध,

शैव, कापालिक के मतों की व्यंग्यात्मक रूप में हँसी उड़ाई गई है। इनमें आक्षेपजनक सिद्धान्तों की कुरीतियों की ओर, जिनसे जनता मे अनाचार फैलने की आशंका है, उनका चित्रण बड़े ही मार्मिक रूप से किया है। इन समस्त प्रहसनों का प्रयोग तत्कालीन धार्मिक तथा सामाजिक स्थितियों को जानने में ही है। ऐसे प्राचीन उच्चकोटि के प्रहसनों में से 'मतविलास' प्रहसन प्रमुख है। इसके लेखक पल्लव वंशीय सिंह विष्णु वर्मा के पुत्र महेन्द्र विक्रम वर्मा है। इसका समय सप्तमशतक का प्रथमार्थ है। इस प्रकार यह महराज हर्षवर्धन तथा पुलकेशी द्वितीय के समकालीन है। इनके प्रहसन से कापालिक, शाक्य भिक्षु तथा पशुपति का परस्पर संघर्ष बड़ी ही संयत भाषा में प्रदर्शित किया है। कापालिक की यह शंकर स्तुति बड़ी ही रोचक तथा मार्मिक है—'सुरापान करना चाहिए, प्रियतमा का मुख देखना चाहिये, स्वभाव से सुन्दर व विकृत वेश धारण करने योग्य है। ऐसा मोक्षमार्ग जिन्होंने दिखाया है ऐसे भगवान शंकर दीर्घायु हों—

पेया सुरा प्रियतमामुखमीक्षितव्यं
ग्राह्य.स्वभाव ललितो विकृतश्चवेषः।
येन क्षमीदृशयदृश्यत मोक्षवर्त्म
दीर्घायुरस्तु भगवान स पिनाकपाणिः[1] ॥

दूसरा सबसे प्राचीन 'भगवदज्जुक' प्रहसन मिलता है। इसके रचयिता 'बोधायन' है, और इसका समय ईसा की प्रथम दो शताब्दी माना जाता है। इसी समय अज्ञात-नामा द्वारा रचित 'दामक' नामक प्रहसन मिलना है, जिसमें भास के नाटकों जैसी विशेषताएँ मिलती है। १२ वी शताब्दी के आरम्भ मे शकधर कविराज का 'लटक मेलके' नामक प्रहसन मिलता है, जिसकी रचना कान्यकुब्ज के महाराज गोविन्द चन्द के राज्य-काल में की गई थी। यह प्रहसन अत्याधिक लोकप्रिय माना जाता है। इसी प्रकार ज्योतीश्वर कवि ने १४ वी शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे 'धूर्तसमागम' प्रहसन लिखा। यह प्रहसन विजय नगर के राजा नरसिंह के राज्यकाल मे लिखा गया था। इसमें भिक्षुओं और गुरुओ तथा असाजित (विदूषक) ब्राह्मण की चतुराई पर हास्य और व्यंग्य किया गया है।[2]

१७ वीं शताब्दी में कवि तार्किक ने 'कौतुक रत्नाकर' प्रहसन की रचना की। इसी समय में सामराज दीक्षित द्वारा रचित 'धूर्तनर्तक' नामक प्रहसन मिलता है, इसके अन्तर्गत, गुरु तथा चेला एवं राजा आदि पात्रों पर परिहास किया गया है। तंजौर के राजा तुकोजी के मंत्री घनश्याम ने 'डमरूक' प्रहसन लिखा। १२ वी शताब्दी में

१—संस्कृत साहित्य का इतिहास-बलदेव उपाध्याय-तृतीय संस्करण, पृ० ४८७, ४८८
२—सस्कृत ड्रामा बाई ए० बी० कीथ—पृ० २६०, २६१

जगदीश्वर द्वारा रचित 'हास्यार्णव' प्रहसन मिलता है। यह विषय के दृष्टिकोण से बहुत ही सुन्दर एव रोचक प्रहसन माना जाता है। इस प्रहसन मे राजा की खिल्ली उडाई गई। राजा का नाम अन्याय सिन्धु है, अत उसका जैसा नाम है वैसा कार्य है। १२ वी शताब्दी मे गोपीनाथ कृत 'कौतुक सर्व' प्रहसन मिलता है। इस प्रहसन के अन्तर्गत राजा के नशे पर हास्य तथा व्यग्य प्रदर्शित किया है और बगला की दुर्गा-पूजा के उत्सव का वर्णन बहुत ही सुन्दर ढग से चित्रित किया है। वत्सराज कृत 'हास्य चूडामणि' नामक प्रहसन प्राप्त होता है जिसका समय १३ वी शताब्दी मध्य तक माना जाता है। धार्मिक कृत्य को त्याग कर लौकिक कृत्यो की अनुरक्ति को लक्ष्य कर इस प्रहसन की रचना की गई है।

अंग्रेजी साहित्य मे भी अनेक प्रहसनो की रचना हुई। 'एरिस्टाफेनीज' प्रहसनो का सर्वोत्कृष्ट आचार्य था। उपर्युक्त प्रहसना की व्याख्या से यह ज्ञात होता है कि प्राचीन काल से प्रहसन लिखने की परम्परा चली आ रही है। धीरे-धीरे इस परम्परा का विकास होता गया। सस्कृत साहित्य में हास्य रस का विशेष रूप से महत्व था, किन्तु अलग से प्रहसन लिखने की परम्परा इसमे ज्ञात नही होती है। हास्योत्पादन के लिए प्रत्येक नाटक में विदूषक की अवतारणा की जाती थी, जो कि अपनी वेशभूपा एव वाकपटुता के कारण दर्शकों को अपनी ओर आकर्षित करता था। सस्कृत नाटकों के बीच-बीच मे प्रहसनात्मक दृश्य अवश्य होते थे, जो कि नाटक के कार्यो मे सहयोग देते थे और प्रहसनात्मक दृश्यो के द्वारा ही उसको जटिल समस्याओं को सुलझाया जाता था। सस्कृत साहित्य मे प्रहसन रचने की न्यूनता का प्रमुख कारण समाज की उन्नतावस्था एव आदर्शवादी नाटक रचना की परम्परा प्रतीत होती है।

सस्कृत तथा हिन्दी के प्रहसन रचना के उद्देश्य मे केवल इस बात का अन्तर प्रतीत होता है कि सस्कृत के प्रहसन रचना का प्रमुख उद्देश्य हास्य और विनोद था किन्तु हिन्दी के प्रहसनों में हास्य का रूप गौण हो गया। उनका उद्देश्य धार्मिक, राज-नीतिक, सामाजिक कुरीतियो पर व्यग्य कसना था।

हिन्दी साहित्य मे प्रहसन की रचना हुई तो अवश्य किन्तु इस पर अग्रेजी साहित्य का इतना प्रभाव पड़ा कि कभी-कभी हमे उनकी मौलिकता पर भ्रम-सा होने लगता है। सर्वप्रथम हिन्दी साहित्य में अंग्रेजी दुखान्त नाटकों के अनुवाद की प्रथा आरम्भ हुई। इसके पश्चात् शेक्सपियर के सुखान्त नाटकों के अनुवाद आरम्भ हुआ। 'मर्चेन्ट आफ वेनिस' तथा 'कामेडी आफ इरोस' यह दोनो अनुवादको का अधिक रुचिकर लगे। लेखको ने कभी इन अनुवादो में कथानक तथा पात्रो को वैसे ही रख दिया और कभी उको भारतीय आवरण पहना दिया। इसी कारण पाश्चात्य साहित्य का हिन्दी प्रहसनो पर प्रभाव पड़ा। भारतीय लेखक ने पाश्चात्य साहित्य की कामेडी एव प्रहसन से प्रभावित

होकर प्रहसनो के अतिरिक्त व्यग्यात्मक प्रणाली को भी महत्व दिया ।

इस प्रकार प्रहसनो की प्रथा का प्रचार तीव्र होता गया । १६ वी शताब्दी में भारतीय समाज तथा भारतीय विद्वानो पर पाश्चात्य सभ्यता का गहरा प्रभाव पड़ा । इस परिवर्तित समाज की रूपरेखा के कारण प्रहसनो की रचना हिन्दी साहित्य में आरम्भ हुई । भारतेन्दु युग मे ही यह परम्परा हिन्दी-साहित्य में आई । इसी कारण प्रहसन भारतेंदु काल की एक विशेष देन है । तत्पश्चात् हिन्दी साहित्य में प्रहसन लिखने की परम्परा पूर्ण वेग के साथ उतरी और दिना दिन इसकी लोकप्रियता बढती चली गई । पाठकगण प्रहसनो मे अधिक आनन्द लेने लगे तथा साहित्यिक नाटको की ओर उनकी रुचि कम होने लगी । यही कारण है कि प्रहसनो का क्षेत्र अधिक विस्तृत हो गया । हिन्दी साहित्य मे प्रहसन-लेखको म भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बालकृष्ण भट्ट, देवकीनन्दन त्रिपाठी, राधाचरण गोस्वामी तथा किशोरीलाल गोस्वामी आदि प्रमुख है । अन्य प्रहसन लेखको के विषय में श्री लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय का अधोलिखित कथन मान्य है —

'परन्तु यह कहे बिना नही रहा जा सकता कि हिन्दी के हास्य रसात्मक ग्रन्थो में अधिकतर अर्थहीन प्रलाप देखने को मिला है । हास्य निम्न श्रेणी का है और व्यग्य प्राणहीन । भारतेन्दु हरिश्चद्र, देवकीनन्दन त्रिपाठी एव राधाचरण गोस्वामी को छोड़ कर अन्य लेखको ने उच्चकोटि के तीक्ष्ण व्यग्य की सृष्टि नही की है । उनका परिहास असगत और स्वाभाविकता की सीमा का उल्लघन करने वाला है । मालूम होता है जबर्दस्ती हास्य और व्यग्य प्रकट करने को यत्न किया जा रहा है । एक तो पराधीन देश का हास्य ही क्या दूसरे इन रचनाओ के पात्र समाज में निम्नश्रेणी के हैं । अधिकाश पात्रो म हमें कोई बुड्ढा, शिशुवर वेश्या फुटनिया, चरित्रहीन स्त्रियाँ, नशेबाज, मोटा महाजन, ओझा आदि ही मिलते है । इस अशिक्षित और असस्कृत जनसमूह में हमें किसी अधकचरे समाज सुधारक और देश सेवक के दर्शन भी हो जाते हैं । परन्तु उनका सामाजिक कुरीतियो का मजाक भी ऊटपटाग, भद्दा और अश्लील ढग का है । उसमे ऐसे परिहास की, जिसमें सत्य की भावना छिपी हो और जो सीधा हृदय पर आकर चोट करे, अवतारणा नही होती ।'[1]

प्रहसन की परिभाषा तथा लक्षण—

'भाण वत्सधिसन्ध्यम लास्यागोड्० कवि निर्मितम् भवेत्प्रहसन इत निधाम् ।'
भाण के समाज सधि, सध्यग, लास्याग और अका के द्वारा सम्पादित निन्दनीय पुरुषो का

१—आधुनिक हिन्दी साहित्य—डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय—पृ० १६२

कवि कल्पित वृत्तान्त प्रहसन कहलाता है।[1] भरत मुनि ने प्रहसन के दो भेदों से इसकी परिभाषा की है। उनका मत है कि जब भागवत, तापस, भिक्षु, श्रोत्रिय आदि किसी (पाखंडी) नायक और ऊँच नीच व्यक्तियों द्वारा परिहास किया जाता है तो वह प्रहसन कहलाता है। प्रहसन उसे कहा जाता है जिसमें वेश्या, चेट, नपुंसक, विट, धूर्त बन्धकी (दुराचारिणी) के अशिष्ट वेशभूषा और चेष्टाओं का अभिनय प्रदर्शित किया जाता है। इसमें सामान्य जनता में प्रचलित किसी दुराचरण एवं दम्भ पाखण्ड का प्रदर्शन अनिवार्य है।[2]

भरत मुनि के आधार पर धनंजय ने प्रहसन का लक्षण लिखते हुए कहा है कि भाण से मिलने-जुलने इस रूपक प्रकार में पाखण्डी और जाति-प्रताप से पूज्य बना, नीच प्रकृति वाला चेट, एवं विट से घिरा हुआ वेश और भाषा में उन्हीं के सदृश चेष्टा करने वाला उपहास्यास्पद व्यवहारों से युक्त जो नाटक होता है, वह प्रहसन कहलाता है[3] '—

अंगी हास्य रसस्तत्र वीथ्यंगानास्थितिर्नवा

तपस्विभगवद्विप्रप्रभृतिष्वत्र नायकः ॥२६५॥

प्रहसन में मुख्य रस हास्य रस होता है, उसमें वीथी के अंगों की स्थिति होती है, तपस्वी भागवत (सन्यासी) ब्राह्मण आदि में से नायक होता है।[4]

'अत्रनारभटी नापि विष्कम्भक प्रवेशकौ' अर्थात् प्रहसन में आरभटी वृत्ति तथा विष्कम्भक और प्रवेशक का प्रयोग नहीं होता है। शारदातनय ने इसकी अंक संख्या और सन्धियों का भी उल्लेख किया है। उनका मत है कि प्रहसन में एक अंक होता है और मुख्य एवं निर्वहण संधि होती है। उन्होंने सागर कौमुदी को शुद्ध प्रहसन, सैरन्धिका को संकीर्ण प्रहसन तथा कलिकेली को विकृत प्रहसन माने हैं।[5]

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ने प्रहसन का नायक राजा, धनी, ब्राह्मण या धूर्त माना है। भाण में कम पात्र होते हैं किन्तु प्रहसन में अनेक पात्र होते हैं। उनका मत है कि यद्यपि प्राचीन रीति से इसमें एक ही अंक होना चाहिए, किन्तु अब अनेक दृश्य दिये बिना नहीं लिखे जा सकते हैं। उदाहरण—जैसे 'हास्यार्णव,' 'वैदिकी हिंसा-हिंसा न भवति', 'अन्धेर नगरी चौपट राजा टके सेर भाजी टके सेर खाजा' 'जैसे को तैसा'

१—साहित्य दर्पण—विद्यावाचस्पति साहित्याचार्य श्री शालिग्राम शास्त्री—विरचयिता, पृ० २२०

२—नाट्यशास्त्र—भरतमुनि १८, १५४, १५८

३—नाट्य समीक्षा—डा० दशरथ ओझा—पृ० २१

४—साहित्य दर्पण—विश्वनाथ—२६५।६ परिच्छेद, २२० पृ०

५—भावप्रकाश शारदातनय—पृ० २४७

'कलियुगी जनेऊ' आदि।[1]

गुलाबराय ने केवल तीन बातें आवश्यक मानी है, जसे—१ हास्य रस की प्रधानता, २ एक अक ३ सुख और निर्वहण सधिया।

उपर्युक्त सभी बातो का समाहार करते हुए हम प्रहसन की परिभाषा इस प्रकार कह सकते है।

भाण के समान प्रहसन होता है। इसमे हास्य रस की प्रधानता रहती है। वीथी के तरहा अगो की अवस्थिति इसमें हो सकती है, इसमे रस इतना उच्चकोटि का नही होता है। इसम आरभटी वृत्ति विष्कम्भक तथा प्रवेशक का प्रयोग नही होता, प्रहसन में तपस्वी, सयासी, पुरोहित आदि नायक होते है। रूपक क दस भेदा म से प्रहसन रसजनित रूपक भेद माना जाता है।

प्रहसन के विषय—

हिन्दी साहित्य म प्रहसना का अधिक महत्वपूण स्थान है। १९ वी शताब्दी में प्रहसनो के विषय निम्नलिखित रहे है—धनाढ्या की धन लोलुपता, साधु-सता का पाखड, बालविवाह, अनमेल विवाह, स्त्रियो की दासता, वेश्यावृत्ति, कपट, धूतक्रीडा, स्वाथ, फैशन का अधानुकरण, पाश्चात्य सभ्यता, मदिरापान, मासाहार, दीनदशा आदि। इन्ही विषया का लेकर बारम्बार व्यग्य बाणा की बौछार की गयी है। साहित्यिक रूप से प्रहसन रचने म लेखको को पूण सफलता मिली है। इन रचयिताओ ने मानवा में से किसी एक विषय को आधार मानकर प्रहसना की रचना की और इन मानवी भावा के कारण ही प्रहसनो की महत्ता बढी। इसका प्रमुख कारण यह है कि फ्रान्सीसी लेखको ने हास्य प्रदर्शित करने के साथ ही साथ पात्रा का चरित्र चित्रण तथा उनका विश्लेषण मनावैज्ञानिक ढग से किया। अंग्रेजी लेखका के प्रहसना पर फ्रान्सीसी लेखको का प्रभाव पडा।

अंग्रेजी साहित्य मे भी अनेक प्रहसना की रचना हुई। इनने प्रहसना के विषय मानवी भावनाएँ है। प्रतिहिंसा, अहभाव, लोभ, गव आदि मानवी भावनाआ का लेकर प्रहसना की रचना हुई है। अंग्रजी नाटककारा ने प्रहसनो की रचना के लिए अनेक विषया को अपनाया। सस्कृत और हिन्दी के प्रहसनात्मक दृश्या में अधिक समानता दिखाई पडती है। अग्रेजी नाटककारा ने प्रहसना के निम्नलिखित विषया का उचित माना है।

१—सौन्दय, ज्ञान तथा धन का अहभाव

२—मानसिक कुल्पना, असगति, अनैतिकता

३—भ्रममूलक आशाएँ तथा विचार

१—नाट्य समीक्षा—डा० दशरथ ओझा, पृ० २१

४—निरर्थक वार्तालाप अथवा अनर्गल संवाद अथवा श्लेषपूर्ण कथोपकथन

५—अशिष्टता, दुःशील तथा शाब्दिक वितण्डावाद

६—प्रवन्चपूर्ण कार्य तथा अस्वाभाविक जीवन

७—मूर्खतापूर्ण कार्य

८—पाखण्ड तथा अस्वाभाविक आदर्श

९—शारीरिक स्थूलता

१०—मद्यपान तथा भोजनप्रियता

११—विदूषक।

संस्कृत नाटको के प्रहसनात्मक दृश्यो एवं आधुनिक हिन्दी के प्रहसनों में हम उपर्युक्त विषयो की पुनरावृत्ति देखते है। संस्कृत नाटको का विदूषक प्रहसनात्मक दृश्यो का प्राण है। विदूषक अपनी वेशभूषा, तथा वाणी के चातुर्य द्वारा हास्योत्पादन कर दर्शकों को अपनी ओर आकर्षित करता है। अंग्रेजी लेखक जान ड्राइडेन का कथन है कि सुखान्तकी तथा प्रहसन के लेखको में वही अन्तर है जो एक कुशल चिकित्सक तथा एक नीमहकीम में होता है। दोनो ही रोगी को अच्छा करने का प्रयत्न करते है, परन्तु एक का प्रयत्न वैज्ञानिक तथा विश्वस्त ढंग का है और दूसरे का जोखिम मे डालने वाला है। अधिकतर यही देखा गया है कि कुशल चिकित्सक सफल रहते है और नीमहकीम असफल हो जाते है, उसी प्रकार हास्य प्रधान प्रहसन दर्शकों को अपनी अधिक सफलता से वशीभूत कर लेते है।[1]

एस० पी० खत्री ने 'नाटक की परख' नामक पुस्तक में प्रहसन-लेखको के विषयों का वर्गीकरण इस प्रकार किया है—

१—गार्हस्थ्य जीवन—(क) पति-पत्नी के घरेलू झगड़े (ख) बहुविवाह तथा अविवाहित जीवन (ग) बेमेल विवाह तथा तलाक (घ) श्वसुर, सास, जेठानी, ननद तथा बहुओं के झगड़े (ङ) मालिक तथा नौकर के झगडे।

२—सामाजिक जीवन—(क) शराबखोरी (ख) जुआ (ग) असंगत प्रेम तथा वेश्या-वृत्ति (घ) छल तथा कपटपूर्ण व्यवहार (ङ) ऊँच नीच भेद (च) रूढ़िवादी चरित्र (छ) आधुनिक फैशनयुक्त जीवन (ज) प्राचीन शिक्षण-पद्धति : पंडित तथा मौलवी का जीवन (झ) धार्मिक पाखण्ड हिंसा आदि।

३—राजनीतिक जीवन—(क) दलबन्दी (ख) स्वेच्छाचारिता (ग) कूटनीति आदि।

४—आर्थिक जीवन :—(क) मालिक मजदूर के झगड़े (ख) मध्ययुग के उप-

---

१. नाटक की परख—डा० एस० पी० खत्री—पृ० २४८

युक्त दृष्टिकोण (ग) धन का अहकार (घ) लेन-देन व्यापार आदि ।

५—*वैयक्तिक जीवन :*—(क) शारीरिक स्थूलता (ख) भोजन प्रियता ।

६—*विदूषक :*—यदि हम अंग्रेजी नाटककारो तथा संस्कृत और हिन्दी नाटककारो के प्रहसन सम्बन्धी विषयों का अध्ययन करें तो हमे यह प्रतीत होता है कि तीनो साहित्यो मे बहुत कुछ समानता दिखायी पडती है। सामाजिकता का अत्याधिक हाथ प्रहसनो के विषयों को प्रस्तुत करने मे है।[1]

प्रहसन का भेद :—प्रहसन रसजनित रूपक भेद है। प्रहसन के प्रमुख तीन भेद माने जाते हैं—

१—शुद्ध प्रहसन

२—विकृत प्रहसन

२—सकर प्रहसन ।

शुद्ध प्रहसन :—इस प्रहसन में पाखण्डी सन्यासी तथा तपस्वी एव पुरोहित आदि नायक के वेश में हमारे समक्ष उपस्थित होते हैं। चेट, चेटी, विट आदि पात्र भी रगमच पर उपस्थित किए जाते हैं। हास्य की व्यजना कथोपकथन तथा वेशभूषा, भाषा के प्रवाह पर निर्भर रहती है। नाटको में हास्य रस का सचार अधिक मात्रा में रहता है। इस प्रहसन के अन्तर्गत कथोपकथन में हास्यपूर्ण उक्तियो का होना अत्यन्त आवश्यक है। उदाहरण के लिए भारतेन्दु कृत 'अधेर नगरी' इसी प्रहसन के अन्तर्गत आता है।

विकृत प्रहसन :—इसमे तपस्वी एव नपुसक, कचुकी उपस्थित होकर अपने स्वभाव के विपरीत विचारो को प्रदर्शित करते है जो हास्यप्रद मालूम होता है। कामयुक्त वार्ता में विरोधाभास तथा हास्यप्रद व्यजना होती है। भरतमुनि इसे सकीर्ण प्रहसन के अन्तर्गत मानते हैं, वह इसे पृथक नहीं मानते हैं[2]।

---

१ नाटक की परख—डा० एस० पी० खत्री—पृ० २४६

२. प्रहसनमपि विज्ञेय द्विविध शुद्ध तथैव सकीर्णम
तस्य व्याख्यास्ये यह पृथक् लक्षण विशेषान् ॥१०६॥
भगवत्ताप समिक्षु श्रान्निय विप्रनिहास संयुक्तम्
नीच जन सम्प्रयुक्त परिहासा भाषण प्रायम् ॥१०७॥
अविकृत भाषाचार विशेष हासोपहास रतिपदम्
नियतानि वस्तु विषय शुद्धज्ञेय प्रहसननत्तु ॥१०८॥
वेश्या चेट नपुसक धूर्तविटा बन्धकी समानस्तु
अभिभृत वेष परिच्छेद चेष्टा करणानु सकीर्णम् ॥१०९॥
लोकोपचार युक्ता या वार्ता यश्च दम्भ सयोग
तत्प्रहसने प्रयोज्य धूर्त विट विवाद सम्पन्नम् ॥११०॥

आधुनिक युग मे इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण डा० रामकुमार वर्मा कृत 'नमस्कार की बात' जिसमे चैनमुखदास काममुक्त वार्ता मे मधुलता से विरोधाभास तथा हास्यमुक्त व्यंजना मे अपने विचारों का प्रदर्शन करते है।

संकीर्ण प्रहसन :—इस प्रहसन मे हास्य की पर्याप्त मात्रा रहती है। नायक धूर्त होता है। प्रपंच, छल, अधिबल, नास्तिकता, असत्य प्रलाप, व्यवहार मृदव और वीथ्यंगो का व्यवहार प्रचुरता से किया जाता है। जैसे धूर्त चरितम् एव 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' इसी प्रहसन के अन्तर्गत आते है।

प्रहसन के अंग :—

प्रहसन और वीथी-दोनों का उद्देश्य एक है। यह दोनों ही सामाजिकों की रुचि को नाटक की ओर आकृष्ट करते है। साहित्य दर्पणकार का कथन है कि जिस प्रकार वीथी के अंग माने जाते हैं उसी प्रकार प्रहसन के अग भी सम्भव हो सकते है। 'रसार्णव सुधाकर' में शिगभूपाल ने प्रहसन के भी दस अंग माने हैं जैसे—अवलगित, अवस्कन्द, व्यवहार, विप्रलंभ, उपपत्ति, भय, अमृत, विभ्रान्ति, गदगद वाणी, प्रलाप आदि।

१—*अवलगित*—इसमे जिस आचरण को ग्रहण करना उक्तिसंगत है उसी का मोह तथा अज्ञान के कारण त्याग देना बताया जाता है।

२—*अवस्कन्द*—इसके अन्तर्गत अनेक पुरुषों द्वारा किसी वस्तु के सम्बन्ध मे उसके गुण के विपरीत प्रशसा करना भाषित होता है।

३—*व्यवहार*—इसमें दो से अधिक पुरुषों का हास्योत्पादक स्वसंवाद होता है।

४—*विप्रलंभ*—विप्रलंभ मे आधार रहित कल्पना को मनवाने के लिए बाध्य करना तथा अपने अनुकूल वातावरण उत्पन्न कर लेना जिससे सत्य के विषय में भ्रम हो जाए।

५—*उपपत्ति*—इसका प्रयोग उन स्थानों पर किया जा सकता है जहाँ किसी प्रसिद्ध युक्ति से हास्य का विषय बनाया जाए।

६—*भय*—भय के अन्तर्गत नगर रक्षको आदि से त्रस्त वातावरण की कल्पना की गई है।

७—*अमृत*—इसमें झूठी स्तुति करना एवं अपने मन की प्रशसा का इच्छुक रहना उपहासजनित भाव रहता है।

८—*विभ्रान्ति*—वस्तु साम्य से उत्पन्न मोह को विभ्रान्ति कहते है।

९—*गदगदवाणी*—झूठे रोने से मिले हुए कथन को गदगदवाक्य कहते है।

१०—*प्रलाप*—प्रलाप में अयोग्य का योग्यता से अनुमोदन करना प्रदर्शित किया जाता है।

उपर्युक्त सभी मौलिक वृत्तियों से यह ज्ञात होता है कि हास्य रस का प्रयोग सबमें होता है जो भारतीय वृत्ति के अनुसार श्रवण करने वालों के लक्ष्य को आकर्षित कर उन्हें प्रसन्नता रूपी सागर में डुबो देता है। प्राचीन नाट्य शास्त्र में भी विनोद और हास्यपूर्ण उक्तियों की प्रधानता रहती थी। यह सामाजिकों के हृदय को आनन्दित कर अभिनय को देखने के लिए उनकी रुचि को उत्कंठित करते थे। *वीथी तथा प्रहसन वृत्तियों* के विकसित रूप माने जाते हैं।

प्रहसन में प्रमुख तीन वृत्तियाँ कार्य करती हैं—१—विनोद (ह्यूमर) २—बुद्धि कौशल (विट) ३—व्यंग्य (सैटायर)।

(१) विनोद (ह्यूमर)

विनोद के अन्तर्गत हास्य एवं परिहास की भावनाएँ निहित रहती हैं। इसमें हास्योत्पादन वाला मात्र अपने किए हुए कार्यों पर हँसता, साथ ही दर्शकों को भी हँसाता है। विनोद में आमोद की भी भावना निहित रहती है।

(२) बुद्धि कौशल (विट)

हास्य वार्ता में जब हाजिर जवाबी की होड़-सी लग जाती है तब दर्शक उस घटना को देखते हुए आनन्दमग्न हो जाते हैं। इसमें व्यंग्यात्मक उक्तियों को बुद्धि व्यापार पर घटित किया जाता है और उसमें व्यंग्यपूर्ण भावों को परिवर्तित कर दिया जाता है। पाश्चात्य विद्वानों ने व्यंग्य भावना को आइरनी के नामकरण से सम्बोधित किया है।

(३) व्यंग्य (सैटायर)

इस मनोवृत्ति में व्यंग्यात्मक भावना तथा तीव्रता की भावना निहित रहती है। व्यंग्य में आलोचना की भावना तीव्रतापूर्ण होती है। व्यंग्यात्मक वाक्य उत्पन्न करने में प्रहसनात्मक दृश्यों की सुन्दरता नहीं रह जाती है। इस प्रकार इन सब त्रुटियों की ओर नाटककार को सदैव ध्यान रखना चाहिए। उपहास की भावना भी व्यंग्य में निहित रहती है पर व्यंग्य में उपेक्षा का भाव भी उपहास के साथ रहता है। ऐसा व्यंग्य फिर हास्य की सीमा से परे हो जाता है और उसकी महत्ता नहीं रहती है।

पाश्चात्य नाटककारों ने इसी दृष्टिकोण को अपने नाटकों में प्रयोग करने का प्रयास किया है। शेक्सपियर के नाटकों के कथानकों में विदूषकों की भाव-भंगिमा और उनके चरित्र-चित्रण में इन तीनों मनोवृत्तियों का मिश्रण मिलता है

प्रहसनों का शिल्पगत वर्गीकरण :—

सर्वप्रथम हमे हिन्दी साहित्य में हास्य शैली का प्रभाव अनूदित नाटको से प्राप्त होता है। अनुदित नाटको में विदूषक की वार्ता ही हास्यरस पूर्ण मनोवृत्ति थी। आरम्भ मे हिन्दी में प्रहसन का रूप नही मिला। भारतेन्दु युग मे ही हमें प्रहसन का स्वतंत्र रूप प्राप्त हुआ। प्रहसनो मे हास्य का प्रयोग ऐसे रूपों में किया जाता है, जिसमें उपहास की मनोभावना में सामाजिक कुरीतियो से वचने के लिए दर्शको के समक्ष सिद्धान्त प्रस्तुत किए जाते है।

प्रहसनो का वर्गीकरण मुख्य रूप से चार प्रकार से किया जाता है। १—चरित्र प्रधान प्रहसन, २ : परिस्थिति प्रधान प्रहसन, ३ : कथोपकथन प्रधान प्रहसन, ४ : विदूषक प्रधान प्रहसन।

चरित्र प्रधान प्रहसन :—

चरित्र प्रधान प्रहसन मे मानव की भावनाओ को ही आधार मान कर रचना की जाती है। पाखण्ड, द्वेष, मोह, लोभ, घृणा, अहंकार, गर्व, छल, कपट, लालसा इत्यादि को आधार मानकर चरित्र प्रधान प्रहसन लिखे जाते है। अंग्रेजी तथा फ्रान्सीसी नाटककारो ने नायको के मानवी विचारो मे से दो एक तत्वो के साधन मान कर प्रहसनो की रचना की है। प्रत्येक जीवित प्राणी मे मानवी भाव स्थिर रहते है। परन्तु मानवी भाव प्रहसन के योग्य तभी हो सकते है जब वे अपनी मर्यादा को भंग करने का प्रयास करते है। मानवी भाव जब तक मर्यादित रूप में रहते है, उनमे नाटकीय तत्व प्राप्त नही होते अर्थात् वे नाटकीय नही रहते है।

उदाहरण के लिए सभी मनुष्यों मे क्रोध, लोभ, मोह, गर्व, लालसा आदि के भाव निहित रहते है किन्तु मनुष्य कभी ऐसी परिस्थितियो से बाधिक हो जाता है कि उसे अपने जीवन से खीभ हो जाती है और उसकी क्रोध की भावना तीव्र होने लगती है। क्रोध की तीव्रता बढते-बढते ऐसी हास्यास्पद हो जाती है कि प्रहसनकार उस बढ़ते हुये क्रोध पर इस प्रकार दृष्टिपात करता है कि उसके चरित्र पर हँसी आने लगती है। जैसे मान लीजिये कि नायक को क्रोध अपने दफतर के मालिक पर है क्योकि उसकी छुट्टी का प्रार्थना-पत्र अस्वीकृत कर दिया गया है। वह घर पर आता है, कपड़े उतारते समय कमीज किस ओर फेंकता और पेन्ट किस कोने में फेंकता और जूते किधर पटकता है। अतः ऐसे दृश्य को प्रहसनकार तुरन्त ही अपनी ओर समेट लेता है। यह चरित्र प्रधान प्रहसन के लेखक मानवी भावनाओ का निरीक्षण कर हास्योत्पादन करने में प्रयत्नशील रहते है।

चरित्र प्रधान प्रहसनों के निर्माण के लिए हमें उच्च नाट्यकला की आवश्यकता पड़ती है। चरित्र प्रधान प्रहसनकार मानव की भावनाओं का निरीक्षक होता है। वह मनुष्य के हृदय की जटिलताओं में घूमता हुआ और विचारों का निरीक्षण करता हुआ, उसकी भावनाओं की क्रिया प्रतिक्रिया को परखता हुआ, प्रहसनात्मक दृश्यों को समेट कर हास्योत्पादन करने का प्रयत्न करता है। प्रहसनकार के इस कठिन प्रयास में उसकी उच्च कला का प्रयोग प्रदर्शित होता है।

जैसे एक मदारी अपना पेट भरने के लिए कुछ जानवरों को पालता है। घर पर रख कर उन जानवरों को नाच गाने की कला सिखाता है। जब जानवर कुछ सीख जाते हैं तो फिर मदारी उन्हें लेकर सड़क पर डमरू बजाता हुआ निकलता है। बच्चे उस मदारी को बुलाकर अपने बगले में ले जाते है। तब मदारी अपना सामान निकाल कर रखता है। बासुरी बजा, कभी डमरू बजा कर अपने जानवरों का नाच दर्शकों को दिखलाता है जैसे वह मदारी बोलता जाता है वैसे-वैसे उसके सिखाए हुए जानवर नाचते जाते है। जब डमरू की ध्वनि या बासुरी की ध्वनि बन्द हुई त्योंही उस मदारी के जानवर चुप चाप बैठ जाते है। यदि देखा जाये तो वास्तव मे उस मदारी की विशेष रूप से कला प्रदर्शित होती है इसी प्रकार चरित्र प्रधान प्रहसनकार में मानवी भावनाओ के निरीक्षण की श्रेष्ठ कला दिखलाई पड़ती है—

श्री जी० पी० श्रीवास्तव कृत प्रहसन 'उलट फेर' मे चरित्र चित्रण का उदाहरण देखा जाता है। अललटप्पू मे आत्मनिर्भरता बिल्कुल नही है और न कार्य करने की दृढ़ता ही तथा साथ ही अक्ल भी बहुत कम है।

गुलनार—मगर मिया मुझ पर रोब क्यो जमाते हो ?

अललटप्पू—ताकि और पर रोब जमाने की आदत पड़ जाए।

गुलनार—वाह, वाह तुम्हारी बातों पर तो मुझे हँसी आती है।

अललटप्पू—हँसी तो मुझे भी आती है।

गुलनार—तो फिर हँसते क्यो नही हो ?

अल०—इसलिए कि कही रोब न बिगड़ जाय।

गुल०—अहा ! हा ! हा !! मिया तुम तो पिंजड़े मे बन्द करने लायक हो।

अल०—बस, बस, खबरदार ! अब जो 'ही ही' किया तो तुम जानो।

गुल०—अय है जरा ही में तिनक उठे वाह रे मिजाज !

अल०—बेशक, मै नही हंसने दूँगा।

गुल०—जो हँसू, क्या कर लोगे ?

अल०—क्या कर लूंगा ? बताऊँ ? मैं...मैं...मैं खफा हो जाऊँगा...खफा हो जाऊँगा एकदम।

गुल०—सुभानअल्लाह ! खफा होकर क्या कर लोगे ? एक बार नहीं लाख बार खफा हो,
अल०—फिर नही मानती मै एकदम खफा हो जाऊँगा[१]।

उपर्युक्त उदाहरण में अललटप्पू का चरित्र ही प्रमुख संवेदना बन कर आया है।

चरित्र प्रधान प्रहसन हमें अधिक रुचिकर लगते है क्योंकि इनमे हमारी भावनाओं का प्रदर्शन होता है जिसे देख कर हम आनन्दित हो उठते है। प्रहसन मानवी भावनाओं के मनोरंजन करने का हास्यात्मक रंगस्थल है। चरित्र प्रधान प्रहसन हिन्दी साहित्य में बहुत कम मात्रा मे मिलते है।

परिस्थिति प्रधान प्रहसन —

परिस्थिति प्रधान प्रहसन मे प्रहसनकार को कथावस्तु का आधार लेना पडता है। कलाकार अपने विचारों तथा निरीक्षण द्वारा कुछ इस प्रकार की परिस्थितियों को उपस्थित करता है जिसे देखकर स्वभावत हँसी आ जाती है। वह उन सब परिस्थितियों को कथावस्तु मे इस प्रकार रखता है कि हास्य प्रस्तुत हो जाता है।

नाट्यसाहित्य के विद्वानो ने चरित्र प्रधान प्रहसनो को परिस्थिति प्रधान से अधिक महत्ता दी है। चरित्र प्रधान प्रहसनों के विकास के लिए हमें उच्चकोटि की नाट्य कला की आवश्यकता पड़ती है। और परिस्थिति प्रधान प्रहसनों के लिए विशेष रूप से किसी कला की आवश्यकता नही पड़ती। परिस्थिति प्रधान प्रहसनकार असामान्य और असाधारण रूप से परिस्थितियों को एकत्रित कर हास्योत्पादन करने में प्रयत्नशील रहते है। इनकी मर्यादा जीवन के मोटे स्थलों तक ही रहती है और उनकी कला की सिद्धि भी इसी मे है। परिस्थिति प्रधान प्रहसनकार विस्मय मे डालने वाले कुछ ऐसे आकस्मिक घटनास्थल उपस्थित कर उन्हे इस प्रकार जुटा देता है कि उसमे रोचकता आ जाती है, जिसके कारण हास्योत्पादन हो जाता है। किन्तु दूसरी ओर चरित्र-प्रधान प्रहसनकार मनुष्य की भावनाओ को चित्रित करता है अर्थात् उसको मानव की अन्तरंग वेदनाओं तक का निरीक्षण करना पडता है जो कि अत्यधिक कठिन कार्य है।

उदाहरण के लिए जैसे मुशी जी अपने सिंहासन पर बैठ कर दो-चार मनुष्यो के बीच हिसाब किताब कर रहे हैं और उधर साहब मुआयना करने आ रहे है, दूसरी तरफ एक बूढे की बारात बाजे-गाजे के साथ चली आ रही है जो कि सोलह वर्षीय बालिका से विवाह करने जा रहा है, इधर सास, बहू मे झगड़ा हो जाने के कारण सास साहिबा की विजय होती है परन्तु थोडी देर में ही ससुर साहब जी आते है और उनके क्रोध से सास साहिबा की अधोगति हो जाती है। इस प्रकार के असाधारण और अन्यायपूर्ण

१—'उलट फेर'—जी० पी० श्रीवास्तव—१५

स्थलो को चुनकर उन्हे असामान्य ढंग से उपस्थित कर प्रहसनकार प्रहसनो की रचना करते है।

परिस्थिति प्रधान प्रहसन मे कई पात्रों का सहयोग होता है और वे ऐसी परिस्थितियों को उपस्थित करते हैं जिससे दर्शकगण हँसने लगते है। श्री किशोरीलाल गोस्वामी कृत 'चौपट चपेट' में इसका सुन्दर उदाहरण है, जब नायिका कई आशिकजारो को बुलाकर उनकी मरम्मत करती है। दूसरा 'अन्धेर नगरी' में भी गुरू और शिष्य मिल कर ऐसी परिस्थिति उपस्थित करते है कि राजा मन्त्री सब उसी मे फंस जाते हैं। उदाहरणार्थ—

(राजा, मत्री, कोतवाल आते है)

राजा—यह क्या गोलमाल है ?

प० सिपाही—महाराज, चेला कहता है मै फांसी पड़ूंगा, गुरु कहता है मै पड़ूँगा। कुछ मालूम नही पड़ता कि क्या बात है।

राजा (गुरु से) बाबाजी बोलो—काहे को आप फांसी चढते है।

गुरु—राजा ! इस समय ऐसी साइत है कि जो मरेगा, वह वैकुठ जायगा।

मन्त्री—तब तो हमी फांसी चढ़ेंगे।

गोवर्द्धन—हम—हम—हमको तो हुक्म है।

कोतवाल—हम लटकेंगे हमारे सबब से तो दीवार गिरी।

राजा—चुप रहो सब लोग। राजा के होते और कौन वैकुण्ठ जा सकता है, हमको फाँसी चढाओ, जल्दी ! जल्दी !

गुरु—जहाँ न धर्म न बुद्धि नहि नीति न सुजन समाज, ते ऐसेहि आपुहिन नसे जैसे चौपट राजा।'[1]

परिस्थिति प्रधान प्रहसनकार को ऐसी परिस्थितियो का चुनाव करना चाहिए जिसका क्षेत्र बहुत व्यापक है। प्रगतिशील प्रहसनकार को सदैव अश्लील तथा कुरुचिपूर्ण हास्यात्मक स्थलो से बचना चाहिए। प्रहसन को उस ढंग मे प्रस्तुत करे कि दर्शकगण उससे आनन्द ले सकें। हिन्दी साहित्य में अधिकतर परिस्थिति प्रधान प्रहसनो की रचना होती है।

कथोपकथन प्रधान प्रहसन :—

जिन प्रहसनो में कथोपकथन द्वारा हास्योत्पादन किया जाता है वे कथोपकथन प्रधान प्रहसन कहलाते हैं। वाक्-पटुता हास्योत्पादन के लिए एक श्रेष्ठ कला है जिसमें

१—'अन्धेर नगरी'—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र—पृ० ४१

शब्द ज्ञान का विशेष रूप से स्थान रहता है। श्लेष, व्यग्य तथा उपहास आदि इसके प्रमुख अग है। व्यग्यात्मक उक्तियो, शब्द तथा श्लेष का प्रयोग कर लेखको ने कथोपकथन प्रधान प्रहसनो की रचना की।

प्राय कुछ लेखक विशेष पात्रो को कोई तकियाकलाम अथवा शाब्दिक आवृत्ति दे देते है। जैसे—'भगवान तेरा भला करे', 'वाह, क्या कहने आपके ?' 'राम राम राम' 'गगा मैया की कसम' आदि ऐसे शाब्दिक अथवा भावसमूह है जिनकी पुनरावृत्ति म हास्य की आत्मा निहित रहती है। प्रहसनो में इनका प्रयोग अधिक होता है जिसके कारण प्रहसन की लोकप्रियता बढती है।

कुछ लेखको ने कथोपकथन की प्रधानता के साथ आगिक पुनरावृत्ति से भी हास्योत्पादन का सफलतापूर्वक निर्वाह किया है जैसे विशेष रूप से आँखें मचकाना, मुंह बनाना, हाथ हिलाना, सिर को इधर-उधर घुमाना इत्यादि। अगो के हिलाने-डुलाने से भी रगमच पर हास्योत्पादन किया जाता है किन्तु इसका आधिक्य हो जाने से हास्य की स्वाभाविकता फिर विशेष रूप से समाप्त हो जाती है।

कथोपकथन प्रधान प्रहसनो के सवाद में स्वाभाविकता का होना अत्यन्त आवश्यक है क्योकि सवाद ऐसे न हो कि दर्शकगण ऊबने लग। प्रत्येक वाक्य मे श्लेष का होना, अनिवार्य नही, इसका प्रयोग वैसा ही होना चाहिए जिस प्रकार पान में लगा हुआ चूना होता है अर्थात् बहुत कम मात्रा में वाक्यो में इसका प्रयोग होना चाहिए।

कथोपकथन प्रधान प्रहसनो में सवाद की प्रचुरता रहनी आवश्यक है। यूँ तो सवाद सभी प्रहसनो में रहते हैं किन्तु अन्य प्रहसनो मे सवाद के अतिरिक्त नाटक के अन्य तत्व (जैसे—कथावस्तु, चरित्रनिरूपण, रस तथा शैली आदि) रहते है कथनोपकथन प्रधान प्रहसनो में केवल सवाद के द्वारा ही नायक के समस्त तत्व व्यजित किए जाते है। दो या तीन पात्रो के पारस्परिक वार्तालाप म ही समस्त नाटक का महत्व प्रतिपादित हो जाता है। उदाहरण के लिए डा० रामकुमार वर्मा के 'इलेक्शन' शीर्षक कथोपकथन प्रधान प्रहसन में निम्नलिखित सवाद देखिए—

नरेन्द्र—आज तो बडे मूड मे हो (बाहर निकलकर) अच्छा, तो ये ठाठ है तुम्हारे कैलास ! यह सिल्क का सूट और उससे मैच करती हुई यह रेशमी टाई।

कैलास—रेशमी टाई तो रामकुमार वर्मा की है।

नरेन्द्र—इस वक्त तो तुम्हारे गले में है।

कैलास—तो इससे क्या हुआ ?

नरेन्द्र—बहुत कुछ। आज उस पार्टी में तुम्ही रहोगे हीरो।

कैलास—अच्छा !

नरेन्द्र—और क्या ! वे बेवकूफ है जो कहते है कि क्लास में तुम्हें जीरो मिलता है।

मिला करे । । यहाँ तो जीरो के चचा हो तुम—हीरो ।

कैलास—और तुम हीरो बन कर गीत गाना जब मेरी हसरतों का रोम जले ।

नरेन्द—गाना तो गा रहे हो तुम । लेकिन हां, यह हसरतों की बात कैसी ?

कैलास—देर लगाते जाओगे तुम और मेरी हसरतो की बात पूछोगे ?

नरेन्द्र—क्यों न पूछूँ ? आखिर तुम्हारा दोस्त हूँ तुम्हारे ही कहने मे तुम्हारे साथ पार्टी मे जा रहा हूँ ।

कैलास—जैसे तुम जानते ही नही !

नरेन्द्र—सचमुच मैं नहीं जानता, डियर ।

कैलास—बात यह है कि आज सचमुच ही मेरा इलेक्शन होने जा रहा है ।

नरेन्द्र—इलेक्शन । वाह ! दोस्त ! लेकिन तुम्हारा 'नामीनेशन' तो होस्टल के नोटिसबोर्ड पर था नही !

कैलास—तुम रावण के ग्यारहवें सिर हो । यार । होस्टल का इलेक्शन नहीं ।

नरेन्द्र—अच्छा । तो किस जगह का ? किस बात का ?

कैलास—अवल तो तुमने अपनी रूमाल की तरह खो दी है, तुम क्या समझो । तुम केसरी नारायण को जानते हो ?

नरेन्द्र—हां, हां अपने शहर के वकील ।

कैलास—तो उन्होने मुझे आज मिलने के लिए चाय पर बुलाया है ।

नरेन्द्र—अच्छा, किस लिए ?

कैलास—वह उनकी लड़की सरोजिनी—

नरेन्द्र—(हँसते हुए) अच्छा, यह बात है । तो इस जगह तुम्हारा इलेक्शन रहा । किस किस के वोट पड़ेंगे ?

कैलास—घर भर के ! और अपनी तारीफ कराने के लिए मै तुम्हे ले चल रहा हूँ ।

नरेन्द्र—अच्छा ! तभी यह झूम-झूम कर गाना गा रहे थे 'आज हमें कल रुला न देना' । कोई क्यों रुलाएगा दोस्त ? जब यह रेशमी सूट—यह रेशमी टाई—गले में लगा रक्खी है । अब समझ में आया कि मामूली इलेक्शन नहीं है ।

इस भाति यह स्पष्ट देखा जा सकता है कि कथोपकथन ने ही नाटक की संवेदना को उभारने मे सफलता पाई है[१] ।

विदूषक प्रधान प्रहसन :—

जिन प्रहसनों में विदूषक का स्थान विशेष रूप मे रहता है उन्हे विदूषक प्रधान

१—रिमझिम (इलेक्शन) डॉ० रामकुमार वर्मा—पृ० २४२, २४३

प्रहसन कहते है। विदूषक नायक का अभिन्न मित्र होता है, इसकी पहुँच प्रहसन मे प्रत्येक स्थान पर रहती है। यह स्त्री पात्रों के साथ बिना किसी बाधा के वादविवाद करता है और नायिका को नायक का सन्देश देता है। यह प्रहसन मे पत्रवाहक का भी कार्य करता है। नायक का अन्तरंग मित्र होने के कारण वह उसकी निजी भावनाओ से भी परिचित होता है, इसी कारण उस पर व्यंग्य-बाण बरसाता है। नायक तथा नायिका पर कठिन परिस्थिति आ जाने मे उनकी पूर्ण रूप मे यह सहायता करता है। यदि विदूषक का पार्ट प्रहसनो मे से या नाटको मे से विलग कर दें तो कथावस्तु की पूर्ति असम्भव हो जाये।

हास्योत्पादन के लिए विदूषक को अपनी साजसज्जा तथा वेषभूषा का विशेष रूप से ध्यान रखना पड़ता है, क्योंकि अनेक प्रकार से अपनी वेषभूषा को परिवर्तित कर रगमंच पर हास्योत्पादन करने में सफलता प्राप्त करता है। विदूषक अपनी तिलक-मुद्रा एवं तेजी तथा चाल ढाल के कारण ही हास्य उपस्थित किया करता है। दर्शकगण भी उसकी नाना प्रकार की कला को देखकर मुग्ध हो जाते है। वह अपनी भोजनप्रियता तथा पेटूपन की ओर इगित कर दर्शको को हँसाता है और अपनी ओर आकर्षित करता है।

विदूषक कथोपकथन द्वारा भी हास्य का निर्माण करने में सफल रहता है। वह श्लेष, व्यंग्य तथा उपहास-तीनो का सुन्दर ढंग से प्रयोग कर हास्योत्पादन करता है। सस्कृत नाटकों में भी हमें विदूषक की परम्परा मिलती है। हिन्दी नाटको में विदूषक का सहारा लिया जाता है। अंग्रेजी साहित्य मे विदूषक प्रधान प्रहसनो की कमी है। विदूषक का प्रयोग श्रेष्ठकोटि के सुखान्त तथा दुखान्त नाटको में हुआ है।

अग्रेजी नाटको में भी विदूषक का महत्वपूर्ण स्थान है। यद्यपि संस्कृत के नाटको के विदूषक से बहुत कुछ प्रभावित है फिर भी शेक्सपियर के सुखान्त अथवा दुखान्त नाटको में विशेप रूप से उसका स्थान है। अंग्रेजी नाटको का विदूषक भी अपनी वेशभूषा के कारण दर्शको के समक्ष हास्य प्रस्तुत करता है। वह सफल गायक और मदिरा-प्रेमी तथा दुखपूर्ण घटनाओ को आनन्द मे परिवर्तित कर हास्योत्पादन करता है। वह व्यंग्यात्मक तथा हास्यात्मक तर्कों का महारथी रहता है। विदूषक पर सुखान्त अथवा दुखान्त नाटको की कथावस्तु का भार निर्भर नही रहता है। सुखान्तीय नाटको में विदूषक नायिका से शब्दपटुता के द्वारा ही विजय प्राप्त करता है पर दुखान्तकीय नाटको में वह नायक को दार्शनिक स्वरूप के कारण सहारा देता है। प्रहसनो के अन्तर्गत वह अपने शब्द तथा व्यंग्यपूर्ण संवादो से हास्य करता रहता है। नाटक मे विदूषक की महत्ता गौण होने के कारण विदूषक प्रधान प्रहसनो की अब इतनी लोकप्रियता कम हो गयी है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कृत 'विषस्य विषमौषधम्' यद्यपि 'भाण' है तथापि उसमें भण्डाचार्य की स्थिति एक विदूषक की भांति ही समझी जानी चाहिए। इस भाण का

उत्तरार्ध विदूषक प्रधान प्रहसन के अन्तर्गत ही समझना चाहिए। उदाहरण के लिए निम्नलिखित अवतरण देखिए—

भण्डाचार्य—अहा धन्य है सरकार ! यह बात कही नही है, दूध का दूध पानी का पानी। और कोई बादशाह होता तो राज जप्त हो जाता। यह उन्ही का कलेजा है। हे ईश्वर, जब तक गंगा जमुना मे पानी है तब तक उनका राज स्थिर रहे। अहा ! हमारी तो पुरोहिती फिर जगी। हमे मल्हारराव से क्या काम, हमें तो उस गद्दी से काम है 'कोउ नृप होउ हमे का हानी' धन्य अंग्रेज राय युधिष्ठिर का धर्म राज्य इस काल मे प्रत्यक्ष कर दिखाया, अहा[1] !'

भारतेन्दु का यह बड़ा ही महत्वपूर्ण प्रयोग है।

भारतेन्दु युग तथा समकालीन प्रहसनकार—अपने आदर्श और आध्यात्मिक दृष्टिकोण के कारण नाटककारों ने हास्य के अवतरण बहुत थोड़े अपनाए है। संस्कृत नाटको मे हास्य को लेकर अलग से प्रहसन नही लिखे गए। किसी गम्भीर वातावरण के बीच हास्य रस का एक दृश्य नाटको में रख दिया गया। हास्य की आत्मा को परखने का मौलिक प्रयास यूनानी दार्शनिको ने सबसे प्रथम किया।[2] 'एरिस्टोफेनीज के नाटको को पढ़कर हम हंसी से लोट-पोट जाते है। हास्य की प्रवृत्ति जीवन के क्षेत्र में समन्वय उत्पन्न करती है और विषमताओ को समता के रूप मे परिवर्तित करती है। शेक्सपियर के फुलस्टाफ के प्रति हमारी सहानुभूति अब भी बनी है, मौलियर के नाटक हास्य रस के क्षेत्र मे अमर है।

भारतेन्दु युग से ही हमे हिन्दी नाटको मे हास्य रस की उत्पत्ति मिलती है। यह कहना उचित न होगा कि भारतेन्दु काल तो हास्य और व्यग्य का खजाना-सा है। यह युग तो पश्चिमी तथा पूर्वी सभ्यता की संक्रान्ति का युग था। धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक सभी दृष्टिकोणो से हमारे समाज में संघर्ष उत्पन्न हो रहे थे और दूसरी ओर पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव हमारे देश की संस्कृति तथा साहित्य पर व्यापक रूप से पड़ रहा था। आधुनिक हिन्दी साहित्य में डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय का कथन है कि 'सच तो यह है कि मानसिक अध्यवसाय रहने पर भारतवासी जड़ पदार्थ में परिणत हो गए थे। जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त पान्डे, पुरोहित, ज्योतिषी, गुरु आदि जैसे अशिक्षित और अर्धशिक्षित ब्राह्मण हिन्दू समाज पर छाये हुए थे। इनकेसाथ ही विधवा-विवाह बहु-विवाह, खानदान सम्बन्धी प्रतिबन्ध समुद्रयात्रा के कारण जाति बहिष्कार, नशाखोरी, पर्दा, स्त्रियो की हीनावस्था, धार्मिक सांप्रदायिकता, अफीम खाना आदि अनेक कुप्रभावो

१—विषस्य विषमौषधम्-भारतेन्दु हरिश्चन्द्र-पृ० ४५

२—हिन्दी नाटक का इतिहास-डा० सोमनाथ गुप्त, पृ० ७८

का चलन हो गया था[1]।'

धार्मिक तथा सामाजिक दृष्टिकोण के कारण समाज अवनति की ओर जा रहा था किन्तु भारतेन्दु जी इस विषमता का कटु अनुभव कर रहे थे। उनके हृदय में एक ओर तो नवीन चेतना जाग्रत हो रही थी और दूसरी ओर भारत की गुलामी, देश की दीनावस्था और विषमता उन्हें आघात पहुँचा रही थी। उपर्युक्त दो विचारधाराओ के सघर्ष के कारण प्रहसनो का जन्म हुआ।

भारतेन्दु जी रस सिद्ध-साहित्य के निर्माता थे। प्रेम की स्वच्छ धारा उनकी लेखनी से प्रसूत हुई, करुणा की बदली बन कर उनका हृदय बरसा, शृगार की रस भीगी पिचकारियाँ उनके हाथो से साहित्य मे छूटी और हास्य की गुदगुदी भरी फुलझड़ियाँ भी भारतेन्दु जी ने छोडी।[2] हास्य और व्यग्य के वह सिद्धहस्त लेखक एव प्रहसनकार थे। इनके प्रहसन शिष्ट एव उच्च कोटि के थे। नीलदेवी, वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, प्रेम-योगिनी, पाखण्ड, विडम्बन, विषस्य विषमौषधम्, अन्धेर नगरी, भारत दुर्दशा आदि हास्य के सुन्दर तथा आकर्षक उदाहरण मिलते हैं। किन्तु इनकी सभी रचनाओ को हम प्रहसन की कोटि में नही रख सकते है। भारतेन्दु जी की तीन प्रमुख प्रहसन रचनाएं मानी जाती है—जैसे, 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति', 'अन्धेर नगरी' तथा विषस्य विषमौषधम्'। 'विषस्य विषमौषधम्' राजनीति से सम्बन्धित सस्कृत नाट्यशास्त्र के अनुसार भाण का एक उदाहरण है। 'अन्धेर नगरी' में लोट-पोट कर देने वाला हास्य है। इसमे उन्होने व्यक्ति और समाज पर मीठा मनोरजक और तीव्र व्यग्य किया है। आगे विस्तार में उसका वर्णन करेंगे।

वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति :—

भारतेन्दु जी का लिखा हुआ यह प्रथम प्रहसन है, इसकी रचना १८७३ सन् मे हुई। इस प्रहसन मे चार अक है। इसमें भारतेन्दु जी ने धर्म की आड़ मे हिंसा एव दुराचार करने वाले पाखण्डी समाज का व्यग्यात्मक चित्रण किया है।

प्रथम अक में रक्तरजित राजभवन में चोबदार पुरोहित मत्री और गृद्धराज आदि आकर बैठते हैं। आपस मे मिल कर वह मास भक्षण पर वाद विवाद करते है। और यह सिद्ध करने का प्रयत्न करते है कि मास भक्षण किसी भी प्रकार निषिद्ध नही माना गया है। इसमें जुआ, मैथुन, मदिरा आदि को भी न्यायसगत बताया है।

द्वितीय अक में पूजागृह मे राजा, पुरोहित, मत्री एव भट्टाचार्य आदि बैठे है।

---

१ आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास—डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय—पृ० ९३

२ हिन्दी नाटककार—प्रो० जयनाथ नलिन एम० ए०—पृ० ५३

शैव तथा वैष्णव मतो पर विचार विनिमय करते हैं और विदूषक द्वारा धूर्त वैष्णवों की आलोचना करवाई है। इसमें विट का भी सुन्दर प्रयोग हुआ है। उदाहरणार्थ—

विदूषक—क्यो वेदान्ती जी, आप मास खाते है या नही ?

वेदान्ती—तुमको उससे क्या प्रयोजन ?

विदूषक—नही, कुछ प्रयोजन तो नही, हमने इस वास्ते पूछा कि आप तो वेदान्ती अर्थात् बिना दांत के हैं तो भक्षण कैसे करते होगे ?[1]

शैव, वैष्णव तथा वेदान्ती आदि अपने को इस सभा में उचित न समझ कर वहाँ से चले जाते है।

तृतीय अक में पुरोहित आते है। अपने हाथ में बोतल लिए और माला पहिने उन्मत्त अवस्था मे राजपथ पर जाते हैं। वह मांस भक्षण और मदिरा पान का समर्थन करते हैं, पीते-पीते बेसुध होकर पृथ्वी पर गिर पडते हैं। राजा एव मत्री भी प्रलाप करते हुए नाचने लगते है।

अन्तिम अक में यमपुरी का दृश्य है। चित्रगुप्त राजा, पुरोहित, गडकीदास, शैव, और वैष्णव, मत्री आदि दूतो को पकड कर यमराज के पास ले जाते है। यमराज के समक्ष इन सब दूतों का न्याय होता है। यमराज चार दूता का नरक भोगने का दड देते हैं और वैष्णव तथा शैव को उनकी अकृत्रिम भक्ति के कारण कैलाश की ओर बैकुठवास की आज्ञा देते हैं।

नाटकीय कला एवं हास्य विधान :—

नाटकीय दृष्टिकोण से यह प्रहसन कुछ शिथिल-सा हो गया है। कलात्मक दृष्टि से कथावस्तु का सुदर ढग से विकास नही हो पाया। चरित्र चित्रण अच्छा हुआ है। सामाजिका की दुर्व्यवस्था एव प्रपचात्मक ढागो की व्यग्यात्मक आलोचना का रूप अवश्य सुन्दर ढग से चित्रित हुआ है। हास्य रस भी मिलता है किन्तु व्यग का तीव्र प्रयोग हुआ है।

प्रहसन की भाषा में तथा भावों में लक्षणामूलक प्रयाग का समावेश मिलता है। *प्रहसन का समस्त वातावरण समाज की दुराचारी अवस्था की ओर इगित करने के लिए* बडे ही निम्नकोटि का बनाया है। विरोध के आवेश में आकर नाटककार ने व्यक्तिगत आक्षेपो का भी वर्णन किया है। जो कि प्रहसन को सयत भावो के कारण उच्छृखल बना देता है। 'चित्रगुप्त महाराज। सरकार अंग्रेज के राज्य में जो उन लागो के चित्तानुसार उदारता करता है उसको 'स्टार आफ इण्डिया' की पदवी मिलती है।'

१—वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति—भारतेन्दु—द्वितीय भाग पृ० ११३

'मै अपनी गवाही हेतु बाबू राजेन्द्रलाल के दोना लेख देता हूँ, इन्होंने वाक्य और दलीलों से सिद्ध कर दिया है कि माम की कौन कहे, गोमास खाना और मद्य पीना कोई दोष नही, आगे के हिन्दू सब खाते पीते थे आप चाहिए एशियाटिक सोसाइटी का जर्नल मगाकर देख लीजिए।'[1]

विचारो की शृखला यत्र तत्र उलझी हुई प्रतीत होती है। कही-कही विषय चयन के कारण विचार शृखला विलग होकर रुचि जन्य भाव उपस्थित करती है। व्यक्त विचारो तथा भावो में कलात्मकता की न्यूनता स्पष्ट झलकती है।

प्रहसन में रगमचीय योजना के लिए बहुत ही मनोरजक चित्र उपस्थित किए गए है। जिनमें अभिनयपूर्ण लक्षण विद्यमान मिलते है। प्रहसन होने के कारण हास्यरस प्रधान है। हास्य का वर्ण विषय कही तो अधिक तीव्र है तथा कही व्यग्य और कटाक्ष है और कही-कही पर जनता का मनोरजन प्रस्तुत करने वाला है। यह भारतेन्दु जी का शुद्ध प्रहसन है इसम शुद्ध प्रहसन के सभी लक्षण मिलते हैं। प्रहसन में हास्य तथा व्यग्य की गरिमा का सुन्दर सामजस्य हुआ है। घटनाओ म घात प्रतिघात की क्रिया प्रदर्शित नही होती है। इन्होने पाश्चात्य कामेडी की शैली का अनुकरण अपने प्रहसनो मे किया है। इनके प्रहसनो में विदेशी नाट्य पद्धति तथा भारतीय नाट्य पद्धति दोनो का सम्मिश्रण है।

'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' नामक प्रहसन की रचना नाटककार ने धार्मिक एव सामाजिक जीवन के पक्षो की मूल प्रेरणा को लेकर की है। इसके अन्तर्गत जितने भी पात्र हैं सब अपनी प्रवृत्तियो के प्रतीक मात्र है। वे अपने मौलिक स्वरूप में वैसे ही रहते है। इसी कारण उनके चारित्रिक विकास मे कुछ शिथिलता-सी आ गई है।

सवादो के दृष्टिकोण से प्रहसन का द्वितीय अक और अको की अपेक्षा अधिक उत्कृष्ट कहा जा सकता है। वैष्णव, शैव, विदूषक तथा वेदान्ती के सवादो मे भावो की व्यजना उपस्थित होती है जो कि ढोगी तथा दुराचारी ठेकेदारो के सिद्धान्तों का खण्डन करते है। पात्रो के सवादो मे प्राचीन सस्कृत नाट्य साहित्य के पात्रो की परम्परा स्पष्ट प्रतीत होती है।

उपर्युक्त सवादो मे विनोद की मात्रा अधिक मिलती है। कलात्मक दृष्टिकोण से यह सवाद अच्छे कहे जा सकते है किन्तु ऐसे सवादो की सख्या कम है। व्यग्य से परिपूर्ण सवादो की प्रहसन में अधिकता है। भारतेन्दु जी के इस प्रहसन में समन्वयवादी मनोवृत्ति का भी अनुकरण मिलता है। यथार्थवादी व्यग्यात्मक चित्रो मे हम पाश्चात्य कामेडी के बीज पाते है और कही पर विशुद्ध प्राचीन, भारतीय नाट्य प्रणाली के अनुसार विनोद

१—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा रचित वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, पृ० १२७

और विदूषक की अवतारणा स्पष्ट प्रतीत होती है।

'भारतेन्दु का नाट्य साहित्य' नामक पुस्तक में डॉ० धीरेन्द्र कुमार शुक्ल का कथन है कि 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' भारतेन्दु जी का उत्कृष्ट प्रहसन है। प्रहसनगत हास-परिहास बौद्धिक है। समाज की वास्तविक कुरीतियों का बुद्धिवादी तर्कों में व्यंग्य रूपक देना नाटककार की कलात्मकता तथा सिद्धहस्तता का परिचायक है। भारतेन्दु जी के अन्य प्रहसनों की अपेक्षा उक्त प्रहसन में उच्च कोटि का हास्य विनोद तथा व्यंग्य उपस्थित किया जाता है। भारतेन्दु जी का उक्त प्रहसन युग के उत्कृष्ट व्यंग्य चित्रों में से है[1]।'

आरम्भ से लेकर अंत तक प्रहसन में एक ही लक्ष्य मिलता है। भारतेन्दु जी ने इस प्रहसन में सामाजिक तथा दुराचारी और ढोंगी ठेकेदारों पर व्यंग्यात्मक चित्र उपस्थित किए हैं। यह चरित्र प्रधान प्रहसन है। इसका मुख्य उद्देश्य सामाजिक सुधार है।

अन्धेर नगरी :—

अन्धेर नगरी छः अंकों का प्रहसन है। इसका रचनाकाल सन् १८८१ माना जाता है। इसमें गर्भांक एक भी नहीं है। शीर्षक की सार्थकता इन छः अंकों की कथा-वस्तु में ही मिल जाती है।' अन्धेर नगरी चौपट राजा टके सेर भाजी टके सेर खाजा' से स्पष्ट ज्ञात होता है कि अन्याय से परिपूर्ण राज्य के मूर्ख शासक की हास्यपूर्ण व्यंजना, प्रस्तुत की गयी है। भारतेन्दु जी ग्रामवासियों में जिस साहित्य का प्रचार करना चाहते थे इसी का यह एक उदाहरण है।

प्रथम अंक—में महन्त, नारायण दास तथा गोवर्द्धन दास आदि शिष्यों के साथ प्रवेश करता है। गोवर्द्धन दास भिक्षावृत्ति के लिए जाता है और महत्व अधिक लोभ न करने का अपने शिष्य को उपदेश देता है।

द्वितीय अंक—में बाजार का दृश्य उपस्थित किया गया है, जहाँ पर कि घासीराम, कबाबवाला, नारंगीवाला, मछलीवाला, पाचकवाला आदि सभी अपनी वस्तुओं की महत्ता प्रदर्शित करते हुए और उनकी विशेषता बतलाते हुए सभी वस्तुओं को टके सेर बेचते हैं।

तृतीय अंक—में गोवर्द्धनदास, नारायणदास के समक्ष कुछ मिठाई रखते हैं, परन्तु जब वह महन्त नगरी और राजा का नाम सुनते हैं तो अपने शिष्य नारायणदास

१—भारतेन्दु का नाट्य साहित्य—डा० धीरेन्द्र कुमार शुक्ल एम० ए०, पी०एच० डी० प्रथम संस्करण, पृ० २४३

को लेकर यहाँ से चल देते है।

चौथे अंक—मे राजा के समक्ष एक फर्यादी उपस्थित होता है जो कि कल्लू बनिये की दीवार से दबी हुई अपनी बकरी के लिए प्रार्थना करता है। बकरी के मर जाने के कारण कोतवाल को मृत्युदंड देने की आज्ञा दी जाती है।

पाँचवें अंक—में अन्धेर नगरी की मिठाई खा कर मोटे हुए गोवर्द्धनदास जी पकड़ लिए जाते है और उन्हे पूर्ण दड के लिए ले जाया जाता है।

अंतिम अंक—में गुरु जी अपनी मुक्ति से चेले का उद्धार करते है। इस प्रकार 'अन्धेर नगरी चौपट राजा' का अन्त हो जाता है।

प्रहसन में आदि से लेकर अन्त तक हास्य रस की ही प्रधानता है, व्यंग्य भी हास्य में कुछ विलीन हो गया है। इसे हम शुद्ध प्रहसन ही कह सकते है। इसके शीर्षक में भी ग्राम्यता और भोडापन है। कही-कही प्रहसन मे (सेटायर) व्यंग्य के एक दो उदाहरण बहुत ही रोचक है जैसे—'जातवाला ब्राह्मण जात ले, जात टके सेर जात। एक टका दो, हम अभी जात बेचते है। टके के वास्ते ब्राह्मण से धोबी हो जाए और धोबी को ब्राह्मण कर दें। टके के वास्ते जैसी कहो वैसी व्यवस्था कर दें, टके के वास्ते झूठ को सच कर दें। टके के वास्ते ब्राह्मण को मुसलमान, टके के वास्ते हिन्दू से क्रिस्तान, टके के वास्ते पाप को पुण्य मानें।'

प्रहसन में वक्रोक्ति (आइरनी) का प्रयोग भी किया गया है। कुंजड़िन के मुख से अंग्रेजी राज्य की व्यवस्था के लिए व्याजस्तुति कराई है—

'कुजड़िन—जैसे काजी वैसे पाजी। रैयत राजी टके सेर भाजी, ले हिन्दुस्तान का मेवा फूट और बेर[1]।'

नाट्यकला तथा हास्य विधान :—

नाट्यकला तथा हास्य विधान के दृष्टिकोण से भारतेन्दु जी का यह मौलिक प्रहसन लोकप्रिय प्रहसन है। इसमे प्रवेशक तथा विपकम्भक का प्रयोग नही किया गया है। इस प्रहसन का नायक संन्यासी है। इसमें हास्य से परिपूर्ण उक्तियो की मात्रा अधिक है। प्रथम दृश्य में महन्त द्वारा लोभ न करने के आदेश में बीज माना जाता है अतः यही मुखसन्धि होगी। अन्तिम दृश्य में गोवर्धन तथा गुरु मे फासी के लिए होड़ लग जाती है, वह निर्वहण सन्धि है और राजा का फांसी पर चढ़ना फलागम होगा।

कथावस्तु अत्यन्त ही सरल और साधारण कोटि की है जिसका एक मात्र उद्देश्य मनोरंजन ही ज्ञात होता है। कथानक मे लोक रुचि के अनुसार ही हास्यरस की घटनाओ

१—भारतेन्दु नाटकावली—पृ० ६९०

का वर्णन है। यह घटना धान प्रहसन है। प्रत्येक पात्र पाठका के मनोविनोद का प्रयोजन पूर्ण करता हुआ प्रदर्शित होता है। राजा के चौपट हो जाने का परिचय तो प्रहसन के आरम्भ में ही मिल जाता है। राजा स्वेच्छाचारी और निर्बुद्धि होता है। प्रहसन का प्रत्येक पात्र विशेष कर राजा के चरित्र मे हास्य की अवतारणा मे अतिरजना का सम्मिश्रण मिलता है। प्रहसन मे हास्य रस की प्रमुखता है।

आदि से अत तक विनोद और हास्य की व्यजना प्रहसन में रहती है। इसमें व्यग्य का प्रयोग बड़ी तीव्रता के साथ हुआ है किन्तु मर्यादा का पुट इसमें अवश्य है। हास्यपूर्ण उक्तियाँ भी अधिक प्रशसनीय है। पात्रो के अनुकूल कथोपकथन है और उसमें स्वाभाविकता भी है। भाषा और भाव दोनों निम्नकोटि के है किन्तु विनोदार्थ प्रस्तुत सामग्री के रूप में उपस्थित हैं। चेला तथा महन्त के कथोपकथन में सधुक्कडी भाषा का प्रयोग दिखाई देता है। जैसे एक उदाहरण देखिए—

नारायणदास—गुरुजी, महाराज! नगर तो नारायण के आसरे से बहुत सुन्दर है, जो है सो, पर भिच्छा सुन्दर मिले तो बडा आनन्द होय।

महन्त—बच्चा गोवर्द्धन दास, तू पच्छिम की ओर से जा और नारायणदास पूरब की ओर जाएगा। देख, जो कुछ सीधा-सामग्री मिले तो श्री शालग्राम जी का बाल भोग सिद्ध हो।

प्रहसन में गीतो का भी प्रयोग किया गया है जो कि लोकप्रिय है और इसमें व्यजना भी स्पष्ट ज्ञात होती है। घासीराम तथा पाचन के लटके जब भी चने तथा चूरन बेचने वालो के द्वारा कहे जाते हैं। हास्यात्मक चित्रण अधिकाश हमें पद्याशो मे ही मिलते है। भाव व्यजना का उदाहरण इस पद्य में सुन्दर है। जैसे—

'मछलीवाली—मछरी ले मछरी।

मछरिया एक टके के बिकाय।
लाख टका के बाला जोबन, गाहक सब ललचाय।
नैन मछरिया रूप जाल मे देखत ही फसि जाय।
बिनु पानी मछरी सो बिरहिया, मिले बिना अकुलाय[1]।'

अभिनय के दृष्टिकोण से गेय पद्य अधिक भाव व्यजना के रूपक हैं। प्रहसन में कहीं-कहीं ऐसे दृश्य भी है जो कि देश की तत्कालीन अवस्था पर प्रकाश डालते हैं। प्रहसन होने के कारण यह हास्य रस प्रधान है। हास्य का स्तर शिष्ट और बुद्धिवादी ज्ञात नही होता है। प्रहसन में कुछ दोष होते हुए भी एक सफल कोटि का प्रहसन कहा जा सकता है। प्रो० जगदीश पाण्डे ने हास्य के सिद्धान्त नामक पुस्तक में कहा है

१—अन्धेर नगरी—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र—पृ० ४१, ४६

कि 'भारतेन्दु जी की यह छोटी और आज कुछ भद्दी और अर्धनग्न, अर्द्धसभ्य सी लगने वाली कृति एक शाश्वत दार्शनिक सत्य पर आधारित है। इसीलिए इसकी लोकप्रियता बनी रही है और बनी रहेगी'[१]।

विषस्य विषमौषधम् :—

'विषस्य विषमौषधम्' भाण रूपक है। इसकी रचना १८७७ सन् में हुई। भाण के लिए निम्नलिखित आवश्यक तत्व बतलाए गए है। इनमें एक अक और एक ही पात्र होता है। यह पात्र बुद्धिमान तथा विट होता है जो कि अपने तथा दूसरो के मूर्खता-पूर्ण कृत्या को वार्तालाप के रूप मे प्रस्तुत करता है। वार्ता किसी कल्पित व्यक्ति के साथ होती है। रगमच पर उपस्थिति होकर नायक आकाश की ओर देखता हुआ श्रवण कर नाट्य करता हुआ कल्पित पुरुष द्वारा कही हुई बातो को स्वय दोहराने लगता है और स्वय ही उन सब बातो का उत्तर देता है। इस प्रकार की उक्तियाँ आकाश भाषित कही जा सकती है। शौर्य तथा सौन्दर्य के चित्रण के लिए वह वीर और शृगार रस का आविर्भाव करता है। भाषा मे अधिकतर भारतीय वृत्ति का सहारा लिया जाता है। कही-कही कैशिकी वृत्ति का भी प्रयोग किया जाता है। इसमे अगो के साथ मुख तथा निर्वहण दो ही सन्धियाँ होती है।

नाट्यशास्त्रकार ने भाण के लक्षणों के विषय म निम्नलिखित विचार प्रस्तुत किए है —

'धूर्त विट सम्प्रयोज्यो नानावस्यान्तरात्मक श्चैव
एकाको बहुचेष्ट सनत कार्यो बुधर्भाराय ॥११४॥
भाण स्यापिहि निखललक्षण मुक्तं तथागमानुगतम्
वीथ्या सम्प्रति निखिलं कथयामि यथा क्रमविश्ना[२] ॥११६॥

उपर्युक्त लक्षणो के अनुसार ही 'विषस्य विषमौषधम्' भाण की रचना हुई। इसमें एक ही पात्र का वर्णन किया गया है, वह है भण्डाचार्य। इस भाण का प्रमुख उद्देश्य था अंग्रेजी राज्य की स्वार्थपरता और देशी राजाओ की असमर्थता पर व्यग्य करना। तत्कालीन भण्डाचार्य राजाओ पर व्यग्य करता हुआ कहता है—

'कलकत्ते के प्रसिद्ध राजा अपूर्व कृष्ण से किसी ने पूछा था कि आप लोग कैसे राजा है, तो उन्होने उत्तर दिया जैसे शतरज के राजा, जहाँ चलाइए, वहाँ चलें।'[३]

१—हास्य के सिद्धान्त—प्रो० जगदीश पान्डे, पृ० १३९

२—नाट्यशास्त्र—भरतमुनि—पृ० ५३५

३—विषस्य विषमौषधम्—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र—पृ० ३६

नाटकीय कला एवं हास्य विधान—

नाटकीय दृष्टिकोण के अनुरूप इस भाण के सम्पूर्ण लक्षण मिलते हैं। आरम्भ में जहाँ भण्डाचार्य स्त्री सम्बन्धी वचनों के पश्चात् ही महाराज मल्हार राव के सुख के विषय मे बातें करते हैं वही से कथावस्तु आरम्भ होती है, वही पर बीज तथा मुखसन्धि है। मल्हार राव के पतन का जहाँ वर्णन है वही फल है। और इसी फल के योग में निर्वहण सन्धि होगी।

इस भाण की भाषा में कटाक्ष तथा व्यग्य का प्रयोग भी मिलता है। कथावस्तु को आकाश भाषित शब्दो मे उपस्थित किया गया है। शीर्षक के अनुसार कथावस्तु का सम्बन्ध उससे है जहाँ कि मल्हार राव अपने शासन का षडयन्त्र करवाते हैं और उसको विष देकर मरवाना चाहते है। इस घटना का पोल खुल जाने पर रचा हुआ षडयन्त्र उन्ही के लिए स्वय विष के रूप में ही परिणत हो जाता है। इसी प्रकार शीर्षक के कथन की पुष्टि हो जाती है।

वक्तव्यो के अनुरूप अनेक ऐतिहासिक घटनाओ का समाहार है। नगण्य कथानक होने के कारण तथा एकाकी पात्र योजना में कथावस्तु का निर्माण और चारित्रिक विकास का होना असम्भव-सा ज्ञात होता है। ऐसी अवस्था में इसकी स्थिति दुष्कर हो जाती है। विषस्य विषमौषधम् में व्यग्य का प्रयोग अधिक हुआ है। मल्हारराव के पतन का चित्रण व्यग्यात्मक कटाक्षो द्वारा किया गया है। एक दुराचारी व्यक्तित्व के चरित्र-चित्रण में सामाजिको को हँसाने तथा वैसे ही आचरण को दूर करने के लिए विषस्य विषमौषधम् चेतावनी के रूप में उपस्थित की गयी है। एक ही अक मे आकाश की तरफ देख कर आकाश-भाषित कथनों को लम्बे वक्तव्यो के रूप में वर्णन किया गया है।

भाण में मुहावरो का भी सुन्दर प्रयोग किया गया है जैसे—'राज्य करे सो न्याव, पासा पडे तो दाँव, हसब ठठाई फुलाउब गालू आदि। यह चरित्र प्रधान है। भडाचार्य के मुख से महाराज मल्हारराव का चरित्र-चित्रण बडी सफलतापूर्वक चित्रित हुआ है। 'विष की औषधि विष है' इस सिद्धान्त का वर्णन विषस्य विषमौषधम् भाण में बडे ही सुदर ढग से हुआ है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पश्चात् हिन्दी साहित्य मे अनेक प्रहसनो की रचना हुई। अत. साहित्य मे प्रहसनो की लोकप्रियता बढती चली गयी। बालकृष्ण भट्ट ने १८७७ मे 'जैसा काम वैसा परिणाम' नामक प्रहसन की रचना की।

भट्ट जी का यह प्रहसन बहुत ही रोचक है। इस प्रहसन मे बडे ही प्रभावोत्पादक तथा मनोरजक ढंग से वेश्यागमन एव मदिरापान के कुपरिणामों को प्रदर्शित किया है। भट्ट जी द्वारा रचित यह प्रहसन इस काल के उत्कृष्ट प्रहसनो मे से है। प्रहसन में वेश्या

के प्रेम की अस्थिरता और मन की चंचलता का चित्रण बहुत ही सुन्दर ढंग से किया है। प्रहसन का नायक रसिक लाल है। रसिकलाल वेश्या मोहिनी के मोह में फँसकर अपने धन-दौलत को नष्ट कर देता है। और पत्नी को बहुत ही कष्ट देता है। रसिकलाल की प्रेयसी वेश्या 'मोहिनी' स्वयं वेश्या के चरित्र का यथार्थ चित्रण इन शब्दों में करती है—

मोहिनी—हम लोग बाजार की बैठने वाली हैं, जिसे हम चाहें उसके लिए प्राण तक दे डालें, सिर्फ जी आना चाहिए। और जिसे हम बिगाड़ना चाहें उसका विस्तार भी कहीं नहीं है। हमारे स्वभाव को नहीं जानता सुन—

मन से करै और का ध्यान।
दृग से करै और को भान।
अन्य पुरुष से करै विहार।
तन से करै और को प्यार ॥[1]

रसिकलाल की पत्नी ने (मालती) अपने पति के व्यसन को छुड़वाने के लिए अनेक प्रकार की चालें चलीं। एक दिन मालती ने अपनी दासी को पुरुष वेष पहना कर बैठा दिया। जब उनके पति लौटे तो उसके साथ अनुराग करने का स्वाग रचती है। भला रसिकलाल में इतनी सहानुभूति कहाँ ? रसिकलाल क्रोध के मारे पागल हो कर 'मालती' को अर्थात् अपनी पत्नी को मारने के लिए तैयार हो जाता है। तब मालती ने गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया—

मालती—क्यों नहीं, क्या हम आदमी नहीं है, क्या हमारा मन नहीं है, क्या हमारे इन्द्रियाँ नहीं है ? क्या हमको सुख दुःख का ज्ञान नहीं है ? हम तो कोई चीज ही नहीं ठहरी, और फिर तुम हमारा बडा सत्कार जो करते हो न ?[2]

रसिकलाल अपनी पत्नी की इस डाट से बहुत गम्भीर होकर व्यसन को सदैव के के लिए त्याग देने की मन मे ठानता है। प्रहसन का अंत भरतवाक्य से होता है :—

होंहि एक पत्नी व्रत-रत सब भारत नरवर
तजहिं कुपथ पथ गहहिं धर्मकर दुर्मति तजकर
तजि वेश्या संग रमन करहिं श्रद्धा निज तिय पर
जासों सुधरहिं दशा दीन भारत कै सत्वर ॥[3]

कलात्मक दृष्टिकोण से यह प्रहसन सफल माना जाता है। भट्टजी का भाषा पर विशेषरूप से अधिकार था। इस प्रहसन मे उन्होंने अनेक अंग्रेजी शब्दों का और

१—'जैसा काम वैसा परिणाम'—बालकृष्ण भट्ट—चौथा दृश्य, पृ० २९
२—वही वही —पाँचवाँ दृश्य, पृ० ४१
३—वही वही वही पृ० ४४

वाक्यों का प्रयोग किया है। हास्य रस का प्रयोग भी कहीं-कहीं सुन्दर ढंग से हुआ है परन्तु कथावस्तु का विकास पूर्ण रूप से नहीं हुआ। नाटकीय सघर्ष का भी उसमें अभाव है। 'भट्ट नाटिकावली' नाम से नागरी प्रचारिणी सभा, काशी से प्रकाशित उनके नाटकों का एक सग्रह है। यह प्रहसन उसी मे है।

प्रतापनारायण मिश्र :—

प्रतापनारायण मिश्र ने 'कौल कौतुक रूपक' नामक प्रहसन की रचना की है। यह प्रहसन मिश्र जी द्वारा सन् १८८६ में लिखा गया। इसमे चार दृश्य है। इस प्रहसन के अन्तर्गत उच्चकुल के लोगों की विशेषता बडी लीलाओ का वर्णन और नगर के निवासियों का गुप्त चरित्र प्रदर्शित किया गया है। साथ ही समाज मे फैली हुई कुरीतियों का बडे सुन्दर ढग से वर्णन किया है। इसमे उस सस्कृत वर्ग पर भी व्यग्य किया है जिसमें धन की मुख्य आराधना है। सामाजिक तथा वेश्या-गमन आदि चारित्रिक दुर्बलताओं का भण्डाफोड किया है। अंग्रेजी विद्वानों ने जो इस युग में अपने चमत्कार प्रदर्शित किये, उस प्रमाण को मिश्र जी बहुत समय पूर्व स्थापित कर गए थे।

'भारत दुर्दशा' नामक नाटक में भी दुराचारियों के दुर्व्यवहार और साधु सन्तों के पाखण्ड तथा मासभक्षियों एव मदिरापान करने वालों के अनाचार को दिखाया है।

हास्य कला एव नाट्य विधान के दृष्टिकोण से यह प्रहसन चरित्र प्रधान है। इस प्रहसन का अन्तिम दृश्य अधिक उपदेशात्मक हो गया है। चरित्र चित्रण सजीव रूप से प्रस्तुत किया गया है। सवादो मे भी स्वाभाविकता स्पष्ट झलकती है। विशेष रूप से हास्योत्पादन ग्रामीण बोली द्वारा इस प्रहसन में दिखाया है। 'कलि कौतुक रूपक' मे व्यग्य तथा वाक् छल का अधिक प्रयोग हुआ है। नाटकीय सघर्ष का इसमे अभाव है। मुहावरों का प्रयोग भी इसमें प्रचुर मात्रा मे किया गया है। कठोर व्यग्य का भी वर्णन उचित रूप से हुआ है। कही-कहीं प्रहसन में हास्य के बहुत सुन्दर उदाहरण मिलते है।

राधाचरण गोस्वामी :—

भंग-तरग —इसका रचना-काल सन् १८९२ है। यह एक छोटा-सा प्रहसन है। भारतेन्दु नाम से गोस्वामी जी एक मासिक पत्र निकालते थे। यह प्रहसन भी उन्होने पत्र में निकाला था। इस प्रहसन मे नशेबाज मनुष्यों के दुर्व्यवहारो के परिणामो को दिखाया है। इस प्रहसन के पात्रों के नाम भी ऐसे है। जैसे बुलबुल, बीबी, सुरजी, घूघू, नारायण, बच्ची, सिंह आदि। इस प्रहसन मे छ दृश्य है। प्रहसन मे भगडियो का मनोवैज्ञानिक चित्रण मिलता है। पुलिस का दारोगा जब भगडियों को पकडने के लिए आता है वे सब नशे में चूर रहते है तो दरोगा साहब भी उनसे हँसी मजाक करने लगते

हैं, फिर यह सब अवसर पाकर भाग जाते है।

इस प्रहसन के कथोपकथन बहुत सुन्दर है। प्रथम दृश्य में यमुना किनारे भगडिया की मडली बैठी हुई है। उस्ताद और शागिर्दों का वार्तालाप होता है, उसका यह एक उदाहरण है —

बुलबुल—(गाता है—भैरवी) धन काकी सेजडिया पै रात रही
माथे की बेंदी जात रही।

मूर—बोला लड्डू कचौरी खात रही।

घूघू—अबे यो गाव अब के दगल में मथुरा की बात रही
और बूचीसिंह के साथ हवालात रही
धन काकी सेजडिया पै रात रही।

सब—अहा हा[1]।

नाटचतत्त्व की दृष्टि से यह प्रहसन बहुत ही रोचक है। इसकी कथावस्तु यथार्थ वादी जीवन से लेकर चित्रित की गयी है। सवादो मे जान है। पात्रो के चरित्र का विकास भी सजीव रूप से हुआ है। हास्य रस का भी अच्छा प्रयोग हुआ है। इसमे नाटकीय सघर्ष का पुट भी मिलता है। अपने समय के प्रहसनो में यह प्रहसन अधिक सुन्दर और रोचक है।

बूढ़े मुँह मुँहासे—

राधाचरण गोस्वामी का यह दूसरा सुन्दर प्रहसन है। यह सन् १८८७ मे लिखा गया। इसमें दो अक है। यह चरित्र प्रधान प्रहसन है। गोस्वामी जी के इस प्रहसन मे उन नेताओं का वर्णन किया गया है जो कि वास्तव में मूर्ख है किन्तु ऊपर से धर्म तथा भक्ति का चोला पहने रहते है। जिनके हृदय मे मोह, लोभ माया तथा वासना की भावना निहित रहती है, उन लोगों पर व्यग्य किया है।

इस प्रहसन मे पात्रो के चरित्र-चित्रण का विकास भी सुन्दर हुआ है किन्तु शुद्ध हास्य का अभाव है। इसमें वाक् छल तथा व्यग्य का अधिक प्रयोग हुआ है। इस प्रहसन में मुख्य पात्र नारायण दास है जो कि बहुत ही दुराचारी है, किन्तु ऊपर से वह भक्ति का चोला पहने रहते है इनका चित्रण बडे व्यग्यात्मक ढग से नाटककार ने किया है।

तन, मन, धन गोसाईं जी के अर्पण—

इसका रचना काल १८९० है। गोस्वामी जी द्वारा रचित यह इनका तीसरा प्रमुख प्रहसन है। इस प्रहसन के अन्तर्गत श्रद्धालु भक्तों पर परिहास किया गया है जो

१—भारतेन्दु—१९ सितम्बर, १८८३ ई०, पृ० ९२

कि अनाचारी गुरुआ मे अन्धविश्वास की धारणा लेकर अपनी पत्नियो को तथा बहू-बेटियो को उनके पास भेजते है और उनसे उनकी प्रतिष्ठा को नष्ट करवाते है। अर्थात् उनकी चरित्रहीनता तथा पाप-पाखण्ड का चित्रण किया गया है। यह आठ दृश्यो का एक छोटा-सा प्रहसन है। सेठानी, रामा कुटनी तथा नवशिक्षित गोकुल आदि इसके प्रमुख पात्र हैं।

जैसा कि प्रहसन के नाम से ज्ञात होता है, इसमें गुसाइयों का खाका खीचा गया है। इस प्रहसन का मुख्य उद्देश्य है, उनके पाखण्ड तथा पाप और चरित्रहीनता को व्यंग्य रूप से चित्रित करना।

हास्य विधान तथा नाटकीय कला के अनुसार इसमे सवादो द्वारा हास्योत्पादन कराया है। कथावस्तु का विकास उचित रूप से नही हुआ। यह प्रहसन तीनो प्रहसनो मे कुछ हल्का सा ज्ञात होता है। पात्रो के चरित्र का प्रस्फुटन भी उचित रूप से नही हुआ है।

देवकीनन्दन त्रिपाठी—

'भारतेन्दु' के वाद यदि तीव्र और कठोर व्यग्य मिलता है तो वह देवकीनन्दन त्रिपाठी का। . ..प्रहसनो द्वारा समाज-सुधार का कार्य भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने शुरू किया और देवकीनन्दन त्रिपाठी ने उसे आगे बढाया।'[1]

त्रिपाठी जी ने आठ प्रहसन लिखे है।

१८७८ में 'रक्षावन्धन' नामक प्रहसन लिखा। इसमे वेश्यागमन तथा मदिरापान करने वालो के दुष्परिणामो पर प्रकाश डाला है। 'एक एक के तीन तीन' प्रहसन की रचना १८७९ मे हुई। इसके अन्तर्गत ब्याज लेने वालो की मनोवृत्ति का चित्र प्रदर्शित किया है। १८७९ में 'स्त्री चरित्र' प्रहसन लिखा गया, इसम दूपित स्त्रियो के दुष्परिणामों को व्यग्यात्मक रूप से प्रस्तुत किया है। 'वेश्याविलास' जैसा कि नाम से स्पष्ट ज्ञात होता है कि इसमें वेश्याविलासो की प्रमुखता का वर्णन है। 'वैल छः टके को' मे मनुष्य के अधिक लोभी होने के दुखद परिणामों का वर्णन है। 'जयनारसिंह' मे जादू टोना करने वालो की हँसी उडाई गई है और अन्धविश्वासा पर वडी करारी चोट की है। 'सैकडे मे दश-दश' में मद्यसेवन करने वालो की पुलिस द्वारा हँसी उडाई है। उसमें से अन्तिम प्रहसनो को छोडकर शेष प्रहसन अभी प्रकाशित नही हुए। इनके सभी प्रहसनो मे घरेलू व्यसनो तथा सामाजिक बुराइयो आदि पर व्यग्य किया गया है। देवकीनन्दन त्रिपाठी भी १९ वी शताब्दी के प्रमुख प्रहसनकारा मे से है। भारातेन्दु और वालकृष्ण भट्ट की

१—आधुनिक हिन्दी साहित्य—डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय—पृ० २५१-५२

तरह इनके व्यंग्य मे तीखापन तथा कटुता है।

१८८८ मे लालखड बहादुर मल्ल ने 'भारत आरत' नामक प्रहसन की रचना की। इसमे दुर्बल और दुखी भारतवर्ष का वर्णन है। इस प्रहसन के चार दृश्य है। व्यग्य का प्रयोग उचित रूप से हुआ है। बाबू नानकचन्द द्वारा रचित 'जौनपुर का काजी' है। यह प्रहसन राधाचरण गोस्वामी द्वारा सम्पादित 'भारतेन्दु' के तीन अको मे प्रकाशित हुआ है। इसका प्रधान उद्देश्य मनोरजन भी है। हास्योत्पादन अतिरजित घटनाओ द्वारा हुआ है। सवाद भी बहुत ही सजीव है। किशोरीलाल गोस्वामी ने १८९१ मे 'चौपट चपेट' नामक प्रहसन की रचना की। इसमे द्यूत क्रीडा, मदिरापान और व्यसनो की निन्दा की है।

देवकीनन्दन तिवारी ने 'कलजुगी विवाह' नामक प्रहसन की रचना की। इस प्रहसन मे अश्लील गीत-गानो की तथा बाल-विवाह की निन्दा की गई है। व्यग्य का कटु प्रयोग किया है। श्री गोपालराम गहमरी ने 'जैसे को तैसा' नामक प्रहसन मे वृद्ध विवाह के दुष्परिणामो को चित्रित किया है। नवलसिंह चौधरी [१८९३] ने 'वेश्यानाटक' नामक प्रहसन की रचना की। इस प्रहसन के अन्तर्गत वेश्यागामियो के अपमान तथा वेश्या के दोषो का वर्णन किया है। भारतेन्दु जी की शैली के आधार पर [१८९२] मे विजयानन्द त्रिपाठी ने 'महा अन्धेर नगरी' नामक प्रहसन की रचना की। और देवदत्त शर्मा ने [१८९५] मे 'अति अन्धेर नगरी' प्रहसन लिखा।

इसके अतिरिक्त [१९००] मे बलदेव प्रसाद मिश्र ने 'लल्ला बाबू' प्रहसन लिखा। १८८८ मे रामलाल शर्मा ने 'अपूर्व रहस्य' नामक प्रहसन की रचना की। राधाकान्त का [१८९८] मे, 'देशी कुत्ता विलायती बोल', पन्नालाल का 'हास्यार्णव' [१८८५] हरिश्चन्द्र कुलश्रेष्ठ का 'ठगी की चपेट' [१८८४] मे लिखा गया। इन सभी प्रहसनो के विषय वही मदिरा-पान, धार्मिक पाखण्ड, वेश्यावृत्ति के दुष्परिणाम, फैशन, बाल-विवाह सामाजिक कुरीतियाँ आदि है। हास्योत्पादन भी अतिरजित घटनाओ द्वारा हुआ है। व्यग्य का भी तीखा प्रयोग हुआ है। अनेक छोटे-छोटे प्रहसन साधारण कोटि के भी लिखे गये।

आलोचनात्मक दृष्टिकोण से यदि इस काल के प्रहसनो पर दृष्टिपात किया जाए तो भारतेन्दु जी के पश्चात् बालकृष्ण भट्ट एवं देवकीनन्दन त्रिपाठी के प्रहसन ही सफल कोटि के कहे जा सकते हैं। इन दोनो प्रहसनकारो का और थोड़ा बहुत राधाचरण गोस्वामी का हास्य शिष्ट तथा उच्चकोटि का है। इनके वाक्य अधिक व्यग्यात्मक ढग से प्रस्तुत किए गए हैं, साथ ही व्यग्य में शक्ति और तीखापन है। अश्लील वाक्यों का प्रयोग बहुत ही कम मात्रा मे हुआ है। शेष प्रहसन प्राय. असफल कोटि के ही रहे हैं, क्योंकि उनमे हास्य मे हमे कोई स्वाभाविकता नही मिलती है अर्थात् उसमे कृत्रिमता है।

प्रहसनकार ने भद्दे तथा अश्लील वाक्यो का प्रयोग करने में किंचित मात्र भी सकोच नही किया है। प्रहसनो में नाटकीय सघर्ष का अभाव है। परिस्थितियो द्वारा हास्योत्पादन बहुत कम मात्रा में मिलता है। व्यग्य मे शक्ति एव तीव्रता बिल्कुल नहीं है।

इसके अतिरिक्त विपया की एकत्रित सामग्री मे मौलिकता भी कम दिखाई पडती है। इन लेखको मे सूक्ष्म प्रतिभा एव नई सूझ का परिचय भी बहुत कम मात्रा मे प्रदर्शित होता है। और यही विषय प्रतिपादन में कौशल तथा प्रतिभा का प्रमाण मिलना है। इसी कारण कलात्मक दृष्टि से यह प्रहसन निम्न कोटि के अन्तर्गत आते है। यदि हम यह सोच लें कि यह काल प्रहसन का आरम्भिक काल था, अत प्रहसनकार विषय प्रतिपादन, कौशलपूर्ण प्रतिभा और कलात्मक दृष्टिकोण से वचित थे। इनके समय मे प्रहसन रचना शैशवावस्था में थी। इसी कारण यौवनोचित विकास उत्कृष्टता तथा कौशलपूर्ण प्रतिभा एव उन्नति के दर्शन इनकी रचनाओ मे नही होते है, किन्तु अपने युग की सामाजिक कुरीतियो तथा धार्मिक राजनीतिक एव घरेलू परिस्थितियो का यथार्थ चित्रण अधिकतर इन प्रहसनो में मिलता है। मदिरापान करने वालो का तथा वेश्यागामियो का चित्रण भी स्पष्ट इन प्रहसनो मे मिलता है।

द्विवेदी युग एवं प्रहसनकार .—द्विवेदी युग मे प्रहसन बहुत कम लिखे गए। इस युग में मौलिक एव अनूदित नाटको की ही रचना हुई। विशेपकर द्विवेदी युग भाषा परिमार्जन का रहा है और पद्य शैली का विकास अधिक हुआ है। वस्तुत मौलिक नाटको में से ऐतिहासिक एव पौराणिक नाटको की ही प्रधानता रही है। सामाजिक जीवन के विविध प्रकार के अगो तथा समस्याओ को लेकर रचे जाने वाले नाटको की सख्या कम है। भारतेन्दु जी की हास्यप्रियता का स्थान गहन गम्भीरता तथा शुष्कता ने लिया। इसका परिणाम यह हुआ कि भारतेन्दु युग में जिन प्रहसनो की वृद्धि हुई थी वह द्विवेदी युग में आकर कम हो गई। अत भारतेन्दु युग की अपेक्षा इस युग में हास्य प्रधान नाटको की रचना कम हुई। उस समय पारसी नाटक कम्पनिया का प्रचार था, गम्भीर नाटको के बीच में छोटा-सा हास्य प्रधान नाटक रख दिया जाता था, जैसे नारायण प्रसाद बेताब', आगाहश्र काश्मीरी आदि लेखक नाटको को नीरसता से बचाने के लिए बीच मे छोटे प्रहसना को रख देते थे।

हास्य विधान एव नाट्य कला के दृष्टिकोण से द्विवेदी युग मे भारतेन्दु युग की अपेक्षा नाट्य कला का विकास अधिक हुआ किन्तु प्रहसनो में कथोपकथनो की परिपक्वता स्पष्ट झलकती है और घटनाओ के द्वारा पात्रो का चरित्र चित्रण स्पष्ट किया गया है। व्यग्य में कटुता कम है और शुद्ध हास्य की मात्रा भी अधिक है। युग तथा अति नाटकीय प्रसंगो का बाहुल्य है। इस युग में अनेक नाटककार हुए —

बदरीनाथ भट्ट :—

इनके तीन प्रसिद्ध प्रहसन है १—विवाह् विज्ञापन [१९२७], २—मिस अमरिकन [१९२९] और ३—लबडधोंधो [१९२६]। इनका लवडघोंधो छ प्रहसनों का सग्रह है [१] हिन्दी की खीचातानी [२] रेंगड समाचार के एडीटर की धूल दच्छना [३] पुराने हाकिम का नौकर [४] ठाकुर दीनसिंह साहिब [५] आयुर्वेद केसरू वैद्य बैंगन दास जी कविराज [६] घोंघावसन्त विद्यार्थी आदि।

विवाह-विज्ञापन :—यह प्रहसन १९२७ मे लिखा गया। इसमें पाँच दृश्य है। इस प्रहसन मे एक ऐसे व्यक्ति को हास्य का आलम्बन बनाया गया है जो अपनी धर्मपत्नी के मरने के पश्चात् यह प्रदर्शित करने का प्रयत्न करता है कि वह दूसरा विवाह नही करना चाहता, परन्तु उसकी हार्दिक लालसा यही होती है कि कही सुन्दर राजकुमारी से उसका प्रणय हो जाय। एक पत्रकार उससे रुपया लेकर एक विज्ञापन निकाल देते है और एक पुरुष से उसका विवाह हो जाता है। जब वह व्यक्ति प्रकट होता है तो इसी स्थान पर हास्य की स्थिति उत्पन्न होती है। वास्तव में पाश्चात्य वनाव-शृगार पर भी इसमें छीटाकशी की गई है। उसका विज्ञापन पठनीय है—

'एक अत्यन्त सुन्दर, सुशिक्षित, सुलेखक, सुकवि, सुस्वास्थ्य समृद्धिशाली लड़के के लिए एक अत्यन्त रूपवती, गुणवती, सुशिक्षिता, विनम्रता, आज्ञाकारिणी, साहित्य-प्रेमिका सुकन्या की आवश्यकता है। लड़के की मासिक आय १०,०००) है। लड़का गद्य व पद्य लिखने मे तो कुशल है ही, इन्जीनियरी, डाक्टरी, प्रोफेसरी, एडीटरी आदि कलाओ में भी एक ही है। अपने घर मे अवतार समझा जाता है। स्थावर व जगम संपत्ति कई लाख की है। करोड कहना भी अत्युक्ति न होगी। घराना वेदो के समय का पुराना और लोक परलोक मे नामी है। लडका समाज सुधारक होने के कारण जाति बन्धन से मुक्त है अर्थात् किसी भी जाति की कन्या ग्राह्य होगी, यदि वह वर योग्य समझी गई। पत्र-व्यवहार फोटो के साथ कीजिए। पता...सम्पादक, वागडू समाचार, कार्यालय[1]।'

मिस अमेरिकन :—

मिस अमेरिकन भट्ट जी का सर्वोत्कृष्ट प्रहसन है। इस प्रहसन के पात्र पाश्चात्य सभ्यता के प्रतीक हैं और पाश्चात्य सभ्यता का व्यग्यपूर्ण चित्रण किया है। इस प्रहसन की रचना १९२९ में हुई है। बदरीनाथ जी ने उन कवियो का वर्णन किया है जो कि सौन्दर्य का विकल रूप अपने काव्य द्वारा प्रदर्शित करते है। पात्रो का लक्ष्य केवल धनो-

---

१—विवाह-विज्ञापन, पृ० १५,१६

त्पादन है।' बोहरीलाल जी को अपना समाज रुचिकर नही लगता क्योकि वह पूर्वी सभ्यता का पोषक है। यह चरित्र प्रधान प्रहसन है। वास्तव मे अमेरिकन जीवन के प्रति कुछ अन्याय इस प्रहसन ने अवश्य किया है। अमेरिकन चरित्रो को इतना अतिरजित चित्रित किया है कि वहाँ व्यग्य बहुत कटु हो गया है। मिस अमेरिकन मे अपने स्त्री समुदाय का पुश्चलीपन चित्रित किया है। आप हास्य की सीमा का उल्लघन कर गए है। न जाने क्या अमेरिकन समाज का इतना कठोर खाका खीचा है। मौलियर अपने विरोधी-पक्ष की जितनी असमवेध श्रेणी हो सकती है इसमें रख देता है परन्तु उसके साथ निष्ठुरता नही करता। आपने अमेरिकन समाज के जिस चित्र को सामने रखा है उसमे अमेरिकन समाज के साथ निष्ठुरता की गयी है और उन पात्रो मे व्यक्तित्व का अश शून्य होने के कारण वे समाज के प्रतीक [टाइप] पात्र रह गए हैं, इसलिए उनके अन्दर अस्वाभाविकता अवश्य आ गयी है[1]।'

घोंघावसन्त विद्यार्थी —इसम भट्ट जी ने शिकारपुर के रहने वाले विद्यार्थी का चित्रण किया है। एक ही दृश्य इस प्रहसन में है। इसके मित्र उन्ह रिझाने के लिए पूछते है तुम कहाँ के रहने वाले हो ? कुछ कहते है आया है शिकारपुर आदि ऐसा सुन कर वह अपने मित्रो को गाली देता हुआ भाग जाता है। और कहता है—

'यहाँ के लोग गुणावली तो देखते नही घर का पता पूछते है' कहाँ के रहने वाले हो ? कहाँ के रहने वाले हो, रहने वाले हैं तुम्हारे घर के, कहो क्या कर लागे तुम हमारा ? कह दिया करता था कि जिला बुलन्दशहर का रहने वाला हूँ पर अब किसी कम्बख्त ने—भगवान उसे सौ बरस तक सब विपया में फेल करे और सत्यानास हो जाये उसका, आस्तीन का साप, कुल्हाड़ी का बेटा और फिर आपको बोलना हो बोलिए, जी हाँ, न बोलना हो न बोलिए, अपना रास्ता नापिए, चाल दिखाए हवा खाइए, सवारी बढाइए वगैरह वगैरह और भी बहुत ही सुन्दर वाक्य हैं। हम जहन्नुम के रहने वाले सही, क्या कर लोगे आप हमारा।[2]

पुराने साहित्य का नया नौकर—

इस प्रहसन में तीन दृश्य है। इसका उद्देश्य नौकर के मुख से ही स्पष्ट करा दिया है—सच बात तो यह है कि कलट्टर, टिकट कलट्टर, इसपेट्टर, मास्टर, एडीटर वगैरह बीसियो टरो के यहाँ मैंने नौकरी की पर जो बढिया गालियाँ यहाँ खाने को मिली, वे

१—हिन्दी नाटकों मे हास्य—डा० सत्येन्द्र माधुरी, चैत्र, ३०८
२—घोंघावसन्त विद्यार्थी—बदरीनाथ भट्ट—पृ० ३५
(लबड़धोंधों)

और जगह नहो। जरा घर में घुसा कि दोनो की दोनों बिल्लियों की तरह मेरे ऊपर टूटी। जरा बाहर आया कि बुड्ढे खूसट ने काट खाया। बेतरह हैरान हूँ। वाह री नौकरी। तू भी कैसे कैसे तमाशे दिखाती है। लीजिए अभी हाल ही में न कुछ बात थी न चीत, दोनो की दोनो मेरे ऊपर झाडू लेकर टूट पड़ी और झटकम मेरी करके मेरा कुर्ता फाड़ डाला और मुझे नोचा, खसोटा और बकोटा भी[१]।

आयुर्वेद-कसेरू-वैद्य वैगनदास जी कविराज :—इस प्रहसन का उद्देश्य नाम से ही स्पष्ट है क्योंकि इसके अन्तर्गत नीम-हकीमों का ही वर्णन किया गया है जो कि जनता से रुपया लूटने में व्यस्त रहते है और वैद्य लोग लड़कियों को वैधक पढ़ाने के बहाने उनके साथ दुराचार करते है। इसमें व्यंग्य बहुत ही तीव्र है।

ठाकुर दानीसिंह :—यह एक दृश्य का प्रहसन है। इस प्रहसन में कठपुतली के तमाशे का वर्णन किया गया है, क्योंकि कठपुतली के तमाशे को देखकर ठाकुर साहब जी उछल पड़ते है।

पुतलीवाला :—हुजूर, जो (पुतली को चलाता हुआ) राजा मानसिंह जयपुर-वाले बादशाह से हुक्म लेकर चित्तौड़गढ़ को जीते—

ठाकुर :—क्रोध और जोश में, जो जातिद्रोही, कलंकी, बदमाश पहले मुझसे तो जान बचाले फिर कहीं जाने का नाम लीजो। मैं अभी सालो का ढेर···

पुतलीवाला—हाय मै मरा।

ठाकुर—हाय हाय कैसी ? साला चित्तौड़ जीतेगा।

पुतलीवाला—मैं मरा हाय मेरा रोजगार क्या[२] ?'

हिन्दी की सींचातानी :—इस प्रहसन के अन्तर्गत उर्दू पर ही कठोर व्यंग्य किया गया है, क्योंकि उस समय प्राय: लोग हिन्दी भी उर्दू के ही समान बोलते थे, इसमें *गीतों का प्रयोग भी हुआ है। इसका एक उदाहरण देखिए*—

दलाल—तो क्यों महाराज, आप परचारक है परचारक ? आपका नाम शौशंकर तो नही है, शो शंकर ?

परदेशी—शौशकर क्या ? अरे तुम हिन्दू होकर और आर्य वंशज होकर एक बाहरी लिपि की बदौलत अपने आप नाम बिगाड़ते हो। मेरा नाम शिवशंकर है शिवशंकर[३]।

१—लबड़धोंधों (पुराने हाकिम का नया नौकर) बदरीनाथ भट्ट—पृ० ४५

२— " (ठाकुर दानी सिंह) पृ० ६८

३—लबड़धोंधों—बदरीनाथ भट्ट—पृ० ६७

रेगड़ समाचार से एडीटर की धूल दच्छना :—

इसमें एक ही दृश्य प्रदर्शित किया गया है। चुनाव के समय उम्मीदवारो के द्वारा सम्पादकों की कैसी दुर्दशा की जाती है इसका चित्र खीचा गया है।

भट्टजी का स्थान द्विवेदी युग के प्रहसनकारो में से श्रेष्ठ है। इन्होने अपने प्रहसनो में विदूषक को स्थान नही दिया। विवाह विज्ञापन इनका परिस्थिति प्रधान प्रहसन है। प्राय: इनके प्रहसनों में स्वाभाविक हास्य है और कथोपकथनों में तीव्रता अधिक है। इन्होने वाक्य छल का प्रयोग हास्योत्पादन के साथ किया है। मिस अमेरिकन में भी हास्य का सुन्दर चित्रण किया है।

जी० पी० श्रीवास्तव :—

उलटफेर :—प्रथम इनका प्रहसन 'उलटफेर' है। इसकी रचना सन् १९१९ में हुई। इस प्रहसन में तीन अंक हैं। पहले अंक में पाँच, दूसरे में सात और तीसरे में आठ दृश्य हैं। सूत्रधार एवं विदूषक के द्वारा प्रहसन का उद्देश्य स्पष्ट कराया गया है। सूत्रधार बताता है—

'यहाँ तो हमारे भाइयों को मुकदमेबाजी का ऐसा चस्का हुआ है कि दौलत रहे *या न रहे, जान रहे या न रहे, मगर मुकदमेबाजी का सिलसिला हमेशा कायम रहेगा*'[1]।

इसमें कुल ४७ पात्र हैं। वकीलों का तथा मुकदमेबाजी और दलालों को आलम्बन बनाया गया है। इसमें प्रमुख पात्र अललटप्पू, चिरागअली आजिज, खुराफात, हुसैन, मुहर्रिरअली, गुलनार, दिलफरेब आदि। एक दृश्य के अन्तर्गत सरिश्तेदार तथा अलल टप्पू, डिप्टी क्लक्टर का वादविवाद अत्यधिक सुन्दर है।

मर्दानी औरत—मर्दानी औरत में नौकरो की बेवकूफी पर एवं समालोचको के पक्षपात पर हँसी उड़ाई है। इसकी रचना १९२० में हुई है। रमचोखा नौकर गड़बड़ अली की बातचीत होती है—

गड़बड़—जी हुजूर, अरे रमचोरवा !

(रमचोरवा का आना)

रामचोखा—का हो होय हो। आवत, आवत मूडे पर आसमान उठाय लेत है। भीतर अलगै कुहराम मचा है, बाहर ई जान खाए जाए है।

गड़बड़—अबे चुप, देखता नही, राजा साहब आए है चल कुर्सी लगा।

रामचोखा—अरे भई भोकल राजा साहब होय।

१—'उल्टफ़ेर'—जी० पी० श्रीवास्तव—पृ० ४७

गडवड—हाँ मगर तमीज से बातें कर।

रामचोखा—नब्बे धौला बन्दर है अह है भुलाई गदहा असतो फूला है कस कुरसिया माँ धसिए[1]।

इसी प्रकार समालोचक पक्षपाती लाल पूर्णानन्द का व्यग्यपूर्ण चित्रण है।

साहित्य का सपूत :—यह नाटक साहित्यिक प्रवृत्तियो को लेकर लिखा गया है। इसमे साहित्यिक पत्नी और दुनियादारी पत्नी की असगति हास्य का विषय है। 'साहित्यानन्द' प्राचीन साहित्यिक प्रवृत्तियो का पोषक पात्र है और ससारी आधुनिक प्रवृत्तियो का साहित्यानन्द की एक कन्या विवाह करने योग्य होती है। ससारी उससे प्रेम करता है अतः अचानक ही कुछ बाधाएँ उपस्थित होती है और इनको दूर करने के लिए कुछ हास्यपूर्ण घटनाएँ घटित होती है। इसी कारण हम देखते है कि इसका लक्ष्य हास्य रस को प्रदर्शित करना है।

हास्यविधान तथा नाट्यकला की दृष्टि से इनका हास्य प्राय स्थितिजन्य हास्य है। अत प्रहसनो में कुछ ऐसी स्थितियाँ उत्पन्न की कि जबर्दस्ती हास्योत्पादन हुआ है। कला के दृष्टिकोण से श्रीवास्तव जी उत्कृष्ट कोटि के नही है परन्तु प्रचार के दृष्टिकोण से वह आगे हैं। इनके प्रहसनो में चरित्र चित्रण की सुन्दरता कुछ कम दिखलाई पड़ती है किन्तु हास्य इनका स्थूल है। गुलाबराय जी ने हिन्दी साहित्य के इतिहास में कहा है कि 'जी० पी० श्रीवास्तव के नाटको में हास्य की मात्रा अधिक है किन्तु उनमें साहित्यिक हास्य की अपेक्षा धोलधब्बे का हास्य अधिक है।'[2]

प० बनारसीदास चतुर्वेदी जी ने भी श्री जी० पी० श्रीवास्तव के हास्य के विषय में अपने विचार प्रकट किए है। उनका कथन है कि 'श्री जी० पी० श्रीवास्तव जी का हास्य उच्चकोटि का नही, जैसी आशा इनसे की जाती है। इसे तो लट्ठमार मजाक कहना ज्यादा उचित होगा।'[3]

साहित्य सन्देश में भी इनके विषय में लिखा है कि 'यह किसी विशेष को लक्ष्य करके हास्य की सृष्टि करते है। प्राय आप अपनी रचनाओ में ऐसे चरित नायक की कल्पना करते हैं जो अकल के बोझ से हैरान है। पात्र कोई काम करेंगे तो ऊटपटाग हर जगह मार अथवा गाली खायेंगे। कही बदहवास भाग रहे है तो कभी घुमड़िया खाते हुए किसी टोकरेवाले पर या कीचड़ में गिर पड़ते हैं।'[4]

१—गड़बड़झाला—श्री जी० पी० श्रीवास्तव—पृ० १६०।

२—हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास—गुलाबराय—पृ० २७०

३—विशाल भारत—मई १९२९, हिन्दी में हास्य रस—लेख, पृ०-२०३

४—साहित्य सन्देश—भाग १, अक १, पृ० २२

जहाँ तक हास्योत्पादन का प्रश्न है ये प्राय: निम्नवर्ग के लोगों को ही हँसा सके है किन्तु बौद्धिक हास्य का सृजन वह बिल्कुल नही कर पाए। इनमें अतिहसित एव अपहसित हास्य की मात्रा ही अधिक है और स्मित का प्रयोग नाम मात्र के लिए है। इनके प्रहसन प्राय: अश्लील मिलते हैं। अत: अश्लीलता के दोषो से भी यह मुक्त नही हो पाए। शुक्ल जी कथन है कि वे (इनके प्रहसन) परिष्कृत रुचि के लोगों को हँसाने में समर्थ नही।[1]

बेचन शर्मा उग्र :—

'उजबक'—इस प्रहसन का मुख्य लक्ष्य साहित्यिक रूढ़ियो पर व्यंग्य करना है। व्रजभाषा एवं छायावादी दोनो कवि पद्य में बात करते है और दोनो का झगड़ा इस तथ्य पर होता है कि कौन श्रेष्ठ है। दोनो 'उजबक' के पास जाकर अपना फैसला कराते है।

'चार बेचारे'—इसमें चार प्रहसन है। बेचारा अध्यापक, बेचारा सम्पादक, बेचारा प्रचारक, बेचारा सुधारक। इन प्रहसनों मे प्रकाशको पर ही व्यग्य कसा गया है जो कि भोले भाले लेखकों को सम्पादक बनाने का प्रलोभन देकर फांसते हैं। इसमें आलम्बन प्रचारक को बनाया गया है। प्रचारक जी अपनी शक्ति का परिचय देते है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित पंक्तियाँ देखिए :—

शि० सु० : (अखबार समेटते हुए) क्रान्ति अवश्य होगी। होगी न, आपकी क्या राय है ?

दान्त० : *होगी तो जरूर।*

शि० सु० : उस भावी क्रान्ति में तो मैं स्वदेश की ओर से लड़ूंगा। जिस तरह से जरूरत होगी उस तरह से लड़ूंगा।

दान्ता : आप वीर हैं पार्थ की तरह

शि० सु० : मगर उस अनोखे युग में आप क्या करेंगे दंतनिपोर जी।

दान्त० : मैं ? मैं तो प्रोपेगण्डिस्ट हूँ मै योद्धा तो हूँ। नही ही...ही...ही...ही। यह देखिए (थैला दिखाते हैं) यही मेरा शस्त्रागार और यह देखिए (परचे निकालना है) यही मेरे हथियार हैं। मैं ऐसे वैसे परचो को आप में उनमें बांटूगा। यही मेरा कार्य होगा।'[2]

× × ×

१—हिन्दी साहित्य का इतिहास—संस्करण—सं० २००२—पृ० ४८१ रामचन्द्र शुक्ल
२—*मतवाला—(कलकत्ता) मार्च*, १९२९, पृ० ३

टका० : आप भी मेरी मदद कीजिए। अप्रिय, किस तरह ?

टका० : सत्यशोधक का सम्पादन कर या मेरे प्रकाशन के लिए पुस्तकें लिखकर ?

अप्रिय० : आप लिखाई क्या देते है ?

टका० : बहुत कुछ देता हूँ हिन्दी की सभी पुस्तका से अधिक देता हूँ।

अप्रिय० : जैसे ?

टका० : जैसे लेखक को लिखने के वक्त उत्साह देता हूँ। लिख जाने पर उनकी कमजोरियाँ सुधार देता हूँ, सुधर जाने पर प्रेस मे देता हूँ। छाप देता हूँ। बेच देता हूँ आप ही बतावें इससे ज्यादा कोई दे सकता है ?

हास्य कला एवं नाट्य विधान की दृष्टि से इनके नाटको की भाषा प्रवाहमयी है और चरित्र चित्रण बहुत ही सुन्दर ढग से हुआ है। पात्रों के द्वारा हास्योत्पादन स्वाभाविक रूप से हुआ है।

इन नाटककारो के अतिरिक्त कुछ ऐसे नाटककार भी इस युग में हुए है, जिनके नाटकों में अन्य रसो के साथ हास्य रस का प्रयोग भी सुन्दर ढंग से हुआ है। इनमे से मिश्र बन्धु एव प्रसाद जी प्रसिद्ध है। मिश्र जी के नाटको में जिस शुद्ध हास्य का विधान हुआ है, वह अत्यन्त दुर्लभ है। मिश्र बन्धु जी ने व्यग्य का प्रयोग कठोर नीति से नही किया है।

प्रसाद जी ने जो कि उत्कृष्ट कोटि के नाटककार है अपने नाटको मे हास्य के विभिन्न प्रकारो का सुन्दर चित्रण किया है। इनका हास्य एवं व्यंग्य शिष्ट तथा मार्मिक है। विदूषक का जितना सफल प्रयोग इन्होने अपने नाटको मे किया है, उतना किसी अन्य नाटककार ने नही किया। विशाख का महापिंगल, अजातशत्रु का बसन्तक तथा स्कन्दगुप्त का मुदगल विदूषक ससार के सरताज है। भारतेन्दु काल के विदूषक केवल पेटूपन का आधार लेकर ही हास्य का सृजन करते थे।

प्रसाद जी का व्यग्य अत्यन्त मार्मिक है। इनके व्यंग्य में हमे कही भी अश्लीलता नही दिखाई पड़ती है। इन्होने प्रेम द्वारा ताडने के सिद्धान्त को महत्व दिया है। 'वसन्तक और जीवक' का वार्तालाप देखिए—

वसन्तक—महाराज ने एक दरिद्र कन्या से विवाह कर लिया।

जीवक—तुम्हारे ऐसे चाटुकार और चाट लगा देंगे, दो चार और जुटा देंगे।

वसन्तक—श्वसुर ने दो ब्याह किए तो दामाद के तीन, कुछ उन्नति ही हो रही है।'[1]

इनके अतिरिक्त द्विवेदीयुग में अनेक प्रहसन लिखे गए, जिनमें सुदर्शन जी का 'ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट' अधिक प्रसिद्ध है। पं० रूपनारायण पाण्डे लिखित 'प्रायश्चित'

१—विशाख—'प्रमाद'—पृ० ६४

प्रहसन में देशी होकर भी विदेशी चाल चलने वालों का चित्रण किया है। अध्यापक रामदास गौड़ का 'ईश्वरीय न्याय' एक व्यंग्यपूर्ण नाटक है। वीर अभिमन्यु में राजा बहादुर तथा हश्र के 'लिअर किंग' में 'जटिक और वेताव के महाभारत में व्यंग्य और हास्य की मात्रा मूल कथावस्तु के साथ ही साथ पात्रों के सवादों में प्राप्त होती है। पारसी कम्पनियों द्वारा जो हास्य प्रधान नाटक प्रदर्शित किए जाते थे। वे भद्दे तथा अश्लील होते थे। पति पत्नी के झगड़े तथा कमर पकड़ के नचाना आदि दिखाए जाते थे। तत्पश्चात् यह सब कथावस्तु के साथ ही प्रयुक्त होने लगे। विशेष रूप से हास्योत्पादन संवादों द्वारा किया जाता था।

आधुनिक काल तथा प्रहसनकार :—आधुनिक युग प्रहसन के कलात्मक तथा चारित्रिक विकास के लिए प्रसिद्ध है। इस युग में पाश्चात्य साहित्य का गहन प्रभाव पड़ा। इसी कारण पाश्चात्य साहित्य से प्रभावित अनेक प्रहसन लिखे गए हैं। आधुनिक युग के प्रहसनकारों ने, स्वार्थी नेता, सिनेमा के अनन्य भक्त, शिक्षित बेकार, पुरुष के स्थान, अधिकार चाहने वाली प्रगतिशील नारी को आलम्बन बनाया। स्मित हास्य का प्रयोग तो कम हुआ, परन्तु चरित्र चित्रण को अधिक महत्व दिया गया तथा नई शैली को अपनाया गया। पाश्चात्य कामेडी के सिद्धान्तों पर प्रहसनों की रचना आरम्भ हो गई और सामाजिक बुराइयाँ जो कि युग के प्रभाव से उत्पन्न हो गई थीं व्यंग्य का शिकार बनाने लगी। इसके साथ ही साथ साहित्यिक कुरीतियों पर व्यग्य करने की परम्परा बनी रही।

हरिशंकर शर्मा :—

विरादरी विभ्राट :—यह एक प्रसिद्ध प्रहसन है इसमें एक अंक है तथा तीन दृश्य हैं। इस प्रहसन में हिन्दू समाज पर तीखा व्यग्य किया गया है।

पाखण्ड प्रदर्शन :—यह चार दृश्यों का प्रहसन है। इसका मुख्य ध्येय हिन्दू समाज की सकुचित हृदयता एवं आपसी मनमुटाव है। इनके प्रमुख पात्र सितार सिंह, लाला मजारी लाल, डमरूदत्त आदि हैं।

स्वर्ग की सीधी सड़क :—हरिशंकर जी का यह प्रहसन अन्य प्रहसनों में से सर्वश्रेष्ठ है। इस प्रहसन के अन्तर्गत समाज का सजीव चित्रण किया गया है। हिन्दी प्रचारकों का भी अंग्रेजी पढ़ने तथा बोलने में गर्व का अनुभव होना आदि प्रवृत्तियों पर व्यंग्य किया गया है। इसमें वाद-विवाद के आधार पर विचित्रानन्द के द्वारा विकृतियों पर व्यंग्य करवाया गया है।

बुढ़ऊ का विवाह :—इसमें सात दृश्य है और इसकी कथावस्तु में कोई नवीनता नही दिखलाई पड़ती है। इसमें वृद्ध विवाह और दहेज प्रथा आदि पर व्यंग्यात्मक आलो-

चना की गयी है।

नाट्यकला तथा हास्यविधान :—हरिशंकर जी के प्रहसनों में हमें उच्चकोटि की कला स्पष्ट झलकती है और कथोपकथन सजीव है। स्वर्ग और नरक नामक प्रहसन में मध्य तथा अन्त में तीव्रता दिखलाई पड़ती है। हास्योत्पादन अधिकतर गवारू बोलियों द्वारा कराया है। कथावस्तु का भी सफल तथा सुन्दर प्रयोग हुआ है। पात्रों के नाम भी कुछ अच्छे अटपटे से ही है। प्रश्नोत्तर रूप में वाक्छल का अच्छा प्रयोग हुआ है।

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' :— *१*—पर्दा उठाओ, पर्दा गिराओ, यह अश्क जी के सात प्रहसनों का सग्रह है। जिसके नाम यह है—१—पर्दा उठाओ, पर्दा गिराओ २—कइसा साहब कइसी आया ३—बतसिया ४—सयाना मालिक ५—तौलिये ६—कस्बे के क्रिकेट क्लब का उद्‌घाटन ७—मस्केबाजों का स्वर्ग।

पर्दा उठाओ, पर्दा गिराओ :—प्रहसन में अव्यावसायिक नाटक करने वालो की परेशानियों का चित्रण किया है। सदस्यों का फ्री पासों के प्राप्त करने की मनोवृत्तियों पर व्यंग्यात्मक आलोचना की गयी है। उदाहरण के लिए 'पर्दा उठाओ, पर्दा गिराओ' की निम्नलिखित पंक्तियाँ देखिए :—

मानसिंह—चोबदार—चोबदार!

किशुन—[राजा मानसिंह की तरह अकड़ कर प्रवेश करता है और इसी अदा में भूल जाता है कि उसे 'जी महाराज' कहना है] जो आदेश [निकट आकर] जो आदेश!

मानसिंह—[किशुन की हरकत पर भ्रू-भंग करके] बता मालती कहाँ है?

किशुन—[उस घबराहट में कि उससे कुछ गलती हो गयी है, सम्वाद भूल जाता है] जो आदेश।

मानसिंह—[क्रोध से] हम कहते हैं कि बता मालती कहाँ है?

किशुन—[जिसे अपनी गलती का पता चल जाता है कि उसने 'जी महाराज' के स्थान पर 'जो आदेश' कहा है, अपनी गलती सुधार लेता है] जी महाराज! जी महाराज!

[विंग पीछे हटता है]

प्राम्पटर—[पुस्तक हाथ में लिए सकेत करता है] मालती को महारानी ने भू-गृह में बन्द करने का आदेश दिया है।

किशुन—[देखता है कि प्राम्पटर कुछ कह रहा है, पर घबराहट में कुछ समझता नहीं] जी महाराज!

[विंग में दयाराम, भगवन्त और अन्य अभिनेता परेशानी में इकट्ठे हो रहे हैं]

मानसिंह—[रगमच पर] गदहे हम पूछते है कि मालती कहाँ है ? जी महाराज, जी महाराज रटे जा रहा है उल्लू कही का, बता मालती कहाँ है ?।

किशुन—[क्रोध से अकड जाता है] देखो ! जबान सम्हारि के बातचीत करो बडे महाराज बने फिरते हैं। देई का एक रुपया और सान इतनी गाठित है। जाओ नहीं बताइत। हम कहिति है गारी दैहै तो मालूम होय पै भी न बताउब और उठाकर नीचे फेंक देब।

[दर्शको के ठहाके गूँजने लगते हैं]

दयाराम—[घबराहट में] पर्दा गिराओ ! पर्दा उठाओ ! ।।'

कइसा साहब कइसी आया :—

इस प्रहसन में बम्बइया हिन्दी के साथ मध्यवर्गीय लोगो की कामुक प्रवृत्तियो एव आयाओ के साथ दुराचार का खाका खीचा गया है।

सयाना मालिक —

—इसमें आलम्बन एक ऐसे सयाने मालिक को बनाया जाता है जो नौकर रखने से पूर्व बहुत छानबीन करता है, अत' उसका विश्वसनीय नौकर उसकी चोरी करके भाग जाता है, और उसके पडोसी उसके सयाने पर व्यग्य करते है।

तौलिए —

इस प्रहसन में फैशन पर व्यग्य किया गया है, पाश्चात्य एव प्राचीन सस्कृतियो का संघर्ष है।

मस्केबाजो का स्वर्ग —

इसमें फिल्मी दुनिया की एक झलक दिखलाई गई है। इसमें फिल्मी-जीवन पर एक तीखा व्यग्य है। यह प्रहसन भी बम्बईया हिन्दी में लिखा गया है।

उदाहरणार्थ —

सापले—आर्ट फार्ट को कौन पूछता हैं यहाँ चलता है मस्का, पालिस और चलता है रिस्ता-नाता। नया चास आयेगा तो अपने साथ नया टीम लायेगा। हमारा डिजाइन ले जाकर अपनी बीवी को दिखायेगा और पूछेगा, बोलो कैसा बनेला

१—पर्दा गिराओ, पर्दा उठाओ'—'अश्क' पृ० २०९

है ? उनको पसन्द आया तो पास, नहीं तो उठा सापले अपना बोरिया बिस्तर[1] ।'

नाट्यकला एवं हास्य विधान की दृष्टि से प्रत्येक में नई सूझ है। नाटकों के पात्र सजीव है। परिस्थिति प्रधान तथा चरित्र प्रधान दोनों प्रकार के प्रहसनों में सफल प्रयास किया गया है। यथार्थ एवं स्वाभाविक चित्रण हुआ है। प्रहसन सूक्ष्म संयत एवं मार्मिक हैं, जगदीश माथुर इस पुस्तक की भूमिका में लिखते हैं—'उनके पात्र कार्टून नहीं, उनके मजाक स्थूल नहीं, उनकी परिस्थितियाँ सरकस की कलाबाजियाँ नहीं हैं, उनकी पैनी दृष्टि ने दैनिक जीवन में ही अहसास की सामग्री खोज निकाली है। दूसरे शब्दों में 'अश्क' जी की विनोद भावना वार्तालाप के विद्रूप या पात्रों के भोंडे व्यवहार के रूप में प्रकट नहीं होती, बल्कि चरित्र और कार्य सम्पादन की पृष्ठभूमि के रूप में[2] ।'

वास्तव में इनके प्रहसन पाश्चात्य ढंग से लिखे गए हैं और उनकी कला बहुत विकसित हुई है। अतः प्रत्येक प्रहसन के आरम्भ में वातावरण का सुन्दर चित्रण हुआ है।

ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल'—

हजामत :—हजामत प्रहसन के अन्तर्गत आठ प्रहसनों का संग्रह है। १—हजामत, २—समालोचना का मर्ज ३—व्याख्यान वाचस्पति ४—घर बाहर ५—राबर्ट नेथेलियल ओझा ६—पति-पत्नी ७—विवाह की उम्मेदवारी ८—आनरेरी मजिस्ट्रेट—आदि।

हजामत प्रहसन में मुन्शी हुरमत राय का स्पष्टतया वर्णन किया गया है। हुरमत राय जी को सदा ही सनक सवार रहती है। व्यंग्य का भी सुन्दर प्रयोग हुआ है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित पंक्तियाँ देखिए—

बमक—(*नाराज होकर*) तो क्या मैं चोर हूँ जानती नहीं मैं कौन हूँ ? मैं तेरी आलोचना कर दूंगा समझा ?

उजियारी—आलू, चना तो मेरे पास है सरकार, आपके कहने की जरूरत नहीं है। हाँ छः पैसे की तरकारी आपने ली है।

बमक—(*बिगड़ कर*) अरे आलोचना ! आलोचना !! आलोचना !! कुछ पढ़ा लिखा भी है या नहीं है ? चार पैसे की मैंने तरकारी ली, कहती है छः पैसा। अगर छः पैसे की लेती थी तो चार पैसे घर से लेकर चलता ही क्यों ? क्या मैं बेवकूफ हूँ ?'[3]

१—पर्दा उठाओ, पर्दा गिराओ—'मस्केबाजों का स्वर्ग'—उपेन्द्रनाथ 'अश्क' पृ० २०९

२— वही वही पृ० ८

३—हजामत, पृ० ४१

समालोचना का मर्ज—

इसमें बमक विहारी को ही आलम्बन बनाया है। इसका स्वाभाव सनकीपन का है जो अपनी सनक में ही मस्त रहता है तथा अपनी सनक द्वारा ही हास्योत्पादन करता है।

व्याख्यान वाचस्पति—

इसमें विद्यार्थियों द्वारा व्याख्यानदाता की खिल्ली उड़ाई गई है, हास्योत्पादन का प्रयोग सुन्दर ढंग से हुआ है।

घर बाहर—

घर बाहर प्रहसन में समाज सुधारक पति एवं अशिक्षित पत्नी के कलह पर व्यंग्य किया गया है।

राबर्ट नैथेलियल—

इसमें एक मूर्ख पोंगा विद्यार्थी का वर्णन किया है, जिसकी बुद्धि बिल्कुल काम ही नही करती है, उसकी हँसी उड़ायी गयी है।

पति-पत्नी—

पति-पत्नी में मियां-बीबी के आपसी झगड़ों का स्पष्ट वर्णन किया गया है। दोनों एक दूसरे पर व्यंग्य की बौछार करते हैं।

विवाह की उम्मेदवारी—

इसमें लड़के की बातों की चालबाजियों पर तथा सौदेबाजी पर व्यंग्य किया गया है।

आनरेरी मजिस्ट्रेट—

आनरेरी मजिस्ट्रेट बनने वालों की खिल्ली उड़ाई गई है।

हास्य विधान एवं नाट्यकला के दृष्टिकोण से इनके प्रहसनों में हमें प्रहसन-युक्त कोई गुण तथा लक्षण प्रदर्शित नही होते हैं। इनके प्रहसनों में नाटकीयता का अधिक तथा अतिरंजित वर्णन हुआ है। जी० पी० श्रीवास्तव की भांति निर्मल जी का हास्य भी फूहड़ तथा घोल धप्पे का हास्य है। सरकस की भांति कलाबाजियां उनके प्रहसनों में दिखाई देती हैं। चरित्र-चित्रण का तो कहीं नाम ही नहीं है। लम्बे-लम्बे प्रस्तावों या

प्रयोग किया है। वार्तालाप भी उचित ढंग से नहीं हुआ है। नाट्य कला एवं हास्य बिधान की दृष्टि से इनके प्रहसन निष्कृष्ट कोटि के अन्तर्गत आते हैं।

रामसरन शर्मा—

सफर की साथिन—यह नौ प्रहसनों का संग्रह है। १—सफर की साथिन २—बन्द दरवाजा ३—बेचारी चुड़ैल ४—वकालत ५—पत्रकारिता ६—बीमारी ७—मिल की सीटी ८—भूतों की दुनिया ९—आवारा आदि। इन सब प्रहसनों की कथावस्तु साधारण-सी है अर्थात् नही के बराबर है। वकालत प्रहसन कुछ उचित है, किन्तु कला की दृष्टि से वह भी नाटक सुन्दर नहीं है।

डा०-रामकुमार वर्मा—

वर्मा जी ने प्राय: सामाजिक तथा ऐतिहासिक कथावस्तु के आधार पर ही एकाकी नाटकों की रचना की है। 'रिमझिम' सोलह एकांकियों का संग्रह, जो कि अभी हाल में ही प्रकाशित हुआ है, हास्य रस प्रधान एकांकी है। इनका एक प्रहसन और भी प्रकाशित हुआ है जिसका नाम 'घर का मकान' है। 'रिमझिम' एकाकी संग्रह में से 'पृथ्वी का स्वर्ग' नामक एकाकी का एक उदाहरण देखिए—

[बोझावाला, ऊंह करते हुए गहरी सांस लेकर सन्दूक उतारता है]

बोझावाला—हाय राम ! मूड़ो टूट गवा रहा।

दुलीचन्द—दवा के पैसे भी ले ले मुझसे। समझा न ?

अचल—बहुत भारी है क्या ?

बोझा वाला—जानै एहिमा ईंट पाथर भरा बा।

दुलीचन्द—अबे चार तमाचे मारूंगा खींच के। सिर फिर जायगा। मैं इसमें ईंट पत्थर भरूंगा? गधे कहीं के। पुराने कपड़े हैं। कीड़ों से बचाने के लिए इसी सन्दूक में डाल दिये। तू कपड़ों को ईंट पत्थर कहता है ?

बोझावाला—सोना-चांदी होय, हजूर ! यहि मां हमका का एहिसे क्या ? हमका त हमारा मजूरी चाही।

दुलीचन्द—तो मजदूरी मांग, सोना-चांदी या पत्थर की बात क्या करता है ? पत्थर होगा तेरे दिमाग में।

अचल—चाचाजी, इसे मजदूरी दे दीजिए।

दुलीचन्द—तुम कहते हो अचल। तो मै दे देता हूँ। समझा न ? नहीं तो उसकी जबान दराजी पर एक पैसा न देता। ले यह चवन्नी।

बोझावाला—[चवन्नी लेकर आंखें फाड़कर] चवन्नी ! ई का है हजूर, पहिले तो कहिन

कै उठाय लै चलो। तुम्हारा मेहनत समझ लेंयगे। अब हजूर चवन्नी दिखावत हैं। धइ ले आपन पास ई चवन्नी।

दुलीचन्द—जरा तमीज से बात कर, समझा न ? इस कदर मार मारूंगा समझा न।

बोझा वाला—काहे मार मारेंगे ? कौनो जुरम किहिन हैं का ? अबे-तबे किहे जात है। हम तो भला मनई समझ के हजूर-हजूर कहत है, मुदा इ ..

केशव—ए, बहस मत करो। ये बहुत बड़े आदमी हैं, जानता नहीं। सेठ दुलीचन्द का नाम नहीं सुना क्या ? तेरे ऐसे हजार नौकर है इनके पास।'[1]

हास्य विधान तथा नाट्यकला की दृष्टि से इनके प्रहसन सर्वश्रेष्ठ है। विशुद्ध हास्य का प्रयोग जैसा उनके नाटका में मिलता है वैसा अन्य नाटककारो की रचना मे प्रदर्शित नही होता है। वस्तु विन्यास भी सुन्दर है। कथोपकथन में भी रोचकता है। स्मित हास्य का प्रयोग अत्यन्त ही कठिन है जिसे कि वर्मा जी ने अपने नाटकों मे पूर्ण किया है। कठोरता तो कही नही दिखलाई पडती।

देवराज दिनेश—

दिनेश जी ने कई सुन्दर प्रहसनों की रचना की है।

चटुए—यह चरित्र प्रधान प्रहसन है। इसका प्रमुख पात्र नरेश है जा कि अपने मित्रो के साथ होटल पर जाता है। सब मिलकर खाना खाते हैं जब खा चुकते हैं तो नरेश अपनी जेब में हाथ डालता है तो देखता है कि बटुआ खा जाता है। तब सब मित्र मिल कर उसका बदला लेते हैं उसी का डाँट डपट कर बिल चुकाते हैं। यही प्रमुख घटना इस प्रहसन की है। उदाहरणार्थ—

नरेश—क्या कहते है सवेरा की जितनी प्रशसा की जाए कम है। सभी कलाकारा ने अपने कार्य को खूब निभाया है और आपके अभिनय का तो कहना ही क्या है ?

दीपक—(चौंकता है) जी मेरा अभिनय ! मैं तो उसमे अभिनय नही कर रहा था। मेरा तो वह लिखा हुआ है। हां, वैसे निर्देशक उसका मैं ही था।

नरेश—(बात बदलता है) कमाल है मुझे एक साहब पर आपका हो भ्रम था।

दीपक—क्या बात कर रहे हैं आप ? उसमें तो कोई पुरुष पात्र था ही नही। बस केवल तीन लड़कियों ने ही अभिनय किया है[2]।

१—'रिमझिम'—डा० रामकुमार वर्मा—पृ० ३१-३३

२—साप्ताहिक हिन्दुस्तान—पृ० ८, २० जून, १९६२

पास-पड़ोस :—

पास पडोस इनका दूसरा प्रहसन है। इस प्रहसन के अन्तर्गत अशिक्षित नारियो का लडाई-झगडा और पडोसियो की परेशानियो का हास्यमय वर्णन किया है। जैसे एक उदाहरण प्रस्तुत है—

पहलीऔरत —आँखें फूटें तेरी, तेरे घरवालो की सतखसमी। जब देखो तब झाँकती रहती है, देखती कैसे है आँखें फाड कर, जैसे खा ही जाएगी।

दूसरी औरत—झुलस दूँगी तेरा मुँह, जो ज्यादा बातें की तो। आ लेने दे तनिक शाम को मेरे कालूराम को।

पहली—मरा तेरा कालूराम। मार मार जूते से सिर न गंजा कर दूँ तो कहना। उसको भी औरतो की लड़ाई में बोलने का बहुत शौक है, जनाना कहीं का[1]।

नाट्य कला एव हास्य विधान की दृष्टि से इनके प्रहसनो में प्रत्येक वस्तु का वर्णन सुन्दर ढग से हुआ है। कथोपकथन भी स्वाभाविक है। हास्योत्पादन भी पात्रो द्वारा अच्छा हुआ है। प्रहसनो में चरित्र-चित्रण भी सुन्दरता से हुआ है। नाटक की कथावस्तु का विकास भी उचित रूप से हुआ है।

उपसंहार :—

भारतेन्दु युग से ही प्रहसनो का आरम्भ हुआ। इनके समय मे ही अनेक प्रहसनो की रचना हुई। किन्तु कलात्मक विकास तथा नाटकीय तत्वो का अभाव रहा। द्विवेदी युग में तो और भी गम्भीरता छाई रही। इस युग मे मौलिक तथा अनूदित नाटको की ही रचना हुई, परन्तु अल्पमात्रा मे प्रहसनो की रचना अवश्य हुई, फिर भी उसमे कला सौन्दर्य का विकास उचित रूप से न हो सका। द्विवेदी युग के पश्चात् अर्थात् आधुनिक काल में आकर मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से चरित्र-चित्रण तथा बौद्धिक हास्य का विकास हुआ एव भाषा मे परिष्कार भी इस युग में हुआ। यह काल कलात्मक तथा नाटकीय तत्वो के लिये विशेष रूप से प्रसिद्ध है।

□

१—पास पडोस—साप्ताहिक हिन्दुस्तान, पृ० १०, ३० अक्टूबर, १९५५

षष्ठ अध्याय :

हिन्दी नाट्य-साहित्य में सुधार की आवश्यकता

(१) राजनीतिक ह्रास और राष्ट्रीय प्रेम की ओर संकेत

तथा

हास्य के माध्यम द्वारा सुधार

(२) हास्य के माध्यम द्वारा सामाजिक सुधार

(३) हास्य के माध्यम द्वारा धार्मिक सुधार

(४) चारित्रिक दुर्बलताओं के प्रदर्शन तथा उनमें हास्य के माध्यम द्वारा सुधार

राजनीतिक ह्रास और राष्ट्रीय प्रेम की ओर संकेत तथा हास्य के माध्यम द्वारा सुधार

भारतेन्दु काल के पूर्व से ही सास्कृतिक जागरण की लहर देश मे उत्पन्न हुई। अग्रेजो की धूर्ततापूर्ण नीति से मुस्लिम, हिन्दू सस्कृति की पृथक धाराओ में इस लहर का विकास हुआ। सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक सुधारवादियो ने राष्ट्रीयता की भावना का बीजारोपण कर दिया था। राजनीतिक पतन, देशव्यापी उत्थान एव जागृति का सदेश देने वालो में बाल गगाधर तिलक, गोपाल कृष्ण गोखले, महादेव गोविन्द रानाडे, जी० वी० जोशी, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी आदि प्रमुख नेता थे। शैक्षिक, धार्मिक सामाजिक सुधार के पश्चात् भारतीय नेता राजनीतिक क्षेत्र मे पदार्पण कर रहे थे और दूसरी ओर देश में राष्ट्रीयता के भाव जागृत हो रहे थे। यद्यपि देश मे कोई सामूहिक सगठन नही बन पाया था, फिर भी देशवासी उक्त भावना को एक सूत्र मे बाँधने के लिए प्रयत्न कर रहे थे। सर्वप्रथम इण्डियन एसोसिएशन की सरक्षता मे राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ, जिसका प्रमुख ध्येय देश मे बढते हुए राजनीतिक पतन का निराकरण था। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के देशाटन से यह स्पष्ट रूप से ज्ञात हुआ कि सम्पूर्ण देश मे राष्ट्रीयता की एक नवीन लहर तथा शक्ति विद्यमान है। द्वितीय राष्ट्रीय सम्मेलन के पूर्व ही दिसम्बर सन् १८८५ ई० में अखिल भारतीय काग्रेस की स्थापना हुई, जिसका श्रेय देश की अनेक राजनीतिक सस्थाओ को था।

सामाजिक उत्थान और राजनीतिक चेतना मे नेता सुधार कर ही रहे थे कि अपने युगान्तरकारी व्यक्तित्व मे साहित्य सृजना रूपी साधना लिए हुए युग प्रवर्तक भारतेन्दु जी का आविर्भाव हुआ। भारतेन्दु जी ने अपने आस-पास सामाजिक एव राजनीतिक वातावरण का खुली आँखो से देखा और उसमें सुधार किया। राष्ट्रीय चेतना में सहयोग देने वाले साहित्य की अत्यन्त आवश्यकता थी, इसकी ओर भी इन्होने विशेष रूप से ध्यान दिया और अपने जीवन को राष्ट्रीयता के साथ आत्मसात किया। भारतेन्दु जी का समय राष्ट्रीय जागरण का समय था। विशेष रूप से भारतीय लेखको का ध्यान

अपने देश की सस्कृति के प्रति गौरव की भावना प्रेरित करने की ओर आकर्षित हुआ। सर्वप्रथम भारतेन्दु जी ने अपनी रचनाओं द्वारा नाट्य साहित्य में राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति का सूत्रपात किया।

भारतेन्दु जी ने 'भारत दुर्दशा' नाटक म देश की राजनीतिक स्थिति का दैन्य चित्रण किया है। इनकी इस कृति मे देश प्रेम खूब छलका है। राष्ट्र प्रेमी कलाकारो ने अपनी कृति द्वारा सम्पूर्ण देश में राष्ट्रीयता की अलख जगाई है। इसके अतिरिक्त 'भारत जननी' और 'नील देवी' नाटक मे भी देश प्रेम की ओर सकेत किया है। 'नील देवी' में देश की स्वतन्त्रता के लिए प्राणा पे खेल जाने वाली नारी का सुन्दर चित्रण है। भारत की एकता का ओजपूर्ण वर्णन अधिकतर इनके नाटकों में प्राप्त होता है और इन्होंने अतीत गौरव की यथार्थपूर्ण झाँकी का चित्र अपने नाटको मे प्रस्तुत किया है। राजनीति में सक्रिय होने की दृष्टि से ही भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने सस्कृत के अन्य महान नाटको को छोड़कर मुद्राराक्षस का ही अनुवाद किया। 'मुद्राराक्षस' में राजनीति दाव पेंच के साथ ही स्वामी-भक्ति और देश-भक्ति का आदर्श भी विद्यमान है। 'भारत जननी' एव 'भारत दुर्दशा' नाटक देशप्रेम की भावना से ओत प्रोत है। 'भारत जननी' के सूत्रधार के शब्द देखिए 'भारत भूमि और भारत सतान की दुर्दशा दिखाना ही इस भारत जननी की इति कर्तव्यता है और आज जो यह आर्यवश का समाज यह खेल खेलने को प्रस्तुत है उसमे से एक मनुष्य भी यदि इस भारत भूमि को सुधारने मे एक दिन भी यत्न करे, तो हमारा परिश्रम सफल है।'[1]

उपर्युक्त पक्तियो से यह ज्ञात होता है कि देश के लिए इनके हृदय में सदैव मूल प्रेरणा रही है। इसी राष्ट्रीय जागरण की प्रेरणा से प्रेरित होकर इनके समकालीन नाटककारो ने अपनी कृतियो द्वारा हिन्दी साहित्य मे राष्ट्रीय नाट्य साहित्य को पोषित किया है जैसे शरत कुमार मुखर्जी का 'भारतोद्धार', श्री खड्गबहादुर मल्ल का 'भारत आरत', [र० काल १८८५ ई०] पडित बद्रीनारायण 'प्रेमघन' कृत भारत सौभाग्य [१८८८ ई०] अम्बिका दत्त व्यास कृत 'भरत सौभाग्य' [र० का १८८७ ई०] श्री जगतनारायण कृत 'भारत दुर्दिन' [१८९५ ई०] श्री गोपाल राम गहमरी का 'देश दशा' [र० का०—१८९२ ई०] देवकीनन्दन त्रिपाठी का 'भारत हरण' [१८९९ ई०] [र० का० १९०२] आदि नाटक राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत है। मिलिन्द जी का 'प्रताप प्रतिज्ञा' नाटक बड़ा ही सजीव राष्ट्रीय नाटक है। इसमें देश प्रेम की भावना मन को स्पर्श ही नही करती, वरन् इसमे एक आलोडन भी उत्पन्न करती है।

भारतेन्दु युग में नाटको के अनुवाद भी किए गए। अनुवाद प्रस्तुत करने में

---

१. हिन्दी नाटक के सिद्धान्त और नाटककार—प्रो० रामचरण महेन्द्र पृ० १४

नाटककारों का राष्ट्रीय दृष्टिकोण रहा है। देश प्रेम एवं राष्ट्रीय जागरण की उन्नतिशील दृष्टि को देखकर प्रसाद जी ने कई एक नाटक लिखे। प्रसाद-काल तक देश का राष्ट्रीय आन्दोलन स्पष्ट एवं निश्चित रूप ग्रहण कर चुका था तथा राष्ट्रीय जागरण की राजनैतिक समस्याओं का रूप भी स्पष्ट हो गया था। प्रसाद के नाटकों में राष्ट्रीय प्रेम की ओर संकेत और देश के प्रति बलिदान की भावना स्पष्ट रूप से झलकती है। लेखक ने चन्द्रगुप्त, सिंहरण, चाणक्य तथा अलका के नेतृत्व में समूचे देश की एकता का जो सजीव चित्र उपस्थित किया है वह गान्धी जी के देशव्यापी राष्ट्रीय जागरण की तस्वीर हमारे समक्ष उपस्थित कर देता है।

प्रसाद जी का 'चन्द्रगुप्त' नाटक प्रथम राष्ट्रीय नाटक है। इस नाटक में नारी को प्रेरक शक्ति के रूप में चित्रित किया गया है। जीवन संग्राम में सफलता प्राप्त करने के लिए नारी के प्रेम और बलिदान दोनों की आवश्यकता है।

चाणक्य जैसा कठोर और कूटनीति का आचार्य भी स्वासिनी के प्रेम की निधि अपने अन्तरतम प्रदेश में छिपाये है। चन्द्रगुप्त एक ओर कार्नेलिया और दूसरी ओर कल्याणी तथा मालविका से घिरा है उधर अलका है जो 'हिमाद्रि तुंग शृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती' की ध्वनि गुँजाती, हताश देश को जीवित ज्वालामुखी बना देती है। वह अपने पिता को देशद्रोही से देशभक्त बना देती है।[1] यह नाटक आरम्भ से लेकर अन्त तक वीरत्व की भूमि से डिगा नहीं है। इसमें देश भक्ति की भावना की ओर भी संकेत किया है। 'स्कन्दगुप्त में हूणों के विरुद्ध राष्ट्रीय एकता का चित्रण अंग्रेजों के विरुद्ध राष्ट्रीय एकता की सटीक व्यंजना प्राप्त कर लेता है।[2] इस नाटक में देवसेना, पर्णदत्त बन्धुवर्मा, स्कन्दगुप्त ने देश की स्वतन्त्रता के लिए कष्ट सहन, त्याग, देश सेवा, बलिदान आदि के आदर्श उपस्थित किए हैं।

राष्ट्रीयता के अभ्युत्थान में निस्वार्थ त्याग का आदर्श निहित है। स्कन्दगुप्त कहता है 'मेरा स्वत्व न हो मुझे अधिकार की आवश्यकता नहीं यह नीति और सदाचारों का आश्रय वृक्ष गुप्त साम्राज्य हरा भरा रहे और कोई भी इसका उपयुक्त रक्षक हो।[3] प्रसाद जी ने अपने नाटकों में राष्ट्रीय प्रेम की ओर संकेत करने के साथ ही साथ मानव प्रेम, त्याग, क्षमा देश, सेवा-शौर्य, करुणा, विश्व प्रेम आदि की ओर भी संकेत किया है। इस प्रवृत्ति के पात्र उनके नाटकों में यत्र-तत्र मिलते हैं। जैसे अलका, ध्रुवस्वामिनी, चाणक्य, स्कन्दगुप्त दाण्डायन, गौतम आदि। प्रसाद ने भारतीय संस्कृति को महत्त्व

१—हिन्दी नाटक के सिद्धान्त और नाटककार—प्रो० रामचरण महेन्द्र—पृ० १८६

२—हिन्दी नाटक सिद्धान्त और समीक्षा—रामगोपाल चौहान—पृ० १३६.

३—स्कन्दगुप्त—प्रसाद पृ० ५४.

देकर युगों की संकटकालीन परिस्थितियों देश जीवन मे नवीन भावना का संचार कर समस्त देश के स्तर को ऊँचा उठाया।

हरिकृष्ण प्रेमी ने 'स्वप्नभंग' नाटक की भूमिका में राष्ट्रीय दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए लिखा है, 'मैंने अपने नाटकों द्वारा राष्ट्रीय एकता का भाव पैदा करने का यत्न किया है। मेरे इन लघु यत्नों को राष्ट्रीय यज्ञ में क्या स्थान मिलेगा यह मैं नही जानता। यह नाटक भी इस राष्ट्र यज्ञ में डाली गई आहुति है[1]।' वस्तुतः प्रेमी जी के सभी नाटकों में यही राष्ट्रीय चेतना कार्य कर रही है। विशेष रूप से इन्होंने अपने नाटकों में उस कथावस्तु को चुना है जो कि हिन्दू मुस्लिम एकता तथा अन्य राष्ट्रीय समस्याओं में प्रेरिका बन सके। शिवा साधना, रक्षा बन्धन, स्वप्न भंग, शपथ आदि में यही राष्ट्रीय चेतना दृष्टिगत होती है।

व्यक्ति की महत्ता से बढ़कर देश की अत्यन्त महत्ता है। देश के लिए यदि अनेक व्यक्तियों को बलिदान करना पड़े तो हँसते हँसते अपने प्राणों को न्योछावर कर देना चाहिए। इस राष्ट्रीय प्रेम के पीछे न जाने कितने महान व्यक्तियों ने तथा महात्माओं ने और महिलाओं ने अपने जीवन को बलिदान कर दिया है। यही मूल भावना हमें प्रेमी जी के नाटकों मे यत्र तत्र देखने को मिलती है। रक्षा बन्धन की श्यामा चारणी कहती है 'तुम सच कहती हो देश सर्वोपरि है, सर्वश्रेष्ठ है, हमारे दुखों की सरिताएँ उसके कष्ट और संकट के महासमुद्र मे डूब जानी चाहिए[2]। रक्षाबन्धन नामक नाटक मे जवाहर बाई, कर्मवती, अर्जुन सिंह, बाग सिंह आदि पात्र देश के प्रति बलिदान होने की प्रेरणा देते हैं। हुमायूँ मुस्लिम एवं हिन्दू के बीच एकता के भाव को प्रकट करता है। यही कारण है हुमायूँ दोनों की मैत्री का प्रतीक है। माया तथा श्यामाचारिणी गाँव में जाकर एकता की लहर का विकास करती हुई सम्पूर्ण देश में राष्ट्रीय प्रेम की अलख जगाने की प्रेरणा देती है।

प्रेमी जी के अधिकांश नाटकों के पात्र सन् १९२०, १९२१ और १९३० के राष्ट्रीय आन्दोलन की भाँति गाँव-गाँव में जाकर राष्ट्रीय जागरण और स्वतन्त्रता के लिए धूम मचाते हैं। रक्षा बन्धन की नायिका श्यामाचारणी की भाँति उद्धार नाटक की दुर्गा और सुधीरा भी मेवाड़ के गाँव-गाँव में पहुँच कर राष्ट्रीय जागरण का मंत्र फूँकती है। प्रेमी जी के सभी पात्र मातृभूमि के लिए अपने जीवन को बलिदान करने की प्रेरणा से ओत-प्रोत है। उद्धार नाटक में राजपूत काल में राजपूत अपने राज्य की संकीर्ण परिस्थितियों में जकड़े हुए थे और झूठे वंशाभिमानों—जैसी संकुचित भावनाओं से ग्रस्त थे,

---

१—स्वप्न भंग—हरिकृष्ण प्रेमी—पृष्ठ ३।
२—रक्षा बन्धन—हरिकृष्ण प्रेमी, पृष्ठ १५-१६।

साधारण-सी बातो में वे अपना बल खो बैठते थे। 'उद्धार' ही एक ऐसा व्यक्ति था जो इन सब समुचित भावनाआ से पृथक रह कर एकता की भावना प्रदान करता है। 'उद्धार' मे नायक हमीर इस बात की चेतना का प्रतीक होकर कहता है, 'आपको अशाभिमान के अतिरेक ने पथ-भ्रष्ट कर दिया था किन्तु हमे जानना चाहिए, देश-जाति, वश और सभी सासारिक वस्तुओ से ऊँचा है। इसकी मान रक्षा के लिए हम सर्वस्व का बलिदान करना चाहिए'[1]। प्रेमी जी ने उस काल की परिस्थितिया एव घटनाओ को लेकर हिन्दू मुस्लिम में प्रेम, एकता, धार्मिक सहिष्णुता, सद्भावना, उच्चविचार और देश को अपना समझने की भावना तथा साम्प्रदायिक मेल-जोल के जो उच्च आदर्श नाटका मे प्रस्तुत किये हैं वे सब राष्ट्रीय चेतना के प्रतीक है। यही प्रमुख चेतना उनके सभी नाटको का प्राण है। इनके नाटको मे एक ओर देशद्रोही भारतीया के और दूसरी ओर विश्वास-जनक पात्र और भारत-भक्त विदेशियो के भी चित्र है। इसलिये प्रसाद की कार्नेलिया के समान उनके राष्ट्र मन्दिर एकाकी की नायिका मिस होम्स अग्रेज होते हुए भी यही कहती है कि 'मै हिन्दुस्तानी नही ता क्या अंग्रेजा की बेटी हूँ, लेकिन मेरा जन्म हिन्दुस्तान में हुआ है। यह मेरी जन्मभूमि है[2]।' इसी प्रकार प्रेमी जी ने हिन्दू मुस्लिम समस्या का भी सुन्दर चित्रण किया है। इनके नाटक हमारे राष्ट्रीय आन्दोलनो से उद्भूत भावनाओ के चित्र तो हैं ही, साथ ही वे उस आदर्शवादी परम्परा के भी प्रतिनिधि है जो भारत की सज्जनता आत्मविस्तार और 'वसुधैव कुटुम्बक' की अनुगामिनी है[3]।'

गाविन्द वल्लभ पत ने भी अपने नाटका मे राष्ट्र-प्रेम की ओर सकेत किया है, इन्होंने नाटका की कथा-वस्तु सामाजिक एव राष्ट्रीय आन्दोलन से सम्बन्धित जीवन से ग्रहण की है। इनके नाटका मे राष्ट्रीय सघर्ष को विभिन्न धाराएँ प्रवाहित हुई हैं। उदय शकर भट्ट के सभी नाटकों में एकाकी या अनेकाकी हों, उनम किसी न किसी रूप मे राष्ट्रीय भावना की प्रेरणा दृष्टिगत होती है। क्रातिकारी नाटक में भट्ट जी ने देश के क्रातिकारी आन्दोलन की सजीव झाकी प्रस्तुत की है। इस नाटक में इन्होंने देश भक्ति, त्याग, अनुशासन और देश के प्रति प्राणो को बलिदान करने के आदर्श उपस्थित किये हैं। भट्ट जी ने विश्वामित्र, विक्रमादित्य दाहर, मुक्ति पथ और शक विजय, अम्बा' सागर विजय, मत्स्यगधा, राधा आदि नाटको की रचना की है। लेखक ने वर्तमान जीवन की समस्याओं का अपने नाटका में सुन्दर चित्रण किया है और राष्ट्र के उद्धार के लिए अपने नाटको में उच्च आदर्शों का उल्लेख किया है तथा राष्ट्रीय जीवन में आने वाली

१—उद्धार—हरिकृष्ण प्रेमी—अक ३—दृश्य ७—पृष्ठ १३५,

२—हिन्दी नाटक के सिद्धान्त और नाटककार-प्रो० रामचरण महेन्द्र पृ० २३६

३—हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास-सोमनाथ गुप्त पृ० ६५.

त्रुटियों में सुधार कर उच्च आदर्शो एवं लक्ष्यों की ओर प्रेरित किया है।

लक्ष्मी नारायण मिश्र ने भी अपने नाटकों में राष्ट्रीयता को स्थान दिया है। राष्ट्रीय संस्कृति को स्पष्ट रूप से समझने तथा शाश्वत रूप देने वालों में उनका विशिष्ट स्थान है। यही कारण है इनके नाटकों में हमें उग्र राष्ट्रीयता मिलती है। प्राचीन राष्ट्रीय गौरव की भावना उनके नाटकों में विद्यमान है। 'वितस्ता की लहरों' में उग्रराष्ट्रीयता स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। 'वितस्ता की लहरों' का वही कथानक है जो प्रसाद जी के चन्द्रगुप्त नाटक का है। इस नाटक में राजनीतिक पतनों को हटा कर राष्ट्रीय प्रेम एवं देश भक्ति की ओर प्रेरित किया है। सेठ गोविन्ददास कृत 'शशिगुप्त' नाटक में देश प्रेम की भावना सर्वोत्कृष्ट है। इनके राष्ट्रीय नाटकों के सभी पात्र वर्तमान जीवन की घटनाओं से सम्बन्धित है।

पं० रामनरेश त्रिपाठी ने 'जयन्त' नामक राष्ट्रीय नाटक की रचना की और इसमें देश के प्रति बलिदान होने की भावना को व्यक्त किया। प्रेमचन्द जी ने संग्राम, कर्बला, प्रेम की वेदि, आदि नाटकों में राष्ट्रीय भावना को प्रस्तुत किया है। इस प्रकार उपर्युक्त विवरण से यह ज्ञात होता है कि नाटककारों ने हिन्दी नाट्य साहित्य के अनेक राष्ट्रीय नाटकों की रचना की। उन नाटकों में राजनीतिक पतन में सुधार कर देश प्रेम की भावना को महत्व दिया और सम्पूर्ण देश में राष्ट्रीयता की भावना को जाग्रत किया और ऐक्य की भावना को विशेष महत्व दिया। नाटकों में राष्ट्रीय भावना के साथ राष्ट्रीय गीतों का भी प्रयोग किया। श्री प्रेमनारायण टन्डन कृत 'कर्म पथ' नाटक आचार्य वृहस्पति के पुत्र 'कच' के चरित्र गौरव को स्पष्ट करता है जो कि स्वदेश के लिए मर-मिटने में अपना परम सौभाग्य समझता है। 'कच' के चरित्र में पूर्ण राष्ट्रीयता झलकती है। उदाहरणार्थ :—

कच :—मार दूंगा लात समस्त संसार के सभी प्रलोभनों पर जननी स्वर्णभूमि के लिए अर्पण कर दूंगा प्राण भी सहर्ष ही[1]। इन सम्पूर्ण नाटकों के अतिरिक्त एकांकियों में भी राष्ट्रीयता का दृष्टिकोण विशेष रूप से परिलक्षित हुआ है। एकांकी के जनक आचार्य रामकुमार वर्मा के 'मर्यादा की वेदी' 'में एक सामान्य स्त्री [भैरवी] ने सिकन्दर की शक्ति को चुनौती देते हुए भारत की स्वतन्त्रता के लिए अपने प्राणों का बलिदान कर दिया है, उसी प्रकार 'तैमूर की हार' नाटक एकांकी में दीपलपुर के एक छोटे से बालक बालकरन ने तैमूर को अपने गाँव से वापस जाने के लिए बाध्य कर दिया है। छोटी से छोटी घटनाओं में हिंसा, क्रूरता और पाशविकता से विद्रोह करते हुए देश की मुक्ति के लिए अनेक पात्रों ने आदर्श चरित्र का परिचय दिया है। अनेकांकी और एकांकी नाटक-

---

१—हिन्दी एकांकी उद्‌भव और विकास—डॉ० रामचरण महेन्द्र पृ० ३७७

कारों ने नाटकों की रचना कर राष्ट्रीय प्रेम तथा देश के प्रति बलिदान होने की भावना की ओर संकेत किया है। यह सत्य है कि उपर्युक्त सभी नाटकों और एकांकियो मे देश के लिए आत्मोत्सर्ग और त्याग की भावना वर्तमान है तथा अनेक प्रसंग ऐसे भी है जिनमे हास्य का समावेश करते हुए कथानक की पुण्य सवेदना में सजीवता लाने का प्रयत्न किया गया है। उदाहरण के लिए प्रसाद के नाटक जो सभी प्रकार से राष्ट्रीय है, अनेक प्रसंगो पर हास्य की मनोरम क्रुतियों से आलोकित किए गए है। स्कन्दगुप्त मे धातुमेन अपने सहयोगियो से परिहास करने से नही चूकता। इसी प्रकार अजातुशत्रु मे हास्य की सुक्तियो की छटा मिलेगी एकाकी नाटक 'भाग्य नक्षत्र' में पृथ्वीराज के मामलो का संवाद हास्य की सूक्तियो से परिपूर्ण है। उसी प्रकार वासवदत्ता नाटक मे वादवदत्ता के समस्त संवाद हास्य और कौतुक की सूक्तियों से भरे हुए है।

अत: यह देखा जा सकता है कि भले ही विविध नाटककारो ने राष्ट्रीयता की भावना से प्रेरित होकर देश भक्ति सम्बन्धी नाटक लिखे है तथापि उस देश भक्ति के जोड़ में विनोद और हास्य के तत्व स्पष्ट रूप से वर्तमान हैं।

हास्य के माध्यम द्वारा सामाजिक सुधार :—

देश में अंग्रेजी राज्य की स्थापना हो जाने पर चारो ओर भ्रष्टाचार उत्पन्न हो गये थे और समाज में अनेक बुराइयां फैली हुई थी। इन सब परिस्थितियो के उत्पन्न हो जाने से देश की दशा अत्यन्त दयनीय थी। पाश्चात्य सभ्यता के कारण देश में वर्ण-शंकर उत्पन्न हो गए थे, उससे देश की जनता के जीवन को ग्रस्त होने से मुक्त होने के लिए तथा प्राचीन रूढ़ियो से छुटकारा पाने के लिए और देश को विकास का नवीन मार्ग प्रदर्शित करने के लिए जनपरक चेतना से प्रेरित होकर भारतेन्दु जी ने हिन्दी की वर्त-मान नवीन धारा का सृजन किया। भारतेन्दु जी ने ही तीव्र आलोचक दृष्टि से जीवन और समाज को देखा और समाज-सुधार करने का प्रयत्न किया।

भारतेन्दु जी ने अशिक्षा निवारण, बाल-विवाहो की त्रुटियाँ, मांस-मदिरा-सेवन की हानियाँ, विधवा-विवाह की उपयोगिता, राजनैतिक स्थिति का चित्रण अपने नाटको में कर उनमें सुधार करने का प्रयत्न किया है। इनके नाटक 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति', 'अन्धेर नगरी', 'भारत दुर्दशा,' 'प्रेम जोगिनी' तथा 'विपस्य विपमौपधम्' नाटक इस कोटि के अन्तर्गत आते है। भारतेन्दु ने इन नाटको द्वारा तत्कालीन जर्जरित जीवन की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक झांकी उपस्थित की है। एक ओर तो देश रूढ़ियों और अन्धविश्वासों में जकड़ा हुआ था और दूसरी ओर विदेशियो के राज्य के कारण आर्थिक दृष्टि से कगाल होता जा रहा था। अत: भारतीय ऐसी परिस्थितियों में पड़ कर एक आश्चर्यजनक वर्णशकर संस्कृति को अपना रहे थे, क्योकि पाश्चात्य संस्कृति के

कारण जीवन उच्छृंखल हो गया था। समाज के उन लोगो का भी पर्दाफाश किया, जो कि जूआ खेलने मे तथा मदिरा सेवन करने में मस्त थे। इन सब समस्याओ का नाटकों में चित्रण कर समाज सुधार करने मे भारतेन्दु जी प्रयत्नशील रहे।

भारतेन्दु जी ने विशृंखल समाज को नव निर्माण को ओर प्रेरित किया। इस युग के नाटकों में स्त्री-समाज की असहायावस्था, बाल-विवाह, समाज में फैले अत्याचार, शिष्टाचार का ह्रास आदि प्रमुख रूप से नाटकीय आलोचना के विषय बने। भारतेन्दुजी का पथानुगमन कर उनके समकालीन नाटककारा ने भी समाज सुधार भावना की ओर विशेष रूप से ध्यान दिया और अनेक नाटकों की रचना की जैसे :—पं० रुद्रदत्त शर्मा, कृत 'अबला विवाह' (र० का० १८८४ ई०) 'पाखण्ड मूर्ति' (र० का० १८८८ ई०) 'अभिमत मार्तण्ड' (र० का० १८८५ ई०) जगन्नाथ भारतीय की समुन्द्र यात्रा, (र० का० १८८७ ई०) वर्ण व्यवस्था एवं नवीन वेदान्त आदि यह सब नाटक सामाजिक चेतना को जागृत करने वाले थे।

कुछ नाटकों की रचना केवल समाज मे फैली हुई बुराइयों और दुराचार आदि की समस्या को लेकर नाटककारा ने की, जैसे किशोरी लाल कृत 'दुखनी बाला', (र० का० १८८० ई०) देवकी नन्दन त्रिपाठी का 'बाल-विवाह' (र० का० १८८२ ई०) श्री निधिलाल कृत 'विवाहिता विलाप' (र० का० १८८३ ई०) सीता राम कृत 'विवाह विडम्बन' (र० का० १८८४ ई०) देवी प्रसाद शर्मा का 'बाल विवाह', श्री देव दत्त मिश्र कृत 'बाल विवाह' (१८८५ ई०) छुन्नु लाल स्वामी का 'बाल विवाह' [१८९२ ई०] धनश्याम दास कृत 'वृद्धावस्था विवाह नाटक' [१८८८ ई०] आदि नाटकों में विवाह सम्बन्धी जो जटिल परिस्थितियाँ समाज मे उत्पन्न हो गई थी, उन सब पर कटु आलोचना की गई और उनमें सुधार किया गया। समाज सुधार का कार्य भारतेन्दु ने आरम्भ किया और देवकी नन्दन त्रिपाठी ने उसे आगे बढ़ाया। सामाजिक जीवन के रोग जैसे अपव्यय, वेश्यागमन, पश्चिम का अन्धानुकरण, कर्मकाण्ड, फैशनपरस्ती, बाल विवाह, पाखण्ड, बहु विवाह, अन्धविश्वास को दूर करने के लिए समाज मे नारे लगाए गए। इसलिये अनेक नाटककारो ने नाटकों की रचना कर हिन्दी नाट्य साहित्य में सामाजिक सुधार किया।

द्विवेदी युग में भी समाज सुधार की भावना प्रमुख रही है। नाटककारो ने समाज में फैली त्रुटियो को तीव्र व्यग्य से नाटक मे प्रस्तुत किया। प्राचीन रूढ़ियों को दूर कर नवीन बौद्धिक प्रतिक्रिया को आरम्भ किया। जिन सामाजिक समस्याओ का प्रतिपादन एव विश्लेषण इन नाटकों में हुआ है, उनमे अछूतोद्धार, जाति बिरादरी की संकुचिता, बेमेल विवाह तथा तलाक, वृद्ध विवाह, नौकर एव मालिक के झगड़े, जूआ, असगत प्रेम, छल कपट पूर्ण व्यवहार, शराबखोरी, ऊँच नीच में भेद भाव की भावना और

रूढिवादी सस्थाओ की कटु आलोचना, पाखण्ड इत्यादि है। नाटककारो ने समाज मे फैले दुराचारो पर प्रकाश डाला। इस सामाजिक आलोचना का प्रमुख उद्देश्य समाज को जागृत करना था। सुधारवादी नाटककारो ने व्यग्यात्मक शैली का प्रयोग कर समाज का सुधार किया।

प्रसाद युग में जितने सामाजिक नाटको की रचना हुई, भारतेन्दु युगीन सामाजिक नाटको से मिलते-जुलते हैं। प्राय वही समस्यायें इन्होंने भी अपने नाटको में अपनाईं, जो भारतेन्दु ने अपने नाटको मे अपनाई थी। इस युग के नाटककारो में राधेश्याम कथा-वाचक, पाण्डे बेचन शर्मा उग्र, जी०पी० श्रीवास्तव, बद्रीनाथ भट्ट, रूपनारायण पाण्डे, राम-सिंह वर्मा, राधेश्याम मिश्र, सुदर्शन, हरिशकर शर्मा, प्रेमचन्द, रामनरेश त्रिपाठी प्रमुख हैं।

आधुनिक युग में भी अनेक सामाजिक नाटको की रचना हुई और नई समस्याओ का नाटको में प्रयोग हुआ जैसे सघर्ष, पूंजीवादी व्यवस्थाएं, मजदूरो का तनाव, किसान, धनी, गरीब, हड़ताल, कर्जदार, आदि सामाजिक नाटकों के विषय बने।

लक्ष्मीनारायण मिश्र ने 'सिन्दूर की होली' और 'मुक्ति का रहस्य' नाटको की रचना कर समाज सुधार किया है। सेठ गोविन्द दास जी ने भी कई सामाजिक नाटक लिखे जैसे 'प्रकाश', 'सिद्धान्त', 'दलित-कुसुम' 'बडा पापी कौन', 'सेवापथ', 'दुखी क्यो', 'महत्व किसे', 'भूदान यज्ञ' आदि। दलित 'कुसुम' नाटक मे दुष्ट पापियो के दुराचारो का जीता जागता चित्रण किया है जो कि भुलाया नही जा सकता। सेठ जी ने समाज का बहुत बारीकी से निरीक्षण किया और वही सजीव चित्रण अपने नाटको में प्रस्तुत किया है। सामाजिक सुधार की ओर इनकी प्रवृत्ति विशेष रूप से रही है। इनके 'प्रकाश' नाटक में वर्तमान सामाजिक जीवन का यथार्थवादी चित्र मिलता है।

उदय शकर भट्ट की नाटकीय प्रतिभा भिन्न शैलियो तथा विषयो के नाटक लिखने में स्पष्ट हुई है। इन्होने अपने नाटको मे नवीन समाज और आधुनिक जीवन सम्बन्धित समस्याओ का वर्णन किया है। धूमशिखा, पर्दे के पीछे, आदिम युग, समस्या का अन्त, नया समाज, कमला, स्त्री का हृदय आदि नाटक लिखे। 'अन्तहीन अन्त' नाटक सर्वश्रेष्ठ सामाजिक नाटक है। अनाथालयो में आजकल बच्चो को रख कर लोग अपना स्वार्थ निकालते है और भ्राति मे पडकर लोग अपनी आत्महत्या कर लेते है। छोटे व्यक्ति के हृदय मे ऊपर उठने की भावना निहित रहती थी। एक दिन वह पाकर एक महान् व्यक्ति बन जाता है। यही इस नाटक मे सजीव रूप से चित्रित किया गया है। मानव का चरित्र स्तर पर स्तर खुलता चला जाता है।

'कमला' नाटक में भट्ट जी ने जिमीदारो में अहं की भावना का और उनके द्वारा प्रजा पर किये गये अत्याचारो की कथा, नारी के प्रति पुरुष के कठोर अत्याचारो को बडे ही मार्मिक ढग से व्यक्त किया है। इस नाटक में वर्तमान समाज की समस्याओ का कला-

त्मक वर्णन है जैसे.—सरकार की खुशामद, देश का अभिमान, व्यक्तित्व की महत्ता, ग्राम सुधार, साक्षरता आन्दोलन, गांधीवाद का प्रभाव, बेमेल विवाह, जिमींदारों की कमजोरियाँ और स्त्रियों पर अधिकार जमाए रहने की भावना इत्यादि। डा० सत्येन्द्र का कथन है कि 'भट्ट जी ने समाज के रूढि विरोधी व्यक्तित्व को पुराण से अवतीर्ण कर भारतीय समाज को उसका मुख उसके दर्पण में ही दिखा दिया है[1]।' भट्ट जी ने समाज की दुर्बलताओं तथा रूढ़ियो और मूढ़ताओं पर व्यग्य के वाण छोड़ है तथा उनमें सुधार किया है। पर्दे के पीछे इनका नवीन सग्रह है, इसमे सामाजिक जीवन के मार्मिक चित्र है। हरिकृष्ण प्रेमी के अधिकाश नाटक सुधारवादी और आदर्शवादी हैं। गोविन्द वल्लभ पन्त ने भी समाज की ऐसी समस्याओ को अपने नाटक का विषय बनाया है जो कि पददलित की ओर उन्मुख कर रही थी। 'अगूर की बेटी' उनका नाटक इसी कोटि का है। इस नाटक मे पन्त जी ने मदिरा पान के कारण एक उजडते हुए परिवार की मर्मस्पर्शी भाकी प्रस्तुत की है।

इस प्रकार हम देखते है इन नाटककारो के अतिरिक्त अन्य नाटककारो ने भी नाटकों की रचना कर समाज का सुधार किया है। एस० पी० खत्री का कथन है कि सामाजिक विषय चयन का मुख्य उद्देश्य समाज सुधार तथा जनता मे जागरण उत्पन्न करना रहता है। नाटककार समाज के अन्याय पर प्रकाश डाल कर जनता को चैतन्य कर सकता है। योरुप के सभी देशो के नाटककारो ने सामाजिक रीतियो को आधारभूत मान कर श्रेष्ठ नाटको की रचना की हैं। भारतीय नाटककारो ने इन सामाजिक विषयो का पूर्ण रूप से उपयोग किया है। बाल-विवाह, बहु विवाह, शराब खोरी, जुआ, अविद्या के दुष्परिणाम, फिजूल खर्ची, पाश्चात्य देशो के सिद्धान्तों तथा उनके रीतिरिवाजो का अनुकरण, वेश्यावृत्ति तथा अनेक सामाजिक कुरीतियो पर नाट्य रचना की।[2]

एकाकी नाटककारो में जैसे डा० रामकुमार वर्मा, लाला काशीनाथ खत्री, श्री बिद्धीलाल मिश्र, श्री कीर्ति प्रसाद खत्री, श्री शरण, जैनेन्द्र किशोर, श्री दमोदर शास्त्री, श्री वनदेव, श्री गोविन्द आदि अन्य नाटककारो ने नाटको की रचना कर समाज सुधार किया। इन नाटककारो ने भी हिन्दू समाज को देखा और समाज मे फैली कुरीतियो, अन्धविश्वासो एवं रूढियों पर व्यग्यात्मक शैली द्वारा कुठाराघात किया। डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित ने रामकुमार वर्मा के नाटको के विषय में लिखा है कि 'वर्मा जी के एकाकियो का हास्य केवल हास्य के लिए नही है, वरन् अपनी सुधारात्मक प्रकृति को छिपाये जनता के हृदय और मन का परिष्कार भी करना चाहते है। समाज मे चलती

१—हिन्दी नाटक के सिद्धान्त और नाटककार—प्रो० रामचरण महेन्द्र पृष्ठ २२।

२—हिन्दी नाटक के सिद्धान्त और नाटककार—प्रो० रामचरण महेन्द्र पृष्ठ ४९६।

हुई अन्ध परम्पराओ एवं अन्ध-विश्वास की रूढियो को हास्य के माध्यम से उखाड़ना चाहते है।[१]

इन नाटककारो ने भी मिथ्या प्रदर्शन, दुरभिसन्धि, पार्टीबन्दी, थोथी विचारधारा, छूआ छूत, वाह्य-आडम्बर, अनौचित्य, अनैतिकता, प्रपचपूर्ण कार्य, अस्वाभाविक आदर्श आदि पर व्यंग कर परिष्कार किया। नाटककारो की सुधार वृत्ति के परिणामस्वरूप समाज के जीते जागते चित्र जनता के समक्ष उपस्थित हुए। तथा नवीन भावनाओ एवं विचारो का विकास हुआ। रुढिवादिता को घृणा की दृष्टि से देखा। सामाजिक उन्नति एवं सुधार के लिए प्रेरित हुए और व्यंग्यात्मक शैली द्वारा भद्र जीवन मे प्रविष्ट पाखण्ड, प्राचीन पन्थीपन, व्यभिचार, जीर्ण शीर्ण मान्यताएँ, मद्यपान को स्पष्ट कर दिया गया है। इस समाज परिष्कार की भावना मे इनमें से अनेक नाटककारो ने सामाजिक एवं वर्गगत विडम्बनाओ को नष्ट करने के लिए हास्य को ही अपना प्रमुख साधन बनाया है। इसका कारण यह है कि समाज का भीषण पाप और दुराग्रह तब तक समाप्त नही किया जा सकता है जब तक उस पर कठोर से कठोर आघात् न हो। यदि यह आघात प्रत्यक्षरूप से किया जायगा तो घोर विरोध होने की सम्भावना है। और समाज मे विश्रृंखलता या उच्छृखलता फैलने का सूत्रपात हो सकता है। इसलिए ऐसे कठोर से कठोर प्रहार करने के लिए हास्य और व्यग्य से अधिक शक्तिशाली साधन साहित्यकार के पास नही है और इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि समाज और वर्ग सुधारो के लिए सामाजिक नाटको मे हास्य का प्रयोग अधिक प्रभावशाली और लक्ष्य का साधक हो सकता है।

हास्य के माध्यम द्वारा धार्मिक सुधार :—

भारतीय जीवन मे धर्म का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। भारतवर्ष मे राष्ट्रीय उत्थान के सर्वप्रथम पथ प्रदर्शक धर्म सुधारक के रूप मे अवतरित हुए। नवीन राष्ट्रीय आन्दोलन धार्मिक सुधार से ही आरम्भ हुआ। राजा राम मोहन राय ने ब्रह्मसमाज की स्थापना कर धार्मिकता को महत्व दिया है। यह पाश्चात्य शिक्षा से प्रभावित थे इसलिए इन्होने हिन्दू धर्म इस्लाम धर्म और ईसाई मतो को सूत्र में बाधने को महत्व दिया। अतः अपने व्यक्तित्व द्वारा और विशिष्ट आन्दोलन द्वारा प्राचीन रूढियाँ तथा अन्य विश्वासो को दूर करने में प्रयत्नशील रहे। राजा राम मोहन राय के पश्चात् अनेक महान व्यक्तियो ने इस कार्य का आगे बढ़ाया है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने आर्य समाज की स्थापना कर हिन्दू धर्म तथा सभ्यता की ओर लोगो को अपने प्रभावशाली विचारो द्वारा आकृष्ट किया। रामकृष्ण परमहंस

१—नया पथ-नाटक विशेषांक—पृष्ठ ४९६।

की प्रवृत्ति भी धार्मिक सुधार की ओर प्रेरित हुई। इन्होंने भी धार्मिक सहिष्णुता को महत्व देकर पददलित समाज को ऊँचा उठाया। भारतीय धर्म और समाज को विश्व की दृष्टि से गौरवान्वित करने का श्रेय इन्हीं की देन माननी चाहिए। भारतीय नाटककारों ने प्राचीन धर्म की परिपाटी को महत्व दिया है। और धार्मिक पर्वों पर विशेष रूप से अभिनयों की उत्पत्ति की है।

हमारे समाज में धर्म के नाम पर जो पापाचार हो रहे थे और कई एक आन्दोलन चल गए थे तथा जनता धर्माडम्बरों में जकड़ी हुई थी इन सब की ओर सुधारवादियों का ध्यान आकर्षित हुआ। सर्वप्रथम भारतेन्दु जी ने अपने नाटकों में उन धूर्त पाखण्डियों का पर्दा खोला, जो कि धर्म की आड़ में व्यभिचार करते हैं, उन पर करारे व्यंग्य कर उनमें सुधार किया। 'अन्धेर नगरी' और 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' नाटक इस कोटि के अन्तर्गत आते है। इन नाटकों मे भारतेन्दु जी ने तत्कालीन जीवन की धार्मिक झाँकी प्रस्तुत की है। 'भारत दुर्दशा' में भी धार्मिक स्थिति का सुन्दर वर्णन हुआ है।

भारतेन्दु जी के समकालीन नाटककारों ने भी धार्मिक नाटकों की रचना कर सुधार किया जैसे राधाचरण गोस्वामी का 'श्रीदामा', 'सती चन्द्रावती', जैनेन्द्र किशोर का 'सोमावती' अथवा 'धर्मवती' (१८३०), कार्तिक प्रसाद कृत 'उषाहरण' (१८९२) 'गंगोतरी', 'द्रौपदी', 'चीरहरण', निस्सहाय हिन्दू', लाला श्री निवास दास कृत 'प्रह्लाद', 'चरित्र', पं० बदरी नारायण प्रेमघन का 'प्रयाग रामागमन' (१८०४) लाला खंग बहादुर मल का 'हरितालिका', ज्वाला प्रसाद मिश्र का 'मयूर ध्वज', बालकृष्ण भट्ट कृत 'दमयन्ती स्वयंवर' आदि। इनके अतिरिक्त देवकी नन्दन त्रिपाठी, प्रताप नारायण मिश्र, श्री किशोरी लाल जी ने भी कई एक नाटकों की रचना की। इन नाटककारों ने धार्मिक क्षेत्र मे पाखण्ड, व्यर्थ के कर्मकाण्ड, पंडागिरी धर्म की आड़ मे होनेवाले कुकृत्यों एवं कर्मों के प्रति घृणा, ज्योतिषियों की धोखेबाजी, व्यर्थ के मिथ्याडम्बर, धार्मिक संकुचितता को व्यग्यात्मक शैली द्वारा दूर करने का प्रयत्न किया और हिन्दू व्यक्ति, जो मुसलमान बनते जा रहे थे, उनको धार्मिक नाटकों के माध्यम द्वारा सुलझाया गया। धर्म के प्रति जनता के कदम मे भक्ति भाव एवं श्रद्धा उत्पन्न की।

द्विवेदी युग में भी कई एक धार्मिक नाटक लिखे गए जैसे :—पं० राधेश्याम कथावाचक कृत 'श्री कृष्ण अवतार', 'रुकमणि मगल', 'वीर अभिमन्यु', 'श्रवण कुमार', 'ईश्वर भक्ति', 'भक्त प्रह्लाद', 'द्रौपदी स्वयर', माखन लाल चतुर्वेदी कृत 'कृष्ण अर्जुन', बेताब कृत महाभारत, रामायण, कृष्ण सुदामा आदि। श्री कथावाचक जी ने अपने नाटकों मे धर्म को विशेष रूप से महत्व दिया और जनता मे धर्म के प्रति नवीन भावनाओ का सचार किया है। प्राचीन धार्मिक एवं भक्ति भावना को महत्व प्रदान किया। लोगो के हृदय में अधार्मिकता की जो लहर थी, उसको दूर करने का प्रयत्न किया। इन

नाटककारों ने धर्म के प्रति अगाध श्रद्धा प्रस्तुत की। बदरीनाथ भट्ट एवं जी० पी० श्रीवास्तव ने भी अपनी व्यंग्यात्मक शैली द्वारा नाटकों की रचना कर धार्मिक सुधार किया। उन्होने धर्म की संकुचितता पर व्यंग्य वाण चलाकर सुधार की ओर संकेत किया।

प्रसाद के भी सभी नाटकों में धार्मिक वातावरण तथा परिस्थितियों का बोध मिलता है। हिन्दू राजनीति के साथ ही साथ भारतीय धर्म का प्राचीन इतिहास, बौद्ध एवं ब्राह्मण धर्म का संघर्ष प्रसाद के नाटकों में मिलता है। प्रसाद के नाटकों में हमें कई एक ऐसे मिलते है जो कि धार्मिक संघर्ष को व्यक्त करते है। मध्य युग मे तो अधिकांश साहित्य धर्म की भावना से ओत-प्रोत था। प्रसाद के समकालीन नाटककार भी इस धार्मिक सुधार की ओर प्रेरित हुए और नाटकों की रचना की। डा० लक्ष्मी नारायण मिश्र ने अधिकाश रूप से सामाजिक नाटको की रचना की है परन्तु कुछ एक नाटकों में इन्होंने धार्मिक परिस्थितियों का वर्णन किया है। 'वत्सराज' नाटक श्रेष्ठ नाटको में से एक है। यह तीन अंको का नाटक है। द्वितीय अंक मे बौद्ध धर्म के विषय में बताया है। उदयन बौद्ध धर्म का पक्षपाती था और बुद्ध के प्रति आदर भाव भी प्रदर्शित करता था। उदयन अन्य व्यक्तियों के समक्ष भी धर्म की महता के आदर्श प्रस्तुत कर उनमे श्रद्धा के भाव उत्पन्न करता था। हिन्दू धर्म की ह्रासोन्मुख रूढ़ियों को दूर करने का इन्होने प्रयत्न किया।

सेठ गोविन्द दास कृत हर्ष नायक नाटक मे भी धार्मिक अवस्थाओं का दिग्दर्शन हुआ है, यद्यपि यह एक ऐतिहासिक नाटक है। जिस समय इस नाटक की रचना हुई उस समय युग धर्मान्धता की ज्वाला मे धायँ-धायँ जल रहा था। सनातन तथा बौद्ध दोनों धर्मों के अनुयायी पारस्परिक, द्वेप में दग्ध हो रहे थे। शैव और बौद्ध एक दूसरे के कट्टर विरोधी थे। राजनीतिक क्षेत्र में सम्राटों और साम्राज्यों का महत्व था। हर्षवर्धनवंश का उत्थान हो रहा था और गुप्त वंश का पतन हो चुका था। हर्ष के प्रति द्वन्द्वी गुप्त वंशी शशांक नरेन्द्र गुप्त थे। हर्ष सब धर्मों का एकीकरण कर एक सत्य की घोषणा करना चाहते थे।[1] सम्राट हर्ष ने अपनी राज्यश्री विधवा बहन को साम्राज्ञी बना स्त्रियो के प्रति श्रद्धा-भक्ति, आदर एवं समानाधिकार के विचारों को दृढ़ करवाया था। इन्ही सब परिस्थितियों का हर्ष नाटक मे वर्णन हुआ है। इस प्रकार सभी नाटककारो ने अपने नाटकों में धार्मिकता को महत्व दिया है।

उदयशंकर भट्ट जी के नाटको का क्षेत्र भी अत्यन्त विस्तृत है। इनकी दृष्टि भी दूर-दूर तक गई है। धार्मिक समस्याओं से लेकर राजनीतिक एवं सामाजिक समस्याएँ

१—हिन्दी के सिद्धान्त और नाटककार-प्रोफेसर रामचरण महेन्द्र—पृ० २२१।

उनके नाटकों में फैली हुई है। 'दाहर' नाटक में धर्म-भेद, वर्ण-भेद, प्रान्त भेद, आदि समस्याओ का वर्णन किया है। धार्मिक रूढ़ियो से ग्रस्त व्यक्तियो को ऊपर उठाया। 'मुक्ति पथ' नाटक में धार्मिक संघर्ष का सुन्दर वर्णन हुआ है। यह धार्मिक संघर्ष बौद्ध धर्म एव ब्राह्मण धर्म की प्रतिक्रिया का फल था। इस संघर्ष के कारण देश की एकता खंडित हो चली और बौद्ध धर्म को लेकर एक अलग जाति बन गई जो कि हिन्दू जाति से अपने को भिन्न मानने लगी। इन सब समस्याओं का चित्रण मुक्ति पथ नाटक मे किया है। नाटककार इन सब धार्मिक समस्याओ को सुलझाने में प्रयत्नशील रहे। इनका 'शक विजय' नाटक भी इन्ही धार्मिक समस्याओ पर आधारित है। 'सागर विजय' नैतिक उद्देश्य से ओतप्रोत नाटक है। इस नाटक में नाटककार का प्रमुख उद्देश्य प्राचीन भावना एव धार्मिक भावना को जनता मे जागृत करना रहा है।

श्री हरिकृष्ण प्रेमी ने भी अपने नाटको मे धार्मिक एकता को महत्व दिया है जिस प्रकार गाधी जी ने 'सर्व धर्म समन्वय' का प्रचारित किया था उसी प्रकार प्रेमी जी ने अपने 'शपथ' नाटक मे सर्व धर्म समन्वय की नीति को महत्व दिया। सामाजिक एवं राजनीतिक तथा धार्मिक एकता इन तीनों को शपथ नाटक मे चित्रित किया है। देश मे फैली हुई दुष्ट प्रवृत्तियों को सुधार कर धार्मिक एकता को महत्ता प्रदान की और धार्मिक सहिष्णुता को प्रमुखता दी।

समाज में फैली हुई धार्मिक कुरीतियो और ज्योतिषियो की धोखेबाजी पंडागिरी व्यर्थ के दुराचार आदि सभी त्रुटिओं को दूर करने में नाटककार प्रयत्नशील रहे। और उन्होंने अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए व्यग्य का आश्रय सफलतापूर्वक ग्रहण किया। धर्म के अनेक पार्श्व इतने गहन एव रहस्यमय है कि उनकी अभिव्यक्ति सामान्य जनता के द्वारा अनेक प्रतीकों के रूप मे हुई। उन बाह्य आचरणो ने धर्म के वास्तविक रूप को आवृत कर दिया और केवल थोथे ज्ञान और अनावश्यक कर्मकाण्ड को ही धर्म का परिवेश प्रदान किया। साहित्यकारो ने इस परिवेश को दूर कर धर्म के सच्चे स्वरूप को प्रकट करने का प्रयास किया। इसके लिए उन्हे विशिष्ट शैली ग्रहण करनी पडी। हमारा देश धर्मप्रवण देश है। सामान्य जनता धर्म का विरोध नही सहन कर सकती इसलिए साहित्य कारो द्वारा उसका सीधा विरोध तो नही किया जा सकता था। अतः धर्म के इस आडम्बर को दूर करने के लिए या तो किसी विशिष्ट धर्माचार्य या धार्मिक नेता के व्यक्तिगत जीवन पर व्यग्य और परिहास करने की आवश्यकता जान पडी और उन्होने धर्म के क्षेत्र में परिष्कार के हेतु व्यग्य और परिहास को अधिक बल दिया है। मुसलमानो तथा ईसाई मिशनरियों के साम्य भाव के कारण भारतीय जनता अपने भारतीय संस्कारो के प्रति वंचित होती जा रही थी। अधिकतर हिन्दू मुस्लिम संस्कारो को अपनाते जा रहे थे। इसी प्रकार सब धार्मिक समस्याओ को हास्य एवं व्यंग्यात्मक शैली के माध्यम द्वारा

सुलझाया गया। नाटककारो ने नाटक के द्वारा जनता मे धार्मिकता की भावना को जाग्रत किया और धार्मिक आदर्शों को जनता के समक्ष उपस्थित किया।

चारित्रिक दुर्बलताओं के प्रदर्शन तथा उनमे हास्य के माध्यम द्वारा सुधार

चरित्र-चित्रण नाटक का विशेष गुण एव प्रमुख अग है। पात्रों के चरित्र-चित्रण द्वारा ही नाटक की घटनाओ एव कथोपकथन का विकास होता है। जिस नाटक मे चारित्रिक दुर्बलताएँ अधिक होती है, वह नाटक अधिक विकसित नही हो पाता और न ही उस नाटक की घटनाएँ आगे बढ पाती है, तथा न वह अभिनय की दृष्टि से ही उचित माना जाता है। भारतेन्दु युग के नाटको मे भी हमें कही-कही दोष दिखाई पडते हैं क्योंकि उस समय अभी हमारा नाट्य साहित्य इतना विकसित नही हुआ था फिर भी नाटककारों ने इन सब दुर्बलताओ एव कुरीतियो का हास्य मे व्यग्य के माध्यम द्वारा सुधार किया।

प्रसाद के नाटकों में भी हमे चारित्रिक दुर्बलताएँ अधिक मिलती हैं, क्योंकि प्रसाद जी ने अपने पात्रों को सघर्षपूर्ण बनाये रखा। इनके अधिकाश पात्र अपनी दुर्बलताओ से बढ़ते-बढ़ते इतने बढ जाते हैं कि उन्हे महात्माओं की शरण लेनी पडती है। अधिकतर इनके पात्र उदासीन ही दिखायी पडते है। स्कन्दगुप्त इतना निःस्वार्थी था, उसके मुख पर भी उदासीनता की भावना झलकती है। यूँ तो नाटककार नाटक का प्रस्तुत करने के लिए अपनी विशेष कला-कौशल का प्रदर्शन करता है और नाटकत्व के नियमों के प्रति वह सतर्क रहता है कि कही दुर्बलता उत्पन्न न होने पाए। इसलिए वह पात्रों के मनोविज्ञान में प्रवेश कर उनकी मनोवृत्तियो को समझता है और हास्य के माध्यम द्वारा उनकी व्यंग्य प्रवृत्तियो को सुधारता हुआ अग्रसर होता है, जैसे उदाहरण के लिए उदयन और वासवदत्ता का सवाद।

'विशाख' नाटक मे चरित्र-चित्रण का इतना विकास नही हो पाया है और न ही मनोभावनाओं का वैशिष्ट्य ही दिखाया है। इसमें चारित्रिक रेखाएँ भूली भूली सी प्रदर्शित होती है। अजातशत्रु नाटक मे भी कई स्थानो पर दुर्बलताएँ दिखलाई पडती है। प्रथम अजातशत्रु के चरित्र में वह सन्तुलन है जो कि एक नायक के लिए आवश्यक है। इसमे विवेक शक्ति का अभाव है तथा प्रत्येक स्थिति मे वह दूसरे पात्र द्वारा ही अनुशासित किया जाता है। अजातशत्रु मे प्रसाद का मुख्य उद्देश्य कुसगति मे पडे हुए राजकुमारी के सस्कारो का सुधार करना था। अपनी सवेदना मे जैसे जैसे विकास करता है वैसे वैसे नाटक के कुटिल पात्र परिष्करण की ओर अग्रसर होते है। कुटिल पात्र देवदत्त परिष्कार की सम्भावनाओ से रहित होकर मृत्यु को प्राप्त होता है स्वचालित होकर सभी कुचक्रो का फल उसे मिल जाता है। छलना का चरित्र परिष्कृत होता है। और वह अपने सभी

अपराधो के लिए बिम्बसार से क्षमायाचना करती है। आजतशत्रु वाजिरा के प्रणयपाश मे बंध कर और कालान्तर मे पिता की अनुभूतियाँ प्राप्त कर सभी राजनीतिक कुरीतियो का त्याग कर देता है। शक्तिमती भी अपनी हीन बुद्धि पर मल्लिका से क्षमा याचना करती है। इस प्रकार यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि पात्र अपनी चारित्रिक दुर्बलताओं के कारण पददलित हो स्वय सुधार की ओर प्रेरित हो जाते हैं। ध्रुवस्वामिनी का रामगुप्त चन्द्रगुप्त नाटक के नन्द, अम्बीक, पर्वतेश्वर आदि इस कोटि के पात्र है।

ध्रुवस्वामिनी नाटक मे प्रमुख स्त्री पात्र ध्रुवस्वामिनी ही है। वह बडी विषम परि-स्थितियो मे अपने चरित्र को अभिव्यक्ति करती है और विविध पात्रो से सघर्ष लेती है। आत्म सम्मान एव वश गौरव की रक्षा करती हुई वह रामगुप्त के समक्ष याचना भी करती है किन्तु परिस्थितियो से विवश होकर वह चन्द्रगुप्त के साथ शक-शिविर में प्रवेश करती है। चन्द्रगुप्त की वाग्दत्ता होकर अन्त मे रामगुप्त की हत्या होने पर वह चन्द्रगुप्त का वरण करती है और स्त्रीत्व की गरिमा से मंडित होकर गुप्तवश की कुलवधू बनती है।

प्रसाद के नाटको मे चारित्रिक अन्त दो प्रकार से होता है, एक तो चरित्र सुधर कर सात्विक बन जाता है और दूसरे वह अपने जीवन का अन्त करता है। जीवन का अन्त तीन प्रकार से होता है। या तो कोई पात्र उसका वध कर देता है या वह छूरी मार कर आत्महत्या करता है या परिस्थितियो के कुचक्रो मे पड़कर वह मृत्यु को प्राप्त होता है। नारी के चित्रण मे प्रसाद जी ने वैशिष्ट नाट्यकौशल प्रदर्शित किया है। उनके नारी पात्र जीवन की विशिष्ट सवेदनाओं से प्रेरित है। उनके श्रेष्ठ नारी पात्र जीवन की उदात्त भाव-भूमि पर स्थित है। वे मानव के जीवन की नवीन प्रेरणाएँ प्रदान करती हैं, सौन्दर्य और आकर्षण से सम्पन्न होकर वे प्रणय का निमन्त्रण देती है तथा अनेक कलाओ में पारगत होकर सगीत एव काव्य से एक वासन्ती वातावरण की सृष्टि करती है। वस्तुत: प्रसाद के नारी पात्र उनके कलात्मक सौन्दर्य की ललित अभिव्यक्तियाँ है जिनसे जीवन के विषय और परिवर्तनशील जगत् मे एक रागात्मक सौन्दर्य एवं आशावादिता का मगलाचरण प्रारम्भ होता है। यह भी सम्भव है कि कही-कही प्रसाद के नारी पात्र केवल भावात्मक प्रतीक बन कर उपस्थित हो और यह भी सम्भव है कि वे जीवन की विविध परिस्थितियो मे रग भरते हुए भोग मे निर्वाण की परिकल्पना उपस्थित करें—इन दोनो रूपो के दर्शन हमे अजातशत्रु नाटक मे होते है। भावात्मक प्रतीक के रूप मे मल्लिका है, और जीवन की विविध परिस्थितियो में रग भरने वाली मागन्धी है जो आम्रपाली बन कर भोग मे निर्वाण की सम्भावना उपस्थित करती है।

प्रमुख रूप से उनके उत्कृष्ट नारी पात्र उत्सर्ग की कामना से प्रेरित है। अजात-शत्रु मे वासवी, स्कन्दगुप्त मे देवसेना, चन्द्रगुप्त में मल्लिका, और ध्रुवस्वामिनी मे कोमा। इन पात्रो ने जीवन की समस्त उपलब्धियो मे उत्सर्ग की भावना को प्रश्रय दिया है।

दूसरी ओर कुछ ऐसे नारी पात्र भी है जिन्होने अनुराग के अन्तराल में जीवन को प्रभूत प्रेरणाएँ प्रदान की है। अजातशत्रु मे पद्मावती, स्कन्दगुप्त मे देवकी, चन्द्रगुप्त मे अलका तथा ध्रुवस्वामिनी में स्वयं ध्रुवस्वामिनी। कुछ स्त्री पात्र ऐसे भी है जिन्होने कार्यक्षेत्र मे बढ़ कर मानव की सवेदनाओ की सहायता की है। चन्द्रगुप्त की अलका और स्कन्दगुप्त की कमला ऐसे नारी पात्रों में है। कुछ नारी पात्र एक पात्र प्रणय और अनुराग की सम्पोषिकाएँ हैं। अजातशत्रु की वाजिरा कुमारी स्कन्दगुप्त की विजया और चन्द्रगुप्त की कार्नेलिया निराश जीवन में आशा का सदेशवाहन करती है।

इस भाँति यह देखा जा सकता है कि प्रसाद ने अपने नाटको मे नारी पात्रो की सृष्टि जीवन की इन्द्रधनुष की छटा में भी है। राष्ट्रीयता 'अलका' आत्मसम्मान 'कल्याणी' प्रणय व्यापार 'कार्नेलिया' रूप और सौंदर्य 'सुवासिनी' प्रणय निवेदन 'विजया' उत्सर्ग 'देवसना' *कला और संगीत 'पदमावती' आदि विविध जीवनगत सवेदनाओ* को विविध पात्रों की सृष्टि द्वारा अभिव्यजित किया गया हैं।

ऐसी ललित सृष्टि मे हास्य की सम्भावना कम ही है किन्तु ध्रुवस्वामिनी नाटक मे एक प्रसग ऐसा अवश्य है जहाँ नारी के माध्यम से हास्य की सृष्टि की गई है। शक शिविर में चन्द्रगुप्त नारी वेश में प्रवेश करता है और उस समय की परिस्थिति नारी को लेकर हास्य में परिणत हो जाती है। चन्द्रगुप्त का चन्द्रा के रूप में परिवर्तित हो जाना ऐसे कौतुक का सूत्रपात करता है कि स्वय शकराज भ्रान्ति मे पड जाता है। यही भ्रान्ति हास्यमूलक है और यहाँ प्रसाद जी ने अपने नाट्य कला के माध्यम से नारी के ललित भाव विन्यास में हास्य की सृष्टि की है।

इस प्रकार एकाकी नाटकों में भी चारित्रिक दुर्बलताओ का परिष्कार हास्य-व्यग्य की शैली द्वारा किया गया है। उदाहरणार्थ, डॉ० रामकुमार वर्मा द्वारा रचित *'तैमूर की हार' नामक एकाको में बालकरन और तैमूर का सवाद है।* अत. यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि चाहे एकाकी हो अथवा अनेकाकी हो, उनमें आए हुए दोषों को हास्य-व्यग्य के माध्यम द्वारा सुधारा गया है।

□

उपसंहार :
उपलब्धियाँ, निष्कर्ष एवं हास्य का सम्भावनाएँ

(१) राजनीतिक कुंठाग्रस्त हास्य
(२) धार्मिक और सामाजिक संदर्भ में हास्य
(३) जननाट्य तथा प्रहसन के लोक-व्यापी रूपान्तर
(४) विदूषक के व्यक्तित्व का विकास
(५) हास्यगत मनोविज्ञान

१—राजनीतिक कुंठाग्रस्त हास्य :—

भारतेन्दु युग से लेकर प्रसाद-युग तक हिन्दी नाटकों में हास्य-तत्व की विवेचना करने के उपरान्त निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले जा सकते है :—

भारतेन्दु युग सन् १८५७ की भारतीय जनक्रान्ति की प्रतिक्रिया का युग था। विदेशी शासन ने जिस निर्ममता से स्वतंत्रता के सेनानियों को अपने दमनचक्र से विनष्ट करने की नीति अपनायी थी, उसकी प्रतिक्रिया भारतीय जनता में होनी आवश्यक थी। एक ओर तो जनता भयानक रूप से आतंकित थी और दूसरी ओर वह विदेशी क्रूरता की सामान्य परिस्थिति भी सहन नहीं कर सकती थी। ऐसी अवस्था में साहित्यकारों के समक्ष एक बहुत कठिन दायित्व था, वे दमन की नृशंसता के भीतर ही अपने उद्वेलित मानस को एक नई दिशा देना चाहते थे और स्वतंत्रता की भस्मावृत्त चिनगारी को सजीव रखना चाहते थे। विदेशी शासन यद्यपि उनके लिए एक भयानक अभिशाप था, तथापि उस मुक्ति का वे कोई मार्ग खोजना चाहते थे, उसके लिए उन्होंने दो मार्ग खोजे—

(क) राजभक्ति के क्रोड़ मे राष्ट्रभक्ति का दबा हुआ संकेत।

(ख) हास्य के स्थान पर व्यंग्य और परिहास।

१९ वीं शताब्दी का राष्ट्रीय दृष्टिकोण इसलिए कुछ अस्पष्ट हो गया है। 'भारतदुर्दशा' में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कृत जहाँ भारत कहता है, 'हाय। परमेश्वर वैकुंठ में और राज राजेश्वरी सात समुद्र पार, अब मेरी कौन दशा होगी ?[1]' वहीं सत्य हरिश्चन्द्र नाटक के भरतवाक्य में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का कथन है :—

खल गगन सो सज्जन दुखी मत होई हरिपद रति रहै।
उपधर्म छूटे, सत्व निज भारत गहै कर दुख बहै[2] ।।

१—भारतेन्दु नाटिकावली—प्रथम भाग, पृ० ३८६
२—वही " पृ० १०८

प्रथम उदाहरण में राजभक्ति और दूसरे में राष्ट्रभक्ति है। इसका कारण विदेशी आतंक था, जहाँ बात खुल कर नहीं कही जा सकती थी, किन्तु प्रसंगों के अनुसार उसका संकेत मात्र किया जा सकता था।

१९ वीं शताब्दी का साहित्यकार जन-जागरण का मन्त्र फूंकते हुए उसका मनोरंजन भी करना चाहता था, इसमें हास्य की उपयोगिता स्पष्ट थी, किन्तु पराधीनता के अभिशाप में कौन खुलकर हँस सकता है। इसलिए साहित्यकारों ने हास्य का प्रयोग ऐसे कौशल से किया कि वह व्यंग्य और परिहास के रूप में ही अपनी अभिव्यक्ति कर सका। भारतेन्दु ने 'अन्धेर नगरी' प्रहसन में दूसरे अंक में पाचक वाले के मुख से हास्य को व्यंग्य के माध्यम से स्पष्ट किया है। निम्नलिखित पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं :—

हिन्दू चूरन इसका नाम, विलायत पूरन इसका काम।
चूरन जबसे हिन्द में आया, उसका धन बल सभी घटाया।
चूरन ऐसा हट्टा-कट्टा, कीना दाँत सभी का खट्टा...।
...चूरन साहिब लोग जो खाता, सारा हिन्द हजम कर जाता।

इस प्रकार राजनीतिक कुंठा ने १९ वीं शताब्दी के हिन्दी साहित्य को हास्य की एक नई शैली प्रदान की जो व्यग्य और परिहास से सम्पोषित होती है।

२—धार्मिक और सामाजिक संदर्भ में हास्य :—

भारतीय समाज धर्म और समाज को लेकर अनेक अन्ध मान्यताओं एवं परम्पराओं का शिकार रहा है। प्राचीन काल में ये मान्यताएं भले ही उपादेय और समाज-विधायक रही हों किन्तु युग के बदलने के साथ उन मान्यताओं एवं परम्पराओं की उपादेयता में सन्देह हो सकता है। इन अनावश्यक एवं व्यर्थ मान्यताओं को सहज रूप से नहीं हटाया जा सकता, अतः धार्मिक तथा सामाजिक क्षेत्र में जिस हास्य का प्रयोग किया गया उसका सर्वप्रमुख रूप वक्रोक्ति ही समझा जा सकता है। उदाहरण के लिए 'भारत दुर्दशा' नाटक के तृतीय अङ्क में सत्यानाश फौजदार का कथन है—'महाराज इन्द्रजीत सन जो कछु भाखा सो सब जनु पहिलहिं करि राखा।' आगे भी उसी का कथन है, 'रचि कै मत वेदान्त को सब को ब्रह्म बनाय, हिन्दुन पुरोषत्तम कियो तोरि हाथ अरु पाय।'[1] यह वक्रोक्ति श्लेष एवं काकु दोनों ही प्रकार से उपस्थित की गयी है।

समाज और धर्म जहाँ एक ओर लोकमानस को सम्बद्ध करते हुए उसकी प्रगति में सहायक होते हैं, वहाँ दूसरी ओर उनकी पवित्रता जनजीवन के स्वास्थ्य के लिए आवश्यक समझी जानी चाहिए। इस भाँति धर्म और समाज में सन्तुलन होना अत्यन्त

१—भारतेन्दु नाटकावली—भारत दुर्दशा—पृ० ३९०-९१

आवश्यक है। यदि धर्म और समाज प्राचीन परम्पराओ से अपने को सम्बद्ध कर लेते है तो उनके विकास में बहुत अधिक बाधाएँ उपस्थित होती हैं और यदि वे सुधारवाद का, आवश्यकता से अधिक, आश्रय ग्रहण करते हैं तो उच्छृंखलता फैलने की आशंका हो सकती है। इस उच्छृंखलता के दो रूप हो सकते है—प्रथम रूप अर्थ की आकाक्षा से प्रेरित होता है और दूसरा रूप दम्भ की अतिरेकता से। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के साहित्य में दोनों के बड़े सुन्दर उदाहरण मिल सकते है। पहला उदाहरण, 'अन्धेर नगरी' प्रहसन के दूसरे अक मे देखा जा सकता है जहाँ जातवाला ब्राह्मण कहता है, जात ले जात, टके सेर जात। एक टका दो, हम अभी अपनी जात बेचते है। टके के वास्ते ब्राह्मण से धोबी हो जाएँ और धोबी को ब्राह्मण कर दें, टके के वास्ते जैसी कहो वैसी व्यवस्था कर दें। टके के वास्ते झूठ को सच करें। टके के वास्ते ब्राह्मण को मुसलमान, टके के वास्ते हिन्दू से क्रिस्तान। टके के वास्ते धर्म और प्रतिष्ठा दोनो बेचें, टके के वास्ते गवाही दें। टके के वास्ते पाप को पुण्य मानें, टके के वास्ते नीच को भी पितामह बनावें। वेद धर्म कुल-मरजादा सचाई बड़ाई सब टके सेर, लुटाय दिया अनमोल माल, ले टके सेर।'[1]

दूसरा उदाहरण, जिसमे दम्भ की अतिरेकता से सुधार का परिहास किया गया है, वह 'भारतेन्दु ग्रन्थावली' के तृतीय भाग में सम्मिलित 'प्रहसन पंचक' मे देखा जा सकता है। एक क्षत्री पंडित जी से पूछता है—*भला महाराज, जो चमार कुछ बनना* चाहे तो उसको भी आप बना दीजिएगा ?

पं०—क्या बनना चाहे ?

क्षत्री—कहिए ब्राह्मण।

पं०—हाँ, चमार तो ब्राह्मण ही है, इसमे क्या सन्देह है! ईश्वर के चर्म से इनकी उत्पत्ति है। उनको यम-दण्ड नहीं होता। 'चर्म' का अर्थ ढाल है, इससे ये दड रोक लेते है। चमार में तीन अक्षर है—'च' चारो वेद, 'मा' महाभारत, 'र' रामायण, जो इन तीनो का पढ़ावै, वह चमार। पद्मपुराण मे लिखा है—इन चर्मकारो ने *एक बेर बड़ा यज्ञ किया था, उसी यज्ञ मे से चर्मंरावती निकली है।* अब कर्म भ्रष्ट होने से अन्त्यज हो गए है, लाओ दक्षिणा लाओ।'[2] इस भाँति सामाजिक धार्मिक परिष्करण मे वक्रोक्ति और उक्ति-वैचित्र्य हास्य के अन्तर्गत प्रस्तुत किये गये है।

१—'अन्धेर नगरी' द्वितीय अंक—पृ० ४६३-६४

२—भारतेन्दु नाटिकावली—'सबै जात गोपाल की' पृ० २१९-२०

(३) जननाट्य तथा प्रहसन के लोकव्यापी रूपान्तर :—

प्राचीन काल से ही इस देश में जननाट्य के अनेक रूप मंच पर प्रदर्शित किए जाते रहे हैं। कठपुतली के नाच से लेकर स्वांग और नौटंकी तक सामाजिक क्षेत्र में, तथा यात्रा-उत्सव से लेकर रामलीला और रासलीला तथा धार्मिक क्षेत्र में जन नाटकों के रूप प्रचलित रहे हैं। इन सभी नाटकों में कथा-वैचित्र्य के साथ-साथ जनता का मनोरंजन ही मुख्य लक्ष्य रहा है। इन जन नाटकों में सदैव दो या तीन पात्र ऐसे रहे हैं जिन्होंने हास्य और परिहास के साथ जनता का मनोरंजन करने में पर्याप्त कौशल प्रदर्शित किया है। कठपुतलियों के नाच में हास्य-परिहास करने वाला 'भाण' और रासलीला में 'मनसुखा' तो प्रसिद्ध पात्र रहे हैं। इन दोनों का प्रमुख लक्ष्य गम्भीर परिस्थितियों का सहज अनुकरण हास्य में सवलित करने में है। इनके इस कार्य को परिहास (Parody) के रूप में समझा जा सकता है। जब इस परिहास का विस्तार एक से अधिक पात्रों में होता है तो यही जननाट्य प्रहसन का रूप ग्रहण करता है। यह प्रहसन पात्रों तथा परिस्थितियों के माध्यम से नाटक की संवेदना को हास्य परिहास के धरातल पर उतार कर जीवन के सत्य से परिचित कराता है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ने 'अन्धेर नगरी' प्रहसन लिखकर इसका अत्यन्त सफल उदाहरण प्रस्तुत किया है।

भारतेन्दु युग के अन्य नाटककारों ने इस प्रकार के अनेक प्रहसनों की रचना की है। इन प्रहसनों में अधिकतर सामाजिक समस्याओं को ही सुलझाने का प्रयत्न किया गया है। डॉ० गोपीनाथ तिवारी ने अपने ग्रन्थ 'भारतेन्दु कालीन नाटक साहित्य' में उन समस्याओं को चार शीर्षकों में विभाजित किया है—(१) बाल-विवाह समस्या—इसके अन्तर्गत हैं (क) विवाह पर अपव्यय (ख) बाल-विधवा दुर्दशा (ग) अनमेल विवाह।

(२) विवाहित जीवन की समस्या—(क) लम्पट पुरुष और (ख) लम्पट स्त्री (ग) आदर्श पत्नी।

(३) अन्ध विश्वास, तीर्थ, ' डा, ओझा, गोसाईं

(४) अन्य सामाजिक कुरीतियाँ आदि।[1]

इन्हीं समस्याओं को लेकर आत्म-परिष्कार एवं समाज-परिष्कार के अनेक रूप प्रस्तुत किए गए हैं। यह द्रष्टव्य है कि कुरीतियों पर प्रहार करने के लिए किसी न किसी रूप में हास्य का आश्रय इन नाटककारों के द्वारा ग्रहण किया गया है। सबसे अधिक जिस रूप को इन प्रहसनों में स्थान प्राप्त हुआ है वह परिहास (Parody) ही है।

१—डा० गोपीनाथ तिवारी-भारतेन्दु कालीन नाटक साहित्य पृ० १८३

(४) विदूषक के व्यक्तित्व का विकास :—

सभी देश-काल के नाटकों में विदूषक नाम के पात्र का सन्निवेश इस बात का सूचक रहा है कि नाटकों में हास्य एक अनिवार्य अग है। संस्कृत-नाट्य-शास्त्र में तो विदूषक की वेशभूपा, वार्तालाप, और आहार-व्यवहार का विशिष्ट विवरण दिया गया है। भाषा-साहित्य का प्रकाड विद्वान होते हुए भी उसके द्वारा हास्य का स्रोत नाटक मे प्रवाहित कराया गया है। उसे नायक का सहचर माना गया है। इसका तात्पर्य यह है कि नायक की मुख्य संवेदना मे विदूषक निकटतम रूप से सम्बन्धित है। प्रेम तब तक आह्लादकारी नही होता जब तक कि वह जीवन के सहज हास्य से अनुप्राणित नही है, किन्तु कभी कभी विदूषक की भोजनप्रियता हास्य के बहुत सामान्य धरातल पर उतर आती है। सभी परिस्थितियों मे मिष्ठान्नप्रियता रुचिकर हो सकती है, या नही, इसमें सन्देह है। उदाहरण के लिए 'सौ मन पेडा, सौ मन बर्फी, सौ मन सीरा पूरी जान। सौ मन लड्डू नित्य सबेरे होवे तब करता जलपान।'

डा० गोपीनाथ तिवारी ने ठीक ही लिखा है कि इस ब्राह्मण पात्र द्वारा ब्राह्मणो की पेटू प्रवृत्ति पर प्रकाश डाला गया है और परोक्ष रूप से सिद्ध किया गया है कि वे न्योता खाने के लिए सदा घोड़ा कसे रहते है। दूसरे शब्दों में इसके द्वारा ब्राह्मणो की हँसी उड़ाई गई है और उनका उपहास किया गया है।[1]

सम्भवतः यही कारण रहा हो कि विदूषक के प्रति नाटककारों का विशेष आकर्षण न रह गया हो। प्रसाद जी ने अजातशत्रु, स्कन्दगुप्त, ध्रुवस्वामिनी में विदूषक को कुछ संशोधन के साथ स्वीकार किया है। अजातशत्रु का वसन्तक, और स्कन्दगुप्त का मुद्‌गल तो किसी प्रकार प्राचीन विदूषक के कार्यों का निर्वाह करते है किन्तु ध्रुवस्वामिनी में कुबड़े, बौने, तथा हिजड़े ने ही विदूषक का रूप ग्रहण करते हुए हास्य की सृष्टि करने का प्रयत्न किया है। अनेक स्थलो पर तो नाटकीय संवेदना से सम्बद्ध सामान्य या विशिष्ट पात्र ही विदूषक की भाँति हास्य की सृष्टि करते हैं। यह विदूषक का रूपान्तर है।

इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि विदूषक अन्य पात्रो में रूपान्तरित होकर नये प्रकार के हास्य की अभिव्यक्ति करता है। इस विकास मे उसका विशिष्ट गुण जो पेटूपन से सम्बन्धित है, क्रमशः क्षीण होता चला गया है। अतः विदूषक जैसे पात्र का विकास इस रूप में ही हुआ कि नाटक का एक पात्र ही हास्य उत्पन्न करने में क्रियाशील रहे। इस प्रकार हास्य की विशिष्टता विदूषक से इतर केवल एक पात्र में सीमित न होकर अनेक पात्रो में विभाजित हो गयी। इस प्रकार के पात्रों मे श्री माखनलाल चतुर्वेदी कृत

१—*'भारतेन्दु कालीन नाटक साहित्य—' डा० गोपीनाथ तिवारी पृ० २९३*

'श्रीकृष्णार्जुन युद्ध' नाटक मे दास और श्री प्रसाद के स्कन्दगुप्त नाटक में धातुसेन है। आधुनिक एकाकी नाटकों मे प्रसाद का 'एक घूंट' चन्दुला नामक विदूषक को अवश्य उपस्थित करता है किन्तु अन्य नाटककारों मे विदूषक का कही कोई सकेत नही है। डॉ० रामकुमार वर्मा के एकाकी नाटको मे विदूषक का कार्य अधिकतर घरेलू नौकर-चाकर ही करते है और कहीं-कही हिन्दी का सम्यक् ज्ञान न रखने वाले पात्र हिन्दी बोल कर भी हास्य उत्पन्न करते हैं। उदाहरण के लिए 'रूप की बीमारी' नामक एकाकी मे बगाली डाक्टर, दास गुप्ता का हिन्दी-कथोपकथन।

इस भाँति यह स्पष्ट देखा जा सकता है कि प्राचीन नाटकों का विदूषक हिन्दी नाटकों मे न तो नायक का सहचर रह गया न विद्वता मे ही पारगत और न वह अपने जलपान के लिए सौ मन लड्डू की आकाक्षा रखता है। सहज जीवन में निर्झर की भाँति तरगित होने वाले हास्य की अभिव्यक्ति किसी भी पात्र से किसी समय हो सकती है।

सक्षेप मे प्राचीनकाल का विदूषक आज जीवन के मनोविज्ञान में नई सम्भावनाओ के साथ अपने प्राचीन सस्कारों को त्यागकर नवीन पात्रों के रूप मे अवतरित हुआ है।

(५) हास्यगत मनोविज्ञान :

सस्कृत नाट्य-शास्त्र मे रस के अन्तर्गत ही हास्य की उत्पत्ति मानी गयी है। हास्य परिस्थिति के प्रभाव से नवीन रूपो में व्यक्त होता रहा है। आचार्यों ने हास्य के छः भेद किए हैं जो प्रसगानुसार हास्य की क्रिया को उद्‌घाटित करते हैं। जैसे-जैसे नाट्य-साहित्य का विकास होता गया, वैसे-वैसे हास्य नाट्य शास्त्रीय विचाओ में सीमित न रह कर स्वाभाविक तथा सहज होता गया और रस की अपेक्षा भावो का आश्रय लेकर वह मनोविज्ञान में अधिक प्रतिष्ठित हुआ। हास्य और रुदन मनुष्य की सहज जन्मजात अनुवृत्तियां है। इनका परिचालन किसी शास्त्र से नही होता, भले ही शास्त्र उनके रूपों और उपरूपों का परिगणन करने की चेष्टा करे। उसी सत्य के आधार पर हास्य शास्त्र के द्वारा नहो बाँधा जा सका और उसका विकास मानसिक क्रिया-प्रतिक्रिया के नाना रूपो से घटित होता चला गया।

आज हास्य मनोविज्ञान का एक ऐसा अग बन गया है जिसमें अभिज्ञान, अनुभूति, क्रियाशीलता-तीनो का समन्वय हो गया है तथा हास्य अपनी भावगत सम्पन्नता में अधिक प्रसरणशील हो गया है। जिस प्रकार जल मे एक छोटी-सी ककड़ी पड जाने से चारो ओर लहरो का प्रसार होने लगता है, उसी प्रकार किसी विनोद या अनुरंजन की हल्की-सी सूक्ति के कारण हास्य की लहरें चारो ओर फैल जाती है। नाटको मे सवाद की विशेषता उनके अनुरजनकारी गुणो के द्वारा कही जाती है। इस अनुरजन से जो विनोद

की सृष्टि होती है उसमें हास्य प्रच्छन्न रूप में लीन रहता है। अतः यह हास्य मानसिक उभार की व्यापक प्रक्रिया है।

नाटको में हास्य की उत्पत्ति प्रायः दो रूपो मे की जाती है—रूपक, श्लेष या यमक के सहारे चमत्कार उत्पन्न करने में हास्य साहित्यिक रूप ले लेता है, यह प्रथम प्रकार है। प्रसाद जी ने अपने नाटको मे ऐसे ही साहित्यिक हास्य का नियोजन किया है। ध्रुवस्वामिनी के कूबडे का कूबड़ हिमालय के रूप मे वर्णन करना बहुत कुछ ऐसा ही हास्य है। दूसरे प्रकार का हास्य परिस्थितियों के सहज रूप से बिखर उठना है, उसे पाण्डित्य प्रदर्शन की आवश्यकता नही है। माधव शुक्ल के महाभारत नाटक मे ग्रामीणों का हास्य कुछ इसी प्रकार का है अथवा श्रीकृष्णार्जुन युद्ध में शंख का हास्य, जहाँ वह अपने शरीर के मोटेपन की प्रशंसा करता है, उसी श्रेणी के हास्य की सृष्टि करने मे सहायक है।

हास्य की सम्भावनाएँ :—

आधुनिक एकांकियों मे कथोपकथन का सौन्दर्य विनोद तथा हास्य से ही परिचालित होता है। इस भाँति हास्य की निष्पत्ति में अब रस के प्रति उतना आग्रह नही है जितना मनोविज्ञान के प्रति है। यह मनोविज्ञान एक ऐसा अक्षय भण्डार है जिसके प्रत्येक क्रियात्मक और प्रतिक्रियात्मक सौन्दर्य में हृदय की संभावनाएँ देखी जा सकती हैं। इनका उल्लेख निम्न प्रकार से किया जा सकता है—

(क) समाज के स्वस्थ विकास के लिए हास्य का प्रयोग
(ख) स्वतत्र राष्ट्र के विकास के लिए उन्मुक्त हास्य का आश्रय
(ग) व्यक्तित्व के विकास मे विनोद तथा हास्य की मनोवृत्ति

संक्षेप में, उपर्युक्त प्रसंगो पर भी विचार कर लेना चाहिए। लगभग डेढ़ सौ वर्ष की परतन्त्रता के अभिशाप से मुक्त होने के उपरान्त हमारे देश की जनता मे एक स्वस्थ चेतना आविर्भूत हुई है। अभी तक जीवन का प्रत्येक क्षेत्र कुंठाग्रस्त था और जन-जीवन अपनी आत्माभिव्यक्ति के लिए स्वतंत्र नही था किन्तु पंद्रह अगस्त १९४७ के पश्चात् इस देश को परतन्त्रता के पाश से मुक्ति मिली। अब जीवनगत मनोविज्ञान अपने विकास के लिए जितना आस्थावान् है उतना ही आशावान् भी। किसी मुक्त निर्झर की भाँति खिलखिलाता हुआ जन-जीवन हास्य और विनोद के अनेक रूपो मे अपने को अभिव्यक्त कर सकता है। अब हँसना उसके लिए उतना ही स्वाभाविक है जितना अतीत मे रोना था। भावात्मक एकता की दृष्टि से तथा राष्ट्रीय संगठन की दृष्टि से ऐसे स्वच्छन्द विनोद से साहित्य का निर्माण हो सकता है, जिसमें हास्य की अनेकानेक अनुभूतियाँ लहरों की भाँति उठकर सचरित हो सकती है। मेरा तो ऐसा विश्वास है कि स्वच्छन्द

जीवन में उन्मुक्त उल्लास के बिना कोई भी राष्ट्र विकास नही कर सकता और इसलिए भविष्य के जीवन में हास्य की अपरिमित सम्भावनाएं हो सकती है।

(ख) बुद्धि वैभव के आलोक में हमारी अनेक अन्धमान्यतायें एव रूढियाँ समाप्त हो गयी हैं। हम उन पूर्वाग्रहों से मुक्त हो गए है जिनसे समाज कुंठित था। पश्चिम के सम्पर्क मे हमे ज्ञान और विज्ञान के विस्तृत आयाम प्राप्त हुए है। मानव, समाज के लिए उदारचेता और सहअस्तित्व के लिए क्रियाशील बन गया है। इन दोनो परिस्थितियो मे उसे प्रसन्नता का सबल प्राप्त होना चाहिए, इसी प्रसन्नता मे उसके जीवनगत हास्य की प्रचुर सामग्री है।

(ग) समाज की इकाई, परिवार और व्यक्ति मे है। इसलिए समाज के उन्नयन के लिए व्यक्ति तथा परिवार का उन्नयन आवश्यक है। यो तो दार्शनिक दृष्टिकोण से व्यक्ति सत्, चित् और आनन्द का ही रूप है तथापि सासारिक वात्यानमा से उसका आनन्द क्षत-विक्षत हो गया है। उस आनन्द को उभारने मे हास्य एक आवश्यक उपादान है। इस भाँति स्वतन्त्र राष्ट्र स्वस्थ समाज और स्वच्छन्द व्यक्ति में हास्य की शत-शत अनुभूतियाँ अभिव्यक्त होने के लिए आतुर ज्ञात होती है।

हास्य का यह स्वस्थ रूप सम्पूर्ण नाटक और एकाकी मे किस प्रकार अभिव्यक्त होना चाहिए उसके लिए केन्द्रीय एव प्रादेशिक शासन को विचार करना चाहिए। साथ ही साथ यह भी आवश्यक है कि साहित्यकार राष्ट्रीय धरातल पर नाटकों के निर्माण म सक्रिय और प्रयत्नशील हो, समाजगत कुंठाओं और असफलताओ को व्यग्य और परिहास से दूर करके ऐसी परिस्थितियो में देश के भविष्य का रूप निर्धारित करे जो मानव मात्र के लिए कल्याणकारी सिद्ध हो सके। यह भी आवश्यक है कि शासन और साहित्यकार दोनो मे सम्पर्क और सहयोग की स्थिति उत्पन्न हो तथा नाट्य-रचना जो अभी तक शिथिल रही है, वह समयानुकूल सक्रिय हो सके।

यह हर्ष की बात है कि भारतीय शासन ने सगीत नाटक अकादमी की स्थापना की है जिसके माध्यम से ललित-कलाओं एव नाट्यरूपो के विकास की योजना निर्धारित की गई है, किन्तु जिस प्रकार देश को उत्कृष्ट नाटको की आवश्यकता है, उस प्रकार की कोई योजना सामने नहीं आई। यह आवश्यक है कि सगीत नाटक अकादमी की शत-शत शाखाएं देश के प्रत्येक राज्य में स्थापित हो तथा उनके द्वारा ऐसे नाटको की सृष्टि हो जो हास्य एव उल्लास के साथ जीवन के स्वस्थ क्षेत्रो का अन्वेषण कर सकें।

यह दुर्भाग्य की बात कही जा सकती है कि पृथ्वीराज कपूर का पृथ्वी थियेटर बद हो गया, उसके द्वारा भारतीय रगमच की स्थापना का 'मगलाचरण' प्रस्तुत किया गया था। यदि उसे सभ्रान्त नागरिको तथा राज्य शासन से कुछ सहयोग मिलता तो सम्भवत ऐसी परिस्थिति न आती। प्रयत्न यह होना चाहिए कि प्रत्येक राज्य की

एक रंगशाला हो और समर्थ नाटककारों को आमन्त्रित किया जाए कि वे राष्ट्रीय दृष्टिकोण से महान नाटकों की सृष्टि करें।

हमारे देश में जन-नाटकों की अखण्ड परम्परा रही है। इन जन-नाटकों में समयानुकूल संशोधन की आवश्यकता है। इनमें स्वस्थ जीवन की प्रचुर सामग्री है। जीवन के मुक्त हास्य में अनेकानेक पौराणिक एवं ऐतिहासिक प्रसंग और परिस्थितियाँ हैं, यदि समय के अनुसार तथा युग की प्रवृत्तियों को दृष्टि में रखते हुए जन-नाटकों को आधुनिक रूपों में परिवर्तित किया जाए तो यह जननाटक देश की अन्तरात्मा के सच्चे प्रतिनिधि हो सकते हैं। इन जननाटकों में हासपरिहास के लिए कहीं दूर नहीं जाना होगा। उनके अभिनय और प्रस्तुतीकरण में भी हास्य की सम्भावनाओं के अनेक रूप खोजे जा सकते हैं। आज जनजीवन में जागरण के चिह्न दृष्टिगोचर हो रहे हैं और यह आशा करनी चाहिए कि आनन्द और विनोद को लेकर जननाटकों की ऐसी परम्परा स्थापित हो, जिससे राष्ट्र को नई स्फूर्ति तथा शान्ति मिल सके।

□

परिशिष्ट : सहायक ग्रंथों की सूची

संस्कृत-हिन्दी ग्रन्थों की सूची

अशोक के फूल	हजारीप्रसाद द्विवेदी
अग्निपुराण	व्यास जी
आधुनिक हिन्दी साहित्य	डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय
आधुनिक हिन्दी-नाटक	डॉ० नगेन्द्र
आधुनिक हास्य व्यंग्य	श्री केशवचन्द्र वर्मा
अभिनव भारती	अभिनव गुप्त
ए स्टडी ऑफ़ ओरिसन फोकलोर	कुञ्जविहारी दास
काव्य प्रकाश	आचार्य मम्मट
कामायनी	जयशंकर प्रसाद
जायसी ग्रन्थावली	
दशरूपक	धनंजय
नवरस	बाबू गुलाबराय
नाटक की परख	डॉ० एस० पी० खत्री
नाट्य-समीक्षा	डॉ० दशरथ ओझा
प्रताप पीयूष	प्रतापनारायण मिश्र
प्रतिनिधि हास्य एकांकी	सम्पादक : श्रीकृष्ण अरुण, मनमोहन शरण
बंगला साहित्येर कथा	श्री सुकुमार सेन
भाव प्रकाश	शारदातनय
भारतीय लोक साहित्य	श्री श्याम परमार
भारतेन्दु का नाट्य साहित्य	डा० वीरेन्द्रकुमार शुक्ल
भारतेन्दु की नाट्यकला	श्री प्रेमनारायण शुक्ल
भारतेन्दुकालीन व्यंग्य परम्परा	श्री विजेन्द्रनाथ पाण्डे
भारतेन्दु नाटकावली	
भारतेन्दुकालीन नाटक साहित्य	डॉ० गोपीनाथ तिवारी

मध्यकालीन धर्मसाधना	डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी
मराठी साहित्य समालोचना	श्री सरवटे
महाराष्ट्र नाट्य कला व नाट्य वाङ्मय	गणेश रगनाथ दडवते
रस कलश	'हरिऔध'
राजस्थानी लोक नाट्य	श्री देवीलाल
रूपक रहस्य	श्यामसुन्दर दास
रसिकप्रिया	केशवदास
रिमझिम	डॉ० रामकुमार वर्मा
लोककला (राजस्थान अंक) (पहला-भाग)	
लोक धर्मी नाट्य परम्परा	डॉ० श्याम परमार
लोकसाहित्य की भूमिका	सत्यव्रत अवस्थी
लोकसाहित्य	डॉ० सत्येन्द्र
लोकव्यवहार	श्री सन्तराम
शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त	डा० गोविन्द त्रिगुणायत
साहित्य दर्पण	विश्वनाथ
साहित्य की प्रवृत्तियाँ (प्रथम संस्करण १६५१)	श्री जयकिशन प्रसाद
सस्कृत साहित्य का इतिहास	बलदेवप्रसाद उपाध्याय
संस्कृत साहित्य का इतिहास	वाचस्पति गैरोला
सिद्धान्त और अध्ययन	डॉ० गुलाब राय
हास्य के सिद्धान्त और मानस में हास्य	प्रो० जगदीश पाण्डे
हास्य के सिद्धान्त	जगदीश पाण्डेय
हास्य रस (श्री केलकर अनुवाद)	श्री रामचन्द्र वर्मा
हास्य रस की कहानियाँ	श्री आर० सहगल
हास्य रस की रूपरेखा	एस० पी० खत्री
हिन्दी नाटककार	प्रो० जयनाथ नलिन
हिन्दी नाटक के सिद्धान्त और समीक्षा	रामगोपाल चौहान
हिन्दी नाटक के सिद्धान्त और नाटककार	श्री रामचरण महेन्द्र
हिंन्दी नाटकों का उद्भव और विकास	डॉ० दशरथ ओझा
हिन्दी नाटकों का इतिहास	डॉ० सोमनाथ गुप्त
हिन्दी नाटकों में हास्य	सतेन्द्र माधुरी चैत्र
हिंन्दी साहित्य का आदिकाल	डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी

हिन्दी साहित्य में हास्य रस — (नवम्बर १६३७ लेख) डॉ० नगेन्द्र
हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास — गुलाबराय
हिन्दी साहित्य का विवेचन — श्री योगेन्द्र शर्मा
हिन्दी साहित्य का इतिहास — रामचन्द्र शुक्ल
हिन्दुई साहित्य का इतिहास :गार्सा द तासी — (अनु० डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय)

नाटकों की सूची

अजात शत्रु	जयशंकर प्रसाद
अन्धेर नगरी	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
अति अन्धेर नगरी	देवदत्त शर्मा
अभिनय	गोपीनाथ तिवारी
आनरेरी मजिस्ट्रेट	श्री सुदर्शन
उलटफेर	श्री जी० पी० श्रीवास्तव
ऊषाहरण	कार्तिकप्रसाद खत्री
एक एक के तीन	देवकीनन्दन त्रिपाठी
एक घूंट	जयशंकर प्रसाद
कइसा साहब कइसी आया	उपेन्द्रनाथ अश्क
कर्बला	प्रेमचन्द
कारवाँ	भुवनेश्वर प्रसाद
कौन्सिल की मेम्बरी	प० राधेश्याम मिश्र
कर्पूरमंजरी	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
करुणालय	जयशंकर प्रसाद
कल्याणी परिणय सज्जन	जयशकर प्रसाद
कलयुगी जनेऊ	देवकीनन्दन त्रिपाठी
कलयुगी विवाह	प्रतापनारायण मिश्र
कृष्ण सुदामा	श्री जमुनादास मेहरा
गंगा जमुना	श्री जी० पी० श्रीवास्तव
गो-संकट	अम्बिकादत्त व्यास
घर और मकान	डॉ० रामकुमार वर्मा
चार बेचारे	बेचन शर्मा 'उग्र'
चोर के घर छिछोर	श्री जी० पी० श्रीवास्तव
चौपट चपेट	किशोरीलाल गोस्वामी

चन्द्रावली नाटिका	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
चन्द्रगुप्त	जयशकर प्रसाद
छंद योगिनी	श्री हरिप्रसाद द्विवेदी
जयनारसिंह	देवकीनन्दन त्रिपाठी
जन्मजय का नाग-यज्ञ	जयशकर प्रसाद
तन मन धन श्री गोसाईं जी के अर्पण	श्री राधाचरण गोस्वामी
तप्ता संवरण	श्री निवासदास
दाहर	श्री उदयशकर भट्ट
दुखनी बाला	श्री राधाकृष्ण दास
दुमदार आदमी और गड़बड़ झाला	श्री जी० पी० श्रीवास्तव
धनजय विजय	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
ध्रुवस्वामिनी	जयशकर प्रसाद
नाक में दम और जवानी नाम बुढ़ापा	श्री जी० पी० श्रीवास्तव
नीलदेवी	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
नाट्यसम्भव	श्री किशोरीलाल गोस्वामी
पासपड़ोस	देवराज दिनेश
पाखण्ड विडम्बन	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
पति-पत्नी	ज्योतिप्रसाद मिश्र
पर्दा उठाओ पर्दा गिराओ	उपेन्द्रनाथ अश्क
प्रायश्चित	जयशकर प्रसाद
प्रेम जोगिनी	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
बटुए	श्री देवराज दिनेश
बूढ़े मुंह मुहासे	श्री राधाचरण गोस्वामी
बैल छः टके के	श्री देवकीनन्दन त्रिपाठी
भारत जननी	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
भारत दुर्दशा	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
भूलचूक	श्री जी० पी० श्रीवास्तव
मरदानी औरत	,,
मिस अमेरिकन	श्री बदरीनाथ भट्ट
मत्स्यगंधा	श्री उदयशकर भट्ट
मयंक मंजरी	श्री किशोरीलाल गोस्वामी
राजेश्वरी	जयशकर प्रसाद

रत्नावली नाटिका	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
रणधीर प्रेम मोहिनी	श्री निवास दास
रक्षाबन्धन	देवकीनन्दन त्रिपाठी
लबड़धोंधों	बदरीनाथ भट्ट
विद्यासुन्दर	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
विवाह विज्ञापन	श्री बदरीनाथ भट्ट
विशाख	जयशंकर प्रसाद
विषस्य विषमौषधम	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
शिक्षा दान जैसा काम वैसा परिणाम	बालकृष्ण भट्ट
स्कन्दगुप्त	जयशंकर प्रसाद
स्त्रीचरित्र	देवकीनन्दन त्रिपाठी
सतीप्रताप	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
सत्य हरिश्चन्द्र	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
साहित्य का सपूत	*श्री जी० पी० श्रीवास्तव*
सयाना मालिक	उपेन्द्रनाथ अश्क

कहानियों की सूची

घड़ी बनाम सोंटा	'चोच'
बनारसी एक्का	'बेढब बनारसी'
मेरी हजामत	अन्नपूर्णानन्द
सुकुल की बीवी	निराला

पत्रिकाओं की सूची

नोक झोंक : हास्य व्यंग्य प्रधान सचित्र मासिका पत्रिका, अप्रैल, १९६३
भारतेन्दु मासिक पत्रिका, १९५२
माधुरी मासिक पत्रिका अक्टूबर, १९३७ वर्ष १६ खंड १
साप्ताहिक हिन्दुस्तान ६, सितम्बर, १९५७
सरस्वती मासिक पत्रिका, १९५२
साहित्य सन्देश १९५२।१९५५ जनवरी
हिन्दी अनुशीलन एक अंक १९५६
हिन्दुस्तानी त्रैमासिक जुलाई, १९३७

चन्द्रावली नाटिका	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
चन्द्रगुप्त	जयशंकर प्रसाद
छंद योगिनी	श्री हरिप्रसाद द्विवेदी
जयनारसिंह	देवकीनन्दन त्रिपाठी
जन्मजय का नाग-यज्ञ	जयशंकर प्रसाद
तन मन धन श्री गोसाईं जी के अर्पण	श्री राधाचरण गोस्वामी
तप्ता संवरण	श्री निवासदास
दाहर	श्री उदयशंकर भट्ट
दुखनी वाला	श्री राधाकृष्ण दास
दुमदार आदमी और गड़बड़ झाला	श्री जी० पी० श्रीवास्तव
धनंजय विजय	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
ध्रुवस्वामिनी	जयशंकर प्रसाद
नाक में दम और जवानी नाम बुढ़ापा	श्री जी० पी० श्रीवास्तव
नीलदेवी	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
नाट्यसम्भव	श्री किशोरीलाल गोस्वामी
पासपड़ोस	देवराज दिनेश
पाखण्ड विडम्बन	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
पति-पत्नी	ज्योतिप्रसाद मिश्र
पर्दा उठाओ पर्दा गिराओ	उपेन्द्रनाथ अश्क
प्रायश्चित	जयशंकर प्रसाद
प्रेम जोगिनी	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
बटुए	श्री देवराज दिनेश
बुढ़े मुंह मुहासे	श्री राधाचरण गोस्वामी
बैल छः टके के	श्री देवकीनन्दन त्रिपाठी
भारत जननी	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
भारत दुर्दशा	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
भूलचूक	श्री जी० पी० श्रीवास्तव
मरदानी औरत	"
मिस अमेरिकन	श्री बदरीनाथ भट्ट
मत्स्यगंधा	श्री उदयशंकर भट्ट
मयंक मंजरी	श्री किशोरीलाल गोस्वामी
राजेश्वरी	जयशंकर प्रसाद

रत्नावली नाटिका	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
रणधीर प्रेम मोहिनी	श्री निवास दास
रक्षाबन्धन	देवकीनन्दन त्रिपाठी
लबड़धोंधों	बदरीनाथ भट्ट
विद्यासुन्दर	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
विवाह विज्ञापन	श्री बदरीनाथ भट्ट
विशाख	जयशंकर प्रसाद
विषस्य विषमौषधम	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
शिक्षा दान जैसा काम वैसा परिणाम	बालकृष्ण भट्ट
स्कन्दगुप्त	जयशंकर प्रसाद
स्त्रीचरित्र	देवकीनन्दन त्रिपाठी
सतीप्रताप	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
सत्य हरिश्चन्द्र	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
साहित्य का सपूत	श्री जी० पी० श्रीवास्तव
सयाना मालिक	उपेन्द्रनाथ अश्क

कहानियों की सूची

घड़ी बनाम सोंटा	'चोच'
बनारसी एक्का	'बेढब बनारसी'
मेरी हजामत	अन्नपूर्णानन्द
सुकुल की बीबी	निराला

पत्रिकाओं की सूची

नोक झोंक : हास्य व्यंग्य प्रधान सचित्र मासिका पत्रिका, अप्रैल, १९६२
भारतेन्दु मासिक पत्रिका, १९५२
माधुरी मासिक पत्रिका अक्टूबर, १९३७ वर्ष १६ खंड १
साप्ताहिक हिन्दुस्तान ६, सितम्बर, १९५७
सरस्वती मासिक पत्रिका, १९५२
साहित्य सन्देश १९५२।१९५५ जनवरी
हिन्दी अनुशीलन एक अंक १९५९
हिन्दुस्तानी त्रैमासिक जुलाई, १९३७

English Books.

1. An Introduction to Dramatic theory-by A. Nicoll
2 A century of Humour—by P. C. Wedehouse
3. An essay on comedy—by Meredith
4. An essay on laughter—by James Sully M. A. L. L. D
5. Art of Drama—by Bentilley and Millet
6. British Drama by A. Nicoll
7. English Satire and Satirests—by Walker Heegh
8. English Satire—by Free long
9. Humour and Humanity—by Stephen leacock
10. Humour and Humonrists—by Thackery
11. Hindi literature—by F. E. Keay
12, Influence of the western Drama on Modern Hindi Drama
13. Idea of comedy—by Meredith
14. Sanskrit Drama—by A. B. Keith
15. Satire and Satirists—by Henry James
16. Shakesperian comedy—by S. C. Gupta
17. Shakespearin Comedy—by H. B. Chariton
18. The Psychology and Laughter Comedy—by J. Y. Greeks
19. The Art of Satire—by Worestor Daird
20. Theory of Drama—by A. Nicoll
21. World Drama—by Nicoll

□